चौमासा

वर्ष-27 अंक-84
नवम्बर 2010-फरवरी, 2011

सम्पादक
कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल,
बाणगंगा, भोपाल-462003
फोन/ फैक्स : 0755-2551878, 27060668
E-mail : mplokkala@rediffmail.com

मूल्य
एक प्रति बीस रूपये
वार्षिक पचास रूपये
आजीवन सदस्यता पन्द्रह सौ रूपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

प्रचार/प्रसार
श्रीमती उर्मिला पारखे, प्रवीण गावण्डे

शब्दांकन
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण
ताम्रलेख - बेटमा केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर
भोजपुर का शिव मंदिर, भोजपर

मुद्रण
शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, भोपाल

- चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।
- पत्रिका और प्रकाशन से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

डॉ. कपिल तिवारी, निदेशक, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक द्वारा शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, मैदा मिल, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक-डॉ. कपिल तिवारी

इस अंक में

मालवा की लोक स्मृति में राजा भोज / डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित / 5

राजा भोज का काव्यशास्त्र / आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी / 24

भोजकालीन मालवा / डॉ. श्यामसुन्दर निगम / 27

राजा भोज और चौदहवीं विद्या / डॉ. राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी / 44

जनमानस में राजा भोज / दीपेन्द्र शर्मा / 50

मालवी साहित्य का देवपुरुष राजा भोज / डॉ. पूरन सहगल /54

बातचीत- **रू-ब-रू** / रेवतीरमण शर्मा / 93

बातचीत- **धरती बहुत कष्ट में है** / अश्विनी कुमार आलोक / 98

'लोकरंग' अंतर्लय की तलाश का उत्सव / विनय उपाध्याय / 103

निमाड़ और निमाड़ उत्सव / वसन्त निरगुणे / 111

मालवा की लोक स्मृति में राजा भोज

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

राजा भोज का जितना लेखनी के क्षेत्र में योगदान है, वह किसी से अनजाना नहीं है। राजा भोज की ऐतिहासिक उपलब्धियों के प्रमाण अभिलेखों, प्रतिमाओं, भवनों, सार्वजनिक निर्माणों, उनकी समकालीन प्रशस्तियों, पुस्तकों, परवर्ती ग्रन्थों तथा लोकव्यापी कथा-कहानियों से विज्ञात और प्रमाणित हैं। राजा भोज की सांस्कृतिक अभिरुचियों तथा साहित्यिक अनुराग के प्रमाण भोज प्रबन्ध सहित अनेक ग्रन्थ हैं। संस्कृत, प्राकृत, देशी, विभिन्न भाषाओं, बोलियों तथा परदेसी साहित्य भी राजा भोज सम्बन्धी ऐतिहासिक, लौकिक, मिथकीय व्यक्तित्व को कई-कई रूपों में प्रकट और प्रसारित करता रहा। राजा भोज अपने समकाल में ही लोकाकर्षण का केन्द्र बन गया था। यहाँ तक कि उसके राजकीय शत्रु भी उसके व्यक्तित्व और कृतित्व को आदर्श मानकर उसके अनुकरण का प्रयास करते थे। गुजरात का राजा भीमदेव तो वेश बदलकर राजा भोज को एक नजर देखने की लालसा से धार भी जा पहुँचा था। ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व के धनी राजा भोज के व्यक्तित्व को सबने अपनी-अपनी तरह से देखने, परखने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। राजनीतिज्ञों ने राजनैतिक, शास्त्रज्ञों ने शास्त्रीय, कवियों ने रसिक तथा लोक ने उसे विविध वर्णी प्रकट किया है। भोज सम्बन्धी मिथक प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। एक इतिहास-पुरुष के मिथक बन जाने का राजा भोज सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (1/4/16) के अनुसार चारों वर्णों तथा आश्रमों का समुच्चय लोक है - चतुर्वर्णाश्रमो लोकः। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों में पूरा समाज समाहित हो जाता है। स्पष्ट ही लोक यानी पूरा समाज। समाज और सामाजिक यात्रा अबाध होती है। इसमें पारिवारिक, वैचारिक, व्यावहारिक, व्यावसायिक, धार्मिक, रचनात्मक, कला सम्बन्धी और ज्ञात आकर्षक व्यक्तित्वों को

अपनी-अपनी तरह से अभिमण्डित करने का प्रवाह होता है। यह अभिमण्डन गीतों, लोककथाओं, कहावतों, सम्पूर्ण छोटे-बड़े काव्यों, नाट्यों आदि विविध माध्यमों द्वारा अपनी-अपनी भाषाओं, लोकभाषाओं में होता रहता है। जैसे-जैसे समय बीतता है, उसमें कुछ छूटता जाता है तो कुछ जुड़ता भी जाता है। यह जोड़-बाकी होते-होते उसकी कई परिणतियाँ होती जाती हैं। कई बार स्मृतियों में संचरित अनेक व्यक्तित्व आपस में गड्ड-मड्ड हो जाते हैं। एक की बातें दूसरे के साथ भी जुड़ जाती हैं। किसी व्यक्तित्व के प्रति किसी का आकर्षण भी ऐसा जानबूझकर या अनजाने ही हो जाता है। जैसे पहले शूद्रक कथा बड़ी लोकप्रिय थी। राजा विक्रमादित्य की कथाएँ भी लोकप्रिय थीं। ऐसी ही एक रंजक कथा पर प्राचीन अनुपलब्ध नाटक 'विक्रान्तशूद्रक' था। उसकी कथा आजकल मालवी में राजा विक्रमादित्य सम्बन्धी प्राप्त होती है। तो कभी-कभी कई व्यक्तित्वों को मिलाकर लोकनायक का व्यक्तित्व अभिमण्डित होता है। ज्ञात इतिहास में विक्रम संवत् की पहली सहस्राब्दी का आरम्भ लोकनायक विक्रमादित्य से होता है तथा दूसरी सहस्राब्दी का आरम्भ राजा भोज से होता है। तीसरी सहस्राब्दी का आरम्भ सम्पूर्ण भारत के अपूर्व गणतंत्र से होता है।

अत: यह असम्भव नहीं है कि लोक परम्परा अपने लोकप्रिय राजा भोज को भी ऐसे बहुरंगी लोकरंग से अभिमंडित करता रहा हो। इसमें भाषा कहीं आड़े नहीं आती। लोकमानस का उल्लास सब दूर एक जैसा होता है। फिर वह चाहे संस्कृत में कहें, प्राकृत में कहें, अपभ्रंश में कहें, परवर्ती मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रजी, राजस्थानी, मालवी, बुन्देली, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली, पंजाबी, तिब्बती, सिंहली या मंगोली किसी भी भाषा में कहें, वह बात लोकरंग से रंजित ही होगी। इस प्रकार मूल वस्तु की व्याप्ति ही नहीं अतिव्याप्ति होती जाती है। इस अतिव्याप्ति में रंजना होती है, अतिरंजना भी हो सकती है। परन्तु तब भी इस मूल बात को कोई भूल नहीं पाता कि मालवा का राजा भोज था। उसकी राजधानी धारानगरी थी। राजा भोज वीर, दानी, लोकहितकारी, विवेकशील और उदार था। उसकी वीरता की एक कहावत प्रसिद्ध है- 'काँ राजा भोज ने काँ गंगू तेली'। इसे रजवाड़ी मालवी में इस प्रकार भी कहते हैं- 'कई राजा भोज ने कई गंगू तेली'। इस कहावत का मूल वास्तव में इतिहास-सम्मत है। उपर्युक्त कहावत में तेली को तेलन भी कहा जाता है - 'कठे राजा भोज ने कठे गांगी तेलन'। कहावत का यह पाठ अपने मूल के अधिक निकट है। क्योंकि राजा भोज का समकालीन गांगेयदेव कलचुरि ज्ञात है। गांगेयदेव को लोक ने गांगी कर दिया। तेलंग को तेलन कर दिया। इस प्रकार गांगेयदेव तेलंग-गांगी तेलन हो गयी। इस गांगयदेव ने राजा मुंज को अपमानित कर उसका वध कर दिया था। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार राजा भोज जब राजा बना, तब उसे इस वध की घटना का नाटक दिखाया गया। क्रोधित होकर राजा भोज ने उस पर आक्रमण करके उस पर गौरवशाली विजय प्राप्त की। राजा भोज के वंशज अर्जुन वर्मा (1210 से 1218 ईस्वी) के समय उसकी ही प्रशस्ति में रची गयी नाटिका 'पारिजात मंजरी' के आरम्भ (1/3) में बताया गया है कि मनोरथ पूर्ण होने पर राजा भोजदेव ने 'गांगेय भंगोत्सव' आयोजित किया था।

माण्डव तथा नालछा के मध्य की एक पहाड़ी के बारे में बताया जाता है कि उस पर ही इस तेलंग को फाँसी दी गई थी। यह तेलंगाना का भी शासक था। अत: उसे तेलंग, तेलन, तेली कहा जाने लगा। ग्वालियर में तेली का मन्दिर भी इसी तेलंग का बताया जाता है। वहाँ भी लोक ने तेलंग शब्द को तेली कर दिया और वही प्रचलन में है।

तेलंग शब्द का लोक ने सरलता से तेलन (तेली की स्त्री) शब्द बनाकर उसके आधार पर मनोरंजक बातें तैयार कर लीं। माण्डव-नालछा के बीच की एक तेलण टेकरी के बारे में लोक में यह बात बतायी जाती है कि राजा भोज के समय की तेलन ने अपना घाघरा झटका तो उससे इतनी धूल उड़ी कि उस धूल के ढेर की यह टेकरी बन गयी। जिस तेलन के घाघरे की धूल से टेकरी बन जाए, उस तेलन के आकार तथा उसके घाघरे के आकार-प्रकार की कल्पना भी विराट ही होगी। फिर यह भी कि वह घाघरा कभी धोया ही नहीं गया, न कभी झटका गया। फलत: उसमें निरन्तर धूल जमा होती रही। और इतनी धूल जमा हो गयी कि झटकने से उड़ी धूल के जमाव से टेकरी ही तैयार हो गयी। यह सम्भव है कि तेलंग सेना के प्रसंग में वह टेकरी बनी हो।

इसी प्रकार एक और मनोरंजक बात इस तेलन से जुड़ी हुई धार में बतायी जाती है। धार में लाट मस्जिद के सामने एक चौंतरे पर विशाल पत्थर पड़े हैं। उनके विषय में लोक प्रचलन है

कि ये तेलन के राँडा-बाट हैं, जिनसे तेलन तेल तौलती थी और बेचती थी। इतने बड़े बाटों से तेल तोलना साधारण काम नहीं है। वहीं ओटले से टिके लोहे के स्तम्भ के बड़े-बड़े तीन खण्ड पड़े हैं, जिनकी सब मिलाकर लम्बाई प्राय: 44 फीट होती है। उन स्तम्भों के बारे में कहा जाता है कि यह तो तेलन की तराजू की डण्डी है। तब तराजू की विशालता, उसके बाटों की विशालता तथा उन साधनों से तराजू का आकार, उस तराजू में तोले जाने वाले तेल का परिमाण, उतना तेल जिस बर्तन में रखकर तोला जाता हो, उसका आकार प्रकार तथा इतनी बड़ी तराजू से तोलने वाली तेलन का आकार-प्रकार तथा बल की कल्पना करें, तो आकार विराट, बल अपार और तेल अपरिमित, बर्तन विशाल होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि गांगेयदेव तेलंग से गांगली तेलन की समता की जाती है। इससे स्पष्ट है कि गांगेयदेव असाधारण शक्तिसम्पन्न, विशाल राज्य और सेना का स्वामी था। उसे जीतना सरल नहीं था। परन्तु राजा भोज ने उसे भी जीत लिया था। और उस गांगेयदेव तेलंग के जीतने के उत्सव के उपलक्ष्य में भोज ने यह लौह-स्तम्भ खड़ा किया था, जो बाद में मुस्लिम काल में अपने स्थान से हटाकर अहमदाबाद ले जाने के प्रयास में टूट गया। और ले जाने वाले खण्डित हो जाने से उसे वहीं छोड़ गये। वे बाट के पत्थर उस स्तम्भ की जमीन में मजबूती के लिये थे। और उस चौंतरे पर उन पत्थरों के बीच वह पूरा 44 फीट ऊँचा लौह-स्तम्भ खड़ा किया था। यह वास्तव में गांगेयदेव पर विजय के उपलक्ष्य में खड़ा किया गया था। धार संग्रहालय में सुरक्षित भोज प्रशस्ति के कोदण्ड प्रबन्ध नामक प्राकृत काव्य खण्डित रूप में सुरक्षित है। उसमें 576 से अधिक गाथाएँ थीं। उसकी 306वीं गाथा में बताया गया है कि- हे राजा भोज! तुम अपने खड्ग की किरण की रस्सी से बँधे जयकुँजर (विजय-गज) को धारण करते हो, जयकुंजर का स्तम्भ उसका आलान (हाथी बाँधने का खूँटा) है।

असिकिरणरज्जुवद्धं जेणं जयकुंजरं तुमं धरसि।
जयकुंजरस्य थंभोए... ॥ 306 ॥

इससे स्पष्ट है कि राजा भोज ने जयस्तम्भ खड़ा किया था। शिलालेख खण्डित होने से उसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, जिसे जीतने पर यह जयस्तम्भ खड़ा किया था। परन्तु 1030 ई. में अल्बरूनी ने धार में इस स्तम्भ को देखा था। परन्तु इस स्तम्भ से जुड़ी पूर्वोक्त लोक परम्परागत बातों से उस ऐतिहासिक विवरण की पुष्टि हो जाती है कि यह जयस्तम्भ गांगेयदेव तेलंग को जीतने के उपलक्ष्य में खड़ा किया था।

अपने स्थान से हटाने के प्रयास में यह स्तम्भ पर्याप्त वजनदार होने और बैलेन्स नहीं रह पाने से जब गिर पड़ा, तो यह टूट गया। उसका बड़ा भाग लाट मस्जिद के चौंतरे से ढलुआँ टिक गया। तब यह भी प्रचलन हो गया था कि जो इससे नहीं फिसलता है, वह अगले जन्म में गधा होता है। अत: वहाँ पहुँचने वाले सब यात्री, विशेषत: बालगोपाल उससे फिसलने का आनन्द लेते थे। आजकल तो पुरातत्व विभाग ने उसे वहाँ से हटाकर पास ही आड़ा रख दिया है। अब अगले जन्म का गधापन तो सब पर्यटकों का कोई रोकने-टोकने वाला नहीं बचा।

इस पूरे विवरण से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि 'को राजा भोज ने के गांगी तेलन' कहावत में कितनी व्यापकता है और कितना इतिहास भरा हुआ है। वह केवल लोक की गप्प नहीं है, उसकी पृष्ठभूमि ठोस और सबल है। यह भी कहा जाता है कि 'गांगी तेलन' में क्रमश: दो पर भोज की विजय का संकेत है। गांगेयदेव कलचुरि और तेलंगाना का तैलप।

रासमाला के अनुसार कलचुरि गांगेय ने नेपाल से कर्नाटक तक अपना राज्य विस्तार कर लिया। भोज से भी उसका युद्ध हुआ जिसमें वह पराजित हुआ। अपमानित होकर वह प्रयाग चला गया, जहाँ 1041 ईस्वी में वह मर गया। इस विजय के सन्दर्भ में भोज ने जयस्तम्भ खड़ा किया और उत्सव मनाया था।

'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली' कहावत परम्परागत है। कवि सुन्दरदास (1596-1689 ई.) ने भी इस कहावत का अपने काव्य में उपयोग किया था।

(1) कहाँ राजा भोज कहाँ गंगो तेली कहिये।
(सुन्दर विलास काव्य)

अन्य भाषाओं में भी इस कहावत के ये रूप पाये जाते हैं-

(2) क्याँ राजा भोज ने क्याँ गांगली घाचन (तेलन)। (गुजराती)

(3) कहाँ राजा भोजु कहाँ टूटा तेली। (बुन्देलखण्ड)

(4) कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगा तेली। (कोंकण)

(5) कहाँ राजा भोज और कहाँ घांगो तेली।
(नर्मदाकांठा, पंचमहाल)

(6) कहाँ मोहोर ओर कहाँ गधेली।

(7) कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। (उत्तरप्रदेश)

(8) कत राजा भोज कतग ठिआ तेली। (बंगाल)

(9) कए राजा भोज कए गंगिया तेलि।

(10) कोठें राजा भोज आणि कोठें गंगा तेलीण। (मराठी)

यह कहा जाता है कि भोज के नाम पर कई नगरों के नाम पड़ते गये - भूपाल या भोजपाल (भोपाल), भोजपुर (रायसेन जिला), भोजपुर (पटना के पास, जहाँ के नाम पर उस क्षेत्र की समृद्ध लोकभाषा का नाम भी भोजपुरी है), भोपावर (धार जिले में सरदारपुर के पास), भोजकटक (होशंगाबाद)- यह नगर अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पहले (1855-56 ई.) में राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर थे। उन्होंने 'राजा भोज का सपना' कहानी लिखी थी। डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक वर्ष प्राचीन इस कहानी में राजा भोज के विषय में लिखा गया है, वह उस राजा की उस समय भी ख्याति का प्रमाण है। वहाँ लिखा गया है-

'वह कौन-सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने-चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया।'

ईस्वी के 1540 सन् में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत महाकाव्य की रचना की। इसमें उन्होंने विक्रमादित्य, राजा भोज आदि की महिमा की जहाँ-तहाँ चर्चा की है। यथा-

(1) *भोज भोग जस माना विक्रम साका कीन्ह।*

जायसी के समय प्रचलित भोज की विभिन्न प्रेमकथाओं के आलोक में कवि ने यह बात कही है।

(2) अपने कथानायक की प्रशंसा में कहा गया है-

तुम्ह सों कोइ न जीना हारे वररुचि भोज।

(3) राजा भोज चौदहों विद्याओं का ज्ञाता था।

वेद भेद जस बररुचि चित चिंता तस चेत।
राजा भोज चतुर्दस था चेतन सों हेत॥

(4) इन्द्रजाल के सम्बन्ध में भी भोज का उल्लेख किया गया है-

राज बार अस गुनीन चाहिअ जेहि टोना कर खोज।
एहि छंद ठगबिद्या डहँका चला सो राजा भोज॥

(5) पद्मावत में राजा विक्रम तथा भोज का एक साथ उल्लेख हुआ है।

हौं सो भोज विक्रम उपराहीं।

(6) भानुमती के प्रेमी भाग्यशाली राजा भोज की भी चर्चा हुई है-

चंदन माँझ कुरंगिनी खोजू। दहुँ के पाव को राजा भोजू॥

(7) राजा भोज का राज्य भी कवि के लिए स्मरणीय था-

कीन्हेसु राजा भोजहि राजू।

इस प्रकार जहाँ पुरातन महाकवि राजा भोज का उपमान रूप में बार-बार स्मरण करते हैं। वहीं मालवी में राजा भोज से वृद्धा की बातचीत के दोहे प्राप्त होते हैं-

कसी चाले डोकरी, कीका काड़े खोज।
कई थारो खोवई गयो पूछे राजा भोज॥
म्हारा से थारे गई जीका काडूँ खोज।
थारा से भी जायगी मत गरबावे भोज॥

इसमें राजा भोज वृद्धा से पूछ रहे हैं कि ऐसे डगमग चलते हुए क्या खोज कर रही है? क्या गुम गया है तेरा? तब वृद्धा उत्तर देती है कि मेरे पास से तेरे पास चली गयी। वही खोज रही हूँ। पर राजा भोज गर्व मत करो, तेरे पास से भी चली जाएगी जवानी।

1800 ई. के जोधराज ने विक्रमादित्य तथा राजा भोज की दया-भावना का उल्लेख इन शब्दों में किया है-

कँह पँवार जगदेव सीस आपन कर कट्टयो।
कहाँ भोज विक्रम सुराव जिन परदुख मिट्टयो॥

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार राजा भोज ने हनुमान द्वारा विरचित 'रघुनाथचरित' (हनुमन्नाटक) का उद्धार करवाया था। उसने शिलांकित इस नाटक का दामोदर पंडित द्वारा सम्पादन करवाया था। वही नाटक आज भी सुलभ है, जो पूरी परम्परा में अनोखा है।

रघुनाथचरित हनुमंतकृत भूप भोज उद्धरिम जिमि।
पृथ्वीराज सुजस कवि चंदकृत चंदनंद उद्धरिम तिमि॥

स्पष्ट ही लोक में तैरती बातें प्राय: निराधार नहीं होती हैं।

राजा भोज परमार वंश का रत्न था। उनकी कुल राजधानी धारानगरी थी। धार और परमारों का अभिन्न सम्बन्ध था। उसके सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है-

जहाँ परमार तहाँ धार।
जहाँ धार तहाँ परमार॥
बिना धार नहीं परमार।
बिना परमार नहीं धार॥

लोक प्रचलित कथाओं के भोज सम्बन्धी संग्रह विभिन्न भाषाओं में अनेक होते रहे। कई भोजप्रबन्ध हैं। बल्लाल, शुभशील गणि, रत्न मंडनगणि, सत्यराज गणि, राजशेखर आदि के संस्कृत में भोजप्रबन्ध हैं। उनमें से बल्लाल का भोजप्रबन्ध सर्वप्रसिद्ध है। राजवल्लभ का भोजचरित प्रकाशित है। शुभशील गणि के पंचशती प्रबोध प्रबन्ध में भी भोज सम्बन्धी अनेक कहानियाँ हैं। मेरुतुंग की प्रबन्ध चिन्तामणि में जो भोज सम्बन्धी विभिन्न कहानियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें से बहुधा को ऐतिहासिक माना जाता है। यह पुस्तक मालवा के धार जिले के वर्धमानपुर (वर्तमान बदनावर) में चौदहवीं शताब्दी में लिखी गयी थी। ये कहानियाँ संक्षिप्त होने पर भी रोचक, तथ्यात्मक और भोज सम्बन्धी विभिन्न लोकदृश्य हैं।

विभिन्न भोजप्रबन्धों में भोज के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पक्ष प्रकट होते हैं। बल्लाल के सुप्रसिद्ध भोजप्रबन्धों में कविमण्डल के साथ भोज को प्रस्तुत करते हुए उसके काव्यप्रेम और सहृदयता को रेखांकित किया गया है। प्रबन्ध चिन्तामणि में भोज के जीवन के विभिन्न पक्ष प्रस्तुत हुए हैं, जिनमें शत्रुओं के साथ उसके व्यवहार को भी बताया गया है। राजवल्लभ के भोजचरित में भोज की वीरता, विवाह, परकाया प्रवेश आदि के साथ ही पारिवारिक परिवेश भी प्रस्तुत किया गया है। जैन साहित्य में मानतुंग, भोज तथा कालिदास सम्बन्धी कथाएँ भी हैं। कालिदास और पार्श्वाभ्युदय सम्बन्धी कथा विस्तार से उसकी टीका में प्राप्त होती है।

जैन कवि मालदेव रचित 'भोजचरित्रराहा' के अनुसार सिंहासन बत्तीसी की कथा राजा भोज के कारण ही प्रकाश में आयी।

सिंहासन बत्तीसी की कथा सरस अवदान।
राजा भोज न होत तउकों तमु जानत वात॥

देवभद्रसूरि के श्रेयांसचरित में धनेश्वरसूरि का राजा की सभा में वाद-विवाद का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

तपणु धनेसर सूरि जातो जैणं निरीह पहुणा वि।
भोज न रिदं सभाए गहिमा वाचंमि जयलच्छी॥

मुंजप्रबन्ध, भोजगांगेयप्रबन्ध, भोजसुभद्राप्रबन्ध, भोजवृत्त आदि की रचनाएँ भी परवर्ती काल में होती रहीं। भोज सम्बन्धी कितने ही प्रबन्ध लिखे गये। सर्वप्रसिद्ध भोजप्रबन्ध तो बल्लाल का है। परन्तु वत्सराज, पद्मगुप्त, रत्नमन्दिर, शुभशीलगणि के भोजप्रबन्ध भी ज्ञात हैं। एक अज्ञातकर्त्ता का भोजप्रबन्धसार भी है। राजवल्लभ (सं.-1524) का भोजप्रबन्ध बताया जाता है, जो भोजचरित होना चाहिए, जो प्रकाशित है। शुभशीलगणि के पंचशतीप्रबन्ध में भी भोज सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं।

राजस्थानी पद्यों में अनेक भोजचरित रचे गये। सत्रहवीं सदी के मालदेव रचित भोजचौपाई बीकानेर भण्डार में है। इसमें तीन खण्ड और 1600 से अधिक पद्य हैं। 1671 संवत् में रचे गये सारंगकवि के भोजचरितरास में 458 पद्य हैं। हेमाणंद ने 1654 में भोजचरित्ररास बनाया था। कुशलधीर ने 206 पद्य की भोजराजा

चौपाई बनाई जो बीकानेर में प्राप्त है। नरपति नाल्ह 1872 संवत् में 'वीसलदेवरासो' बनाया, जिसमें भोज की बेटी के वीसलदेव के साथ विवाह की चर्चा है। मुल्ह कवि रचित भोज राजा परकाया प्रवेशिनी पंदरहवी विद्या कथा भी प्राप्त होती है। राजस्थानी में 3/1 में वृद्धा और माघ संवाद में राजा भोज विद्यमान है। राजस्थानी, गुजराती, बुन्देली, मराठी, मालवी सहित भारतीय विभिन्न भाषाओं और बोलियों में राजा भोज की कहानियाँ प्राप्त होती हैं। विविध विषयक परवर्ती ग्रन्थों में राजा भोज को राजा भोज, धारेश्वर या भूपाल नाम से बार-बार उद्धृत किया गया है। भूपाल राजा भोज का वाचक है। यह सम्भव है कि इस 'भूपाल' के नाम पर ही आज के 'भोपाल' नगर का नाम पड़ा हो।

राजा भोज परमार वंश के सर्वाधिक चमकदार नक्षत्र थे। उनके विषय में राजस्थानी में कई उक्तियाँ प्रचलित हैं। यथा-

पिरथी बड़ा पँमार पिरथी परमारा तणी।
एक उजीणी धार बीजो आबू बेसणो॥

ज्याँ पमार त्याँ धार हे, धारा जडे पमार।
बिन पमार धारा नहीं, धारा बिना पमार॥

राजा भोज काव्य के परम रसिक थे। विजयनगर प्रशस्ति में कृष्णराय की स्तुति में कहा गया कि वह काव्य, नाटक, अलंकार का मर्मज्ञ दूसरा भोज था। तेरहवीं सदी के परमार भोज द्वितीय को प्रथम भोज के समान हम्मीर महाकाव्य में बताया गया है - भोजो भोज इवापरः। मराठी में भी ऐसी ही बात कही गयी है -

'भोजा सम कविताप्रिय'।

राजा भोज को परवर्ती धर्मशास्त्र ग्रन्थकार केवल भूपाल नाम से भी उद्धृत करते रहे। कृत्य रत्नाकर में भोज के 'भूपालकृत्यसमुच्चय' ग्रन्थ को उद्धृत भी किया गया है। स्पष्ट ही राजा भोज को भूपाल भी कहते रहे। एक अन्य अभिमत यह भी है कि राजा भोज के एक मंत्री का नाम भुजपाल था। और इस भुजपाल नाम से भोपाल नाम हो गया। यह अभिमत डॉ. हरिराम दिवेकर का है, जो उन्होंने डॉ. वि.श्री. वाकणकर को एक पत्र में लिखा था। उन्होंने यह भी बताया कि पटना के पास का भोजपुर मालवा के परमार राजा भोज के नाम पर पड़ा, यह कौशिक पद्धति के लेखक केशव ने कहा जो राजा भोज के समय उस भोजपुर में ही रहता था। और वहीं यह ग्रन्थ रचा। तदनुसार मालव देश में उत्पन्न श्री भोजदेव धर्म के संरक्षण के लिए राजगृह आये। वे विजेताओं में सबसे प्रमुख थे। उन जैसा संसार में न तो है, न कोई था और न कोई होगा। उन्होंने अथर्ववेद के अनुसार अनेक महाशान्ति करवाई और प्रचुर दक्षिणा भी दी।

पृथिव्यां श्रीभोजदेवो धर्मसंरक्षणाय च।
देशमालवकोत्पन्नः श्रीराजगृहमेत्य च॥
भोजदेवो जयद्धेष्यान्सर्बेषां च प्रमूर्धनि।
न तन्तुल्यो जगत्यास्ति न भूतो न भविष्यति॥

× × ×

अथर्ववेदे विदिता महाशांतिरनेकथः।
कारोपिता तेन मया चोक्षा विदितदक्षिणा॥

× × ×

श्रीमद्भोजपुरे विद्वानासीत्सोमेश्वरो द्विजः।
तत्पुत्रकेशवेनैषा कृता कौशिकपद्धतिः॥

राजा भोज के पूर्वजों को मालवा का राज्य प्राप्त होने की घटना प्रबन्ध चिन्तामणि में वर्णित है। तदनुसार कान्यकुब्ज के कल्याणकटक में मूलराज के पूर्वज शासन करते थे। तब भूमड़ या भूमदेव शासक बना। उस प्रसिद्ध राजा ने उज्जयिनी के स्वामी महाकालेश्वर के लिए पूरा मालवा दान कर दिया और उसके पालक संरक्षक के रूप में परमार परिवार को नियुक्त किया था। अन्हिलवाड़े के कल्याण में एक मूलराज 941 ई. में हुआ था। यह चालुक्य था। अन्हिलवाड़े के चापोत्कट या चावड़ा राजवंश में 867 ई. में एक भूमड़ राजा हुआ था। प्रबन्ध चिन्तामणि में वह रोचक प्रसंग इस प्रकार है-

'अथ प्रत्यूषे तान् यामिकान् सचिवैर्निगृह्यमाणान् निवार्य मालवमण्डले महाकालदेवप्रासादे गत्वा स्वयं देवमाराधमंस्तस्यौ। देवादेशाद्भुजद्वये लग्ने सति तं मालवदेशं सान्तःपुरं तस्मै देवाय दत्वा तद्रक्षाधिकृतान् परमारराजपुत्रान् नियोज्य स्वयमेव तापसींदीक्षामंगीचक्रे।'

अर्थात् सचिवों के द्वारा भोर में प्रहरियों को पकड़ने से रोकते हुए मालवमण्डल में महाकाल देव के प्रासाद में जाकर

स्वयं देव की आराधना करने लगा। देव के आदेश से दोनों भुजाएँ खोलकर अन्त:पुर (रनिवास) सहित वह मालवदेश उन देव (महाकाल) को देकर उनकी रक्षा की जिम्मेदारी में परमार राजपुत्रों को नियुक्त करके स्वयं ने तपस्वी की दीक्षा स्वीकार कर ली।

इस कथा के अनुसार स्पष्ट ही परमार कभी महाकाल के मालवामण्डल के रक्षाधिकारी थे, जो बाद में अवसर पाकर स्वामी बन गये। राज्य पर पूर्ण स्वामित्व राजा मुंज ने प्राप्त किया और उसे चरम गौरव प्रदान किया महाराज भोजदेव ने। यह गौरव सर्वांगीण था, राजकीय भी और सांस्कृतिक भी। न मुंज ने और न सिन्धुराज ने वैसा संगठित साम्राज्य अपने पीछे छोड़ा था, जैसा प्रतिहार नागभट द्वितीय ने मिहिरभोज के लिए छोड़ा था। राजा भोज ने अपनी प्रतिभा, शक्ति और सुव्यवस्थित योजना से एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। वर्तमान ज्ञात सन्दर्भों के अनुसार उत्तर में कन्नौज, पटना, भोजपुर से दक्षिण में तुंगभद्रा नदी तक तथा पश्चिम में द्वारिका से पूर्व में मगध तथा गौड़ (बंगाल) तक राजा भोज का साम्राज्य व्याप्त था। राजा भोज ने देश से तुरुष्कों को भी पराजित कर बाहर का रास्ता दिखा दिया था और इस लक्ष्य में अन्य राजाओं को सहयोग भी दिया था। पूर्वजों से प्राप्त राज्य का विस्तार कर राजा भोज ने उसे साम्राज्य के स्तर तक पहुँचा दिया। परन्तु उनका अपना गृहराज्य मालवा था। मालवा के धार के केन्द्र से राजा भोज की अपनी शक्ति का डंका सारे देश में बजने लगा था और समकालीन सभी राजशक्तियाँ सावधान हो गयी थीं या भोज से मित्रता के लिए लालायित थीं। भोज की राजसभा सैकड़ों अधीनस्थ नृपों और पाँच सौ विद्वानों तथा कवियों की भीड़ से सदा भरी रहती थी।

राजा भोज के बहुधा ग्रन्थ संस्कृत में हैं, कुछ प्राकृत में हैं। अपभ्रंश के उद्धरण उनके ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। परवर्ती ग्रन्थों में भोज की अपभ्रंशोत्तर भाषा की उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। ऐसी कतिपय उक्तियों का संकलन मेरी 'हिन्दी - प्रकृति और प्रवृत्ति' पुस्तक में पाया जा सकता है। राजा भोज का भारत में अपने युग में अमित प्रभाव था। उनके रचना-संसार की व्यापकता इतनी विस्तृत और प्रभावशाली थी कि वह प्रभामण्डल देश और उनके युग की सीमाओं को लाँघकर आज तक अपनी चकाचौंध से सबको आकर्षित कर रहा है। राजा भोज सम्बन्धी कहानियाँ न केवल भारतीय जनमानस में गहराई तक पैठी हुई हैं, अपितु पश्चिम तथा मध्य एशिया के साथ ही मंगोलिया, चीन, तिब्बत, नेपाल, श्रीलंका आदि तक में उनकी कहानियाँ पायी जाती हैं। मंगोली भाषा का ऐसा ही 'आराजि बुजि' ग्रन्थ प्रकाशित है। ऐसे अन्य ग्रन्थों की सम्भावना भी हो सकती है, जो प्रकाश की प्रतीक्षा में हैं।

राजा भोज की अपनी समकालीन बोली के ये उदाहरण दिये जाते हैं-

राजाभोज प्राह-

घसइ घसावइ किं मारिसि रे कान।
टहरी-टहरी जोइ छइँ किं नासिसि रे।
मानुसडाँ दस-दस हवइ देवेहिं निम्म दीआइं।
मज्हनकं तेह एकहि दसा नव चोरे हरी आइं॥

भोजपृच्छा धनपालकृत समस्यापूर्ति-

एकइ मंदिरि ऊपनाँ एकइ सुन्दरि वास।
हार पयोधरसिउँ रमइ उ झंखह पयवास॥

जँ जाणीइ रे ते कीजइ कागा। तलि मूँडी निइउँ पागा॥

काक ने कहा-

जेतइँ बोलउँ तेहुँ हँसा। मज्झहिं व जासिंइ निश्चइ हँसा॥

राजा भोज के दो शताब्दी बाद 1215 ई. (1272 संवत्) में नरपति नाल्ह ने बीसलदेव (विग्रहराज साँभर नृप) तथा राजा भोज की पुत्री राजमती सम्बन्धी एक काव्य रचा था- बीसलदेव रासो। उसमें कहा गया है-

अतिरंग स्वामी सूँ मिली राति। बेटी राजा भोज की।

राजा भोज परमार या पँवार जाति का था। एक प्राचीन खाँडे पर लिखा गया है-

सिप्रा नदी उज्जेनी धार। राजा विक्रम जात पँवार॥

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची के चतुर्थ भाग के पृष्ठ-591 पर लिखा है।

(1) सं.-731 राजा भोज उँजणी बसाई।

(2) 1077 सं. राजा भोज रे बेटे वीर नारायण सेवाणो बसायो॥

पहले का संवत् यदि सही है तो यह भोज कोई प्राचीन है। यदि यह संवत् गलत है और लेखक का तात्पर्य इसी मालवाधीश भोज से है, तो यह बात सच प्रतीत होती है कि इस परमार राजा भोज ने उज्जैन को फिर से वर्तमान स्थान पर महाकाल क्षेत्र में बसाया।

संवत् 1077 (1022 ई.) में राजा भोज के पुत्र वीरनारायण ने सेवाणा बसाया। यह भोज के पुत्रों में एक और नाम जुड़ जाता है। यह सन् संवत् मालवाधीश भोज का ही समकालीन है। और वीरनारायण उनका पुत्र था, जो सेवाणा बसाकर वहाँ राज्य कर रहा था। राजा भोज के इस पुत्र का उल्लेख यहीं से प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य कथाग्रन्थों से राजा भोज के पुत्रों के नाम ज्ञात होते हैं। वत्सराज (वच्छराज) नामक पुत्र की पुष्टि तो शिलालेख से भी हो जाती है। इनके अतिरिक्त भी दो और पुत्र थे भोज के। राजवल्लभ के भोजचरित में वत्सराज और देवराज का उल्लेख है। कुँवर महमूद अली की वंशावली में फूलकुमार नामक भोजपुत्र बताया गया, जिसका पुत्र जयसिंह था, जो भोज का उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार वत्सराज, देवराज, फूलकुमार, वीरनारायण – ये चार पुत्र थे राजा भोज के। इन सबका ज्ञान लोककथाओं से, लोक परम्पराओं से होता है। परन्तु उनमें से वत्सराज नाम की पुष्टि 1010 के ताम्रपत्र से हो जाती है। जब कथावर्णित एक नाम वास्तविक है तो अन्य भी वास्तविक होने चाहिए। जब ये नाम प्राप्त होते हैं तो जब तक इनका कोई खण्डनात्मक ठोस प्रमाण नहीं प्रकाश में आये, तब तक इन नाम वालों को हमें भोजपुत्र मानते रहना चाहिए।

उदैभानजी ने संवत् 1765 (1708 ई.) में 14 पद्यों का 'भोजजी को रासो' काव्य रचा था, जिसमें कवि ने राजा भोज के वैभव और यश का वर्णन किया है। यथा–

सूर शिरोमणि सूर सुत सूर टरैं नहिं आन।
जहाँ-तहाँ स्रवन सुन जिये तहाँ भूपति भोज बखान॥ 3॥

अगरचन्द नाहटा और भँवरलाल नाहटा ने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पुस्तक सं. 1994 में प्रकाशित की थी। उसमें भोज सम्बन्धी कई उल्लेख पाये जाते हैं–

(क) भुगल भेरि नफेरि नाद बाजह सरणाइ।
एक भणइ ए वस्तुपाल, एक भोज सवाइ॥ 98॥

(ख) मंत्रि लखू नइ भीमजी भाभा भोजा जोइ॥ 80॥

(ग) रायमल्ल श्रीरंग छुटा भोजा परु ए॥ 32॥

(घ) धोधू चाइमल्ल नेतसी मेघउ पारस साह।
नेमिदास धणराज सहसासिंध गंगदास भोज अगाह॥ 3॥

गुजरात का वस्तुपाल स्वयं को विद्वान तथा गुण में भोजतुल्य मानकर तन्तुल्य ही लघुभोजराज, सरस्वती कण्ठाभरण आदि उपाधियाँ धारण करता रहा था, यद्यपि वह मालवा और परमारों के शत्रुराज्य का मंत्री था। यह सब भोज के सद्गुणों का ही आकर्षण था। राजशेखर सूरी अपने प्रबन्धकोश में कहता है कि श्रीभोज के मुख कमल के वियोग से निराधार मन को भारती सरस्वती श्रीवस्तुपाल के मुख-चन्द्र में बहला रही है।

श्रीभोजवदनाम्भोजवियोगविधुरं मनः।
श्रीवस्तुपालवक्त्रेन्दौ विनोदयति भारती॥ 286 वाँ श्लोक॥

यह उल्लेखनीय है कि यह वही मंत्री वस्तुपाल है, जिसने तेजपाल के साथ मिलकर देलवाड़ा के अद्वितीय कलासम्पन्न मन्दिर बनवाये थे, जो आज भी जगत् का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।

राजा भोज के विषय में ऐसी अगणित उक्तियाँ सदियों से कही जाती रही हैं। उनका अब तक विधिवत् संकलन नहीं किया गया और न इस लेख का यह लक्ष्य है।

'बाँकीदास री ख्यात' में पंवार वंश विवरण दिया गया है। वह 'पंवार वंश दर्पण' में प्रकाशित है। उसमें राजा भोज सम्बन्धी एक लघुकथा संग्रहीत है, जो मनोरंजक के साथ ही शिक्षाप्रद भी है (पृ.-28)-

'एक रींछ किवाड़ लगाकर गुफा में बैठा था। राजा भोज ने जाकर कहा- किंवाड़ खोलो। तब रींछ ने कहा- कौन है? राजा ने कहा- मैं राजा हूँ। तब रींछ ने कहा- राजा तो इन्द्र है। तब भोज ने कहा- किमाड़ खोलो, मैं दाता हूँ। तब रींछ ने कहा- दाता तो करण हुआ। भोज ने कहा- किंवाड़ खोलो। मैं क्षत्रिय हूँ। तब

रींछ ने कहा- क्षत्रिय तो अर्जुन हुआ। तब भोज ने कहा- खोलो किंवाड़। रींछ ने कहा- कौन है? भोज ने कहा- मनुष्य हूँ। तब रींछ ने कहा- मनुष्य तो धारापति भोज है। भोज हो तो हाथ लगाये बिना, बिना खोले किंवाड़ खुल जाएगा। और ऐसा ही हुआ।' यह कथा बताती है कि उपाधि प्राप्त तो एक से बढ़कर एक हुए हैं, भूतकाल है। व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसके मनुष्य होने में है।

एक बार राजा भोज विचरण कर रहे थे। उन्होंने ब्राह्मण को चमड़े का कमण्डल लेकर जाते देखा, तो कारण पूछा- चमड़े का पात्र लेकर क्यों जा रहे हो? ब्राह्मण ने कहा- इस समय लोहे और ताँबे का अभाव होने से उन धातुओं के पात्र नहीं बन रहे हैं। इसलिए चर्मपात्र लेकर जा रहा हूँ। तब राजा ने पूछा- विप्रवर! लोहे और ताँबे का अभाव क्यों हो गया? ब्राह्मण ने कहा- राजा भोज के राज्य में शत्रुओं को जंजीरों से बाँधने के कारण लोहा नहीं मिलता और दानपत्र इतने दे दिये गये कि ताँबे का अभाव हो गया है। राजा भोज ने प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार दिया।

विक्रमादित्य के समान राजा भोज ही ऐसे राजा हुए, जिनके विषय में न जाने कितनी कहानियाँ प्रचलित हैं। राजा भोज का परम मित्र था कालिदास। एक बार किसी बात पर रूठकर कालिदास कहीं चला गया। भोज उसके बिना रह नहीं पाते थे। अत: उन्होंने खोज करने के लिए घोषणा करवा दी कि जो कोई अपना स्वयं का रचा नया श्लोक आकर सुनायेगा, उसे लाख मुद्राएँ दी जाएँगी। कई लोग अपने-अपने नये-नये काव्य लेकर पहुँचे, पर असफल रहे। पुरस्कार प्राप्त नहीं कर सके। क्योंकि भोज की सभा में तीन विद्वान थे। एक को एक बार सुनने पर पूरा का पूरा वैसा ही याद हो जाता था। दूसरे को दो बार सुनने पर और तीसरे को तीन बार सुनने पर याद हो जाता था। जब कोई कवि आकर सुनाता, तो एकश्रुत उस काव्य को पुराना बताते हुए पूरा का पूरा सुना देता है। वह सुनकर दूसरा द्विश्रुत सुना देता था। तीन बार सुनकर त्रिश्रुत वैसा ही सुना देता था। जब तीन लोग उसे सुना दें, तो नया काव्य होने पर भी कवि लज्जित होकर चला जाता था और उसे पुरस्कार नहीं मिल पाता था। सब कविगण निराश थे।

कालिदास को यह सब ज्ञात हो गया। उसने एक श्लोक लिखकर एक वृद्ध ब्राह्मण को देकर राजा भोज की सभा में भेजा। उसने वह श्लोक पढ़ा। उस श्लोक का तात्पर्य यह था- 'हे राजन्! हे भोजराज! आपका कल्याण हो। सारा संसार जानता है कि आपके पिता बड़े धार्मिक थे। उन्होंने मुझसे 99 करोड़ रत्न कर्ज में लिये थे। यह बात आपकी सभा के सब पंडित जानते हैं। अत: आप अपने पिता का वह कर्ज चुका दें। यदि आपकी सभा के पंडित मना करें, तो आप इस श्लोक का रचनाकार मुझे मानकर एक लाख रुपये प्रदान करें।' यह सुनकर वे तीनों विद्वान चुप रह गये और एक दूसरे की ओर देखने लगे। समस्या यह थी कि वे यदि इस श्लोक को पुराना बतावें तो राजा पर कर्ज सिद्ध होता है और 99 करोड़ का वह कर्ज अदा करना पड़ता है। और नया सिद्ध होता है तो घोषणानुसार एक लाख का पुरस्कार देना पड़ता है। वे पंडित उदास होकर चुप रहे। राजा प्रसन्न हो रहा था। राजा समझ गये थे कि ऐसी चतुराई का श्लोक कालिदास ही लिख सकता है। राजा भोज ने उस विप्र को एक लाख रुपये दिलवाये। फिर उससे पूछा- सच बताओ, किसने लिखा था यह श्लोक? ब्राह्मण ने सच-सच बतला दिया। बोला- कालिदास! कालिदास की रचना है स्वामी। राजा ने ब्राह्मण से कालिदास का पता पूछा और उसे ससम्मान वापस राजसभा में स्वयं लेकर आये।

एक बार राजा भोज के राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। पशु मरने लगे। भूमि सेठ-साहूकारों के पास गिरवी पड़ी थी। लगान चुकाने के लिए किसानों के पास कुछ भी नहीं था। उधर राजकोष खाली हो रहा था। राजा भोज ने पटेल-पटवारियों को निर्देश दिया कि किसी तरह लगान वसूल किया जाए। पर उनके सब हथकण्डे व्यर्थ गये। वे खाली हाथ लौटे। उन्होंने आकर कहा- महाराज! लोगों का शरीर ठठरी हो गया। उनके पास उस ठठरी के सिवाय और कुछ नहीं बचा। जिन लोगों के लिए 'महुवा मेवा बेर कलेवा, गुलगुल बड़ी मिठाई' थी, वे अब महुआ और बेर की पत्तियाँ खा रहे हैं। राजा ने आदेश दिया- 'लोगों की सम्पत्ति कुर्क कर ली जाए।' कर्मचारियों ने कहा- महाराज! लोगों के पास स्थान के सिवा घर में कुछ भी नहीं बचा। बर्तन तक नहीं है। चूहे तक कण-कण के लिए तरस रहे हैं। गाँव की सबसे अमीर बुढ़िया की सम्पत्ति जप्त की गई, तो वहाँ से तीन चिलम तमाखू, पान रखने की डिब्बी टीन की, चार सूत की माला मिली। इसमें कितना लगान मिलता, स्वामी। राजा ने कहा- 'तो उनके चूल्हे

खोद लाओ'। अधिकारी चकित थे। ऐसा तो कभी नहीं किया। जमीन-जायदाद जप्त की, माल-पशु जप्त किये, लोगों की पिटाई की, परन्तु चूल्हे? पर क्या किया जाए। राजाज्ञा का पालन तो करना ही है। वे घर-घर जाकर चूल्हे खोद-खोदकर बैलगाड़ियों में भर-भरकर लाये और राजकोष में जमा करने गये, तो कोषाध्यक्ष ने मना कर दिया। राजकोष खाली हो रहा था। राजा भोज ने राजसभा की। पटवारी-पटेल, अधिकारी हाजिर हुए। राजा ने पूछा- घर-घर से चूल्हे तक लाने की आज्ञा दी गयी थी।

'हुजूर, हुकूम की पूरी तामील हुई है।'

'फिर खजाने में जमा क्यों नहीं किये गये?'

'कोषाध्यक्ष ने मना कर दिया, स्वामी।'

'मैं खजाने में मिट्टी कैसे जमा कर सकता था, स्वामी।' कोषाध्यक्ष ने हाथ जोड़कर कहा।

'मिट्टी!' राजा भोज ने आश्चर्य से पूछा।

अब तक मंत्री सारी स्थिति समझ चुका था। वह बोला- 'महाराज! आपका राजवंश पीढ़ियों से राजा हैं। आपने महल में चूल्हे सोने के ही देखे हैं।'

'तो चूल्हे फिर होते काहे के हैं?' राजा ने उत्सुकता से पूछा।

'मिट्टी के।' मंत्री ने बताया- प्रजा के चूल्हे मिट्टी के ही होते हैं स्वामी! घर-घर मिट्टी के चूल्हे होते हैं।

राजा चुप रह गया।

एक अन्य कथा के अनुसार एक बार राजा भोज ने अपने अन्त:पुर पहुँचने पर पाया कि रानी अपनी सखी से बात कर रही है। वह भी पास में जाकर खड़ा हो गया। रानी की सखी लजाकर वहाँ से हट गई। रानी के मुँह से अचानक 'मूर्ख' शब्द निकल गया। वह धीरे से बुदबुदायी थी, परन्तु राजा ने सुन लिया और वह चुपचाप लौटकर राजसभा में जा बैठा। राजा को समझ नहीं आ रहा था कि रानी ने ऐसा क्यों कहा? धीरे-धीरे राजसभा में पंडित लोग आने लगे। प्रत्येक पंडित के आने पर राजा 'मूर्ख' शब्द का उच्चारण करने लगा। सब चकित थे। पर चुपचाप बैठते गये। मर्म कोई भी समझ नहीं पा रहा था। कालिदास के सभा में प्रवेश करने पर भी राजा ने 'मूर्ख' शब्द कहा, तो तत्काल उसने कहा- हे राजन्! न तो मैं मार्ग में खाता हुआ चलता हूँ, न हँसता हुआ बोलता हूँ, न गई बात का सोच करता हूँ, किये काम का घमण्ड भी नहीं करता, न बातचीत करते दो लोगों के बीच जाकर खड़ा होता हूँ, फिर बताइए मैं मूर्ख कैसे हुआ?

इतना सुनते ही राजा समझ गया कि एकान्त में बात करती रानी और उसकी सखी के पास जाकर मेरे खड़े हो जाने के कारण ही रानी ने मुझे मूर्ख कहा।

राजा भोज से सम्बन्धित अगणित कहानियाँ न केवल प्रकाशित हैं, अप्रकाशित लिखित हैं, अपितु अलिखित रूप में जनता के कण्ठों में विचर रही हैं। ऐसी ही एक भील आदिवासी समाज में अलिखित कहानी यहाँ पहली बार प्रस्तुत की जा रही है, जो अपने गठन में 'कथासरित्सागर' की कथा जैसी है-

प्राचीन काल में राजा भोज नामक राजा भोज नगरी में राज करता था। राजा भोज चौबीस वर्ष तक धर्म करता है, धर्म न तो बढ़ता है, न ही घटता है। राजा भोज अपने बेटे वीरसिंह को राज्य सौंपना चाहता था, मगर उसका ध्यान राज्य में नहीं लगता। राजा भोज का लड़का वीरसिंह सुतार के लड़के, लुहार के लड़के तथा कुम्हार के लड़के के साथ शिकार पर जाता था, इसलिए राजा भोज चिन्तित रहता था। राजा भोज वीरसिंह को समझाता है, फिर भी वह नहीं मानता है। राजा भोज वीरसिंह को घर से निकाल देता है। वीरसिंह भी राजा भोज के साथ झगड़ा कर लेता है और वनवास के लिए जंगल में चला जाता है। राजा भोज रानी के साथ झगड़ा कर लेता है। फिर भी राजा भोज अपने मत पर अटल रहता था। उधर सुतार, लुहार और कुम्हार भी अपने लड़के को घर से बाहर निकाल देते हैं।

राजा के लड़के वीरसिंह को जाते देखकर लकड़सिंह कहता है- क्यों वीरसिंह कहाँ जा रहे हो? वीरसिंह कहता है- मेरे पिताजी ने मुझे घर में से निकाल दिया, इसके लिए मैं वनवास के लिए जा रहा हूँ। लकड़सिंह भी अपनी कहानी बता देता है। इन दोनों को जंगल में जाता देखकर लखनसिंह एवं गड़सिंह पूछने लगता है, तो वह अपनी सभी बात बता देता है, फिर तीनों जंगल में चले जाते हैं। ये चारों जंगल में बहुत दूर पहुँच जाते हैं। ये चारों सात रास्ते के मोड़ पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं तथा बातचीत करने लगते हैं। राजा का लड़का वीरसिंह कहने लगता है- मुझे कम ताकतवर नहीं मानना, मैं तो शेर का सिर काटता हूँ।

कुम्हार का लड़का कहता है- मैं भी बारह-बारह वर्ष के मनुष्य के पैर के निशान पहचान करने में निपुण हूँ। मैं बता सकता हूँ कि मनुष्य किस तरफ गया है। फिर लुहार का लड़का लखनसिंह कहने लगता है कि मैं चौबीस वर्ष के मुर्दा व्यक्ति को जिन्दा कर सकता हूँ। सुतार का लड़का कहने लगता है- मैं भी बहुत ताकतवर हूँ। नौ मंजिला महल बनाकर उसमें सोने, चाँदी का जाल लगाकार आकाश में उड़ाकर वापस धरती पर उतारता हूँ।

ये चारों सात रास्तों के मोड़ पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं। वहाँ पर चूहा हल चलाता है और गिलहरी भैंस लेकर आती है एवं कागड़ी (कौआ काणी, चुड़ी चाणी) आदि जंगल में सभी प्रकार के जानवर देखने को मिलते हैं। फिर जंगल में शेर के दहाड़ने की आवाज सुनाई देती है। तीनों राजा के लड़के वीरसिंह को कहते हैं- शेर की आवाज आ रही है। तुम जाकर शेर का सिर काटकर ले आना। वीरसिंह कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर शेर का सिर काटने जाता है। बहुत समय हो जाने पर भी वीरसिंह के नहीं आने पर तीनों विचार करने लगते हैं, अगर हम घर जायेंगे तो राजा भोज हमें मार देगा। इसलिए तीनों भी जंगल में चले जाते हैं। थोड़ी देर बाद वीरसिंह वहाँ पर शेर का सिर काटकर कान पकड़कर ले आता है और तीनों को वहाँ पर खोजता है तथा इन्तजार करने लगता है। तीनों के वहाँ पर नहीं आने पर शेर का सिर वटवृक्ष पर टाँगकर दूसरा रास्ता पकड़कर जंगल की ओर चला जाता है। जाते-जाते जंगल में एक राक्षस के घर चला जाता है। राक्षस के घर पर उसकी लड़की होती है और राक्षस आदमी को ढूँढने के लिए जंगल में गया हुआ था। राक्षस की लड़की बहुत सुन्दर थी। एक राजकुमारी की तरह थी। वीरसिंह उसे पसन्द कर लेता है। उसका नाम भानुमती था।

भानुमती वीरसिंह को कहती है- यहाँ से चला जा, नहीं तो मेरे पिताजी तुम्हें खा जायेंगे। तभी वीरसिंह भानुमती को कहता है- तुम बहुत सुन्दर हो। राजा की राजकुमारी लगती हो। तभी राक्षस आदमी की लाशें लेकर आ जाता है। भानुमती थप्पड़ ठोंककर वीरसिंह को कंकड़ बनाकर बालों में रख लेती है। राक्षस बड़ी कड़ाही में लाश डालकर पकाकर खा जाता है और खटिया पर सो जाता है। सुबह उठकर भानुमती को कहता है- बेटी! अपने घर में मनुष्य की गन्ध आ रही है। भानुमती कहती है- नहीं पिताजी! अपने घर में कोई भी मनुष्य नहीं है। फिर राक्षस दो-चार दिन के लिए मनुष्य को ढूँढने के लिए जाता है। फिर भानुमती थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को मनुष्य बना लेती है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं और साथ में जीवन-यापन करने लगते हैं। चार दिन बाद राक्षस घर आता है। उसको आते देखकर भानुमती थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को कंकड़ बनाकर बालों में रख लेती है। राक्षस मुर्दा फेंककर पानी पीकर बैठ जाता है। फिर राक्षस मुर्दे को पकाकर खा जाता है।

ऐसा करते-करते सात-आठ महीने हो जाते हैं। एक दिन भानुमती रात को राक्षस से पूछती है- पिताजी! आप कितने दिन में आएँगे? तब राक्षस कहता है- दो-चार दिन में आऊँगा। तब वीरसिंह विचार कर भानुमती को कहता है- तेरे पिताजी को पूछना कि उसकी जान कहाँ है। फिर एक दिन भानुमती राक्षस से पूछती है- पिताजी! तुम रोज-रोज चले जाते हो, किसी दिन रास्ते में तुम्हारी मृत्यु हो गई तो मुझे कैसे पता चलेगा? इसलिए मुझे बता दो कि तुम्हारी जान कहाँ है? तब राक्षस कहता है- मुझे कोई नहीं मार सकता। बेटी! तुम मेरी चिन्ता मत करो। फिर भी मैं तुम्हें बताता हूँ। दो रास्ते के चौराहे पर एक पारू पीपल है, उस पीपल के सबसे ऊपर की डाली पर एक हिरमल पोपट है, उस पोपट के शरीर में मेरी जान है। हिरमल पोपट के एक पंख काटेंगे तो मेरा एक हाथ टूट जायेगा। पोपट के पाँव काटेंगे तो मेरा एक पाँव टूट जायेगा। पोपट का सिर काटेंगे तो मेरा सिर कट जायेगा। बेटी! तू पोपट को देखते रहना। पोपट मर गया तो मैं मर जाऊँगा। यह कहकर राक्षस रात को सो जाता है। फिर सुबह उठकर दो-तीन दिन के लिए चला जाता है।

भानुमती बालों में से कंकड़ निकालकर थप्पड़ ठोककर वीरसिंह को मनुष्य बना देती है। फिर वीरसिंह को भानुमती पूरी घटना बता देती है। वीरसिंह पीपल के पेड़ पर पोपट को देखने के लिए चला जाता है। पीपल के पास जाकर हिरमल पोपट दिखाई देता है। फिर वीरसिंह वापस आकर भानुमती से कहता है- हम कब तक इस तरह का जीवन यापन करेंगे? वीरसिंह कहता है- भानुमती! तेरे पिताजी को मार देते हैं। भानुमती भी राजी हो जाती है, फिर एक दिन वीरसिंह पीपल के पेड़ पर चढ़कर बैठ जाता है। राक्षस को आते देखकर वीरसिंह पोपट को पकड़ लेता है, पोपट को पकड़ते ही राक्षस हिलने लगता है। राक्षस के सिर पर से मुर्दा मनुष्य गिर जाते हैं। फिर धीरे-धीरे

आने लगता है। राक्षस कहता है- मेरी जान को कौन हाथ लगा रहा है? वीरसिंह पोपट का एक पंख तोड़ता है, तो राक्षस का एक हाथ टूट जाता है, फिर पोपट दूसरा पंख तोड़ता है तो राक्षस का दूसरा हाथ भी टूट जाता है। फिर पोपट का एक पैर तोड़ता है, तो राक्षस का एक पैर टूट जाता है। पोपट का दूसरा पैर तोड़ने पर राक्षस का दूसरा पैर भी टूट जाता है।

दोनों पैर टूट जाने के कारण राक्षस जमीन पर लुढ़कने लगता है। फिर वीरसिंह पोपट का सिर तोड़ देता है, तो राक्षस का सिर भी टूट जाता है। सिर टूट जाने के कारण राक्षस की मृत्यु हो जाती है। वीरसिंह राक्षस की लाश लेकर घर आ जाता है तथा भानुमती को कहता है- इसे रीति-रिवाज के अनुसार जला देना चाहिए। राक्षस की लाश को वे जला देते हैं। दोनों नहाने के लिए नदी पर जाते हैं। भानुमती कहती है- वीरसिंह! तुम नदी के नीचे नहाना, मैं नदी के ऊपर नहाऊँगी। वीर नहीं मानता है, वह कहता है- तुम नीचे नहाना, मैं ऊपर नहाऊँगा। भानुमती नदी के ऊपर नहाने लगती है और वीरसिंह नीचे नहाता है। नहाते वक्त भानुमती का एक सोने का बाल टूटकर नदी में बह जाता है, वह बाल वीरसिंह के हाथ में आ जाता है, वीरसिंह उस बाल को दूब-घास तोड़कर उसमें लपेटकर नदी में बहा देता है। दूसरे राज्य में राजा का लड़का कर्मसिंह जब नदी पर नहाता है, तो उसके हाथों में वह सोने का बाल आ जाता है। घर जाकर वह बीमार पड़ जाता है। राजा जब बीमारी का कारण पूछता है, तो वह कहता है- मुझे सोने की बाल वाली से शादी करनी है। राजा आसपास के सभी गाँवों में ऐलान करवाता है, जिसकी लड़की सोने के बाल वाली होगी, उसी से कर्मवीर कुँवर की शादी होगी। सभी गाँव में तलाश करवाने पर भी सोने के बाल वाली लड़की नहीं मिलती।

एक दिन एक विधवा औरत राजा के पास आकर कहती है- राजाजी! मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढकर लाऊँगी। इसके लिए मैं चार हजार रुपये लूँगी। राजा राजी हो जाता है। दूसरे दिन विधवा औरत कर्मसिंह के पास आकर कहती है- यह सोने के बाल वाली पुड़ी तुम्हें कहाँ मिली? कर्मसिंह उसे कहता है- कल मैं नदी पर नहाने गया तो वह पुड़ी मेरे हाथ में आयी। दूसरे दिन विधवा औरत आटा-दाल बाँधकर सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढने के लिए नदी की राह पकड़कर निकल पड़ती है। चलते-चलते ही नदी के किनारे रोटी बनाकर खा लेती है और वहीं पर सो जाती है, फिर सुबह होते ही चल पड़ती है। वह आठ दिन में उस स्थान पर पहुँच जाती है, जहाँ पर राक्षस को जलाया गया था। विधवा औरत समझ जाती है इसके आसपास ही कोई गाँव है। फिर वह उस गाँव में पहुँच जाती है, जहाँ वीरसिंह और भानुमती रहते हैं। वह विधवा औरत वीरसिंह के घर आकर झूठ-मूठ रोने लगती है- मेरा भाई मर गया। किसी ने मुझे खबर भी नहीं की। वीरसिंह और भानुमती समझते हैं कि हो सकता है पिताजी की कोई दूर की बहन होगी। फिर वह वीरसिंह के घर में रहने लगती है।

एक दिन वह भानुमती से कहती है- ला बेटी! मैं तुम्हारे बालों में जुएँ मारूँ। विधवा औरत भानुमती के सोने के बाल देख लेती है। वह भानुमती के बालों में जुएँ मारने लग जाती है। पुड़ी में सोने के बाल निकालकर मिला लेती है। एक दिन विधवा औरत भानुमती को पानी भरने के लिए भेज देती है। वह रोटी बनाने लग जाती है। विधवा औरत रोटी में जहर मिलाकर वीरसिंह को खिला देती है। रोटी खाते ही वीरसिंह के शरीर में जहर फैलने लगता है तथा वह उलटी करने लगता है। भानुमती के आते ही वीरसिंह की मृत्यु हो जाती है, फिर भानुमती रोने लगती है। विधवा औरत भानुमती से कहती है- रीति-रिवाज के अनुसार इसे जला देना चाहिए। भानुमती कहती है- इसे नहीं जलायेंगे। इसे झोली बनाकर उसमें डाल देंगे। फिर विधवा औरत कहती है- बेटी! तू यहाँ रहकर क्या करेगी? चल मेरे साथ। भानुमती घर पर ताला लगाकर विधवा औरत के साथ चली जाती है।

दूसरे राज्य में एक सप्ताह में पहुँचकर विधवा औरत राजा के राजमहल में उसे ले जाती है। वहाँ जाकर राजा को कहा- राजाजी! मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढकर ले आयी। राजा विधवा औरत को ईनाम के चार हजार रुपये दे देता है। भानुमती राजा को कहती है- मुझे नौ मंजिला भवन बनाकर उसमें सोने के जाल लगाने होंगे, तभी मैं तुम्हारे लड़के से शादी करूँगी अन्यथा नहीं करूँगी। राजा भी राजी हो जाता है। इसी बीच विधवा औरत कहती है- राजाजी! मैं नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढकर लाऊँगी। इसके लिए मैं पाँच हजार रुपये लूँगी। राजा राजी हो जाता है।

वीरसिंह के दोस्त लकड़सिंग, लखणसिंह एवं गड़सिंग

तीनों के वनवास के चौबीस वर्ष पूर्ण होने वाले होते हैं। तीनों सात रास्ते के मोड़ पर वटवृक्ष के नीचे आकर बैठ जाते हैं। फिर तीनों बातचीत करने लगते हैं। घर जायेंगे तो राजा हमें मार डालेगा। तभी तीनों ऊपर सिर उठाकर देखते हैं, शेर का सिर टँगा हुआ होता है। तीनों विचार करते हैं, हम तो यह समझे थे कि शेर ने वीरसिंह को खा लिया। लेकिन अब हमें वीरसिंह को ढूँढना होगा। लकड़सिंग गड़सिंग को कहता है- क्यों तुमने कहा था न, कि चौबीस वर्ष के मनुष्य के पैर के निशान ढूँढ लेते हैं। तो आज चलो, वीरसिंह के पैर के निशान देखकर उसे ढूँढने के लिए निकल पड़ते हैं। आगे गड़सिंग, उसके पीछे लखणसिंह और उसके पीछे लकड़सिंग जाते हैं। ढूँढते-ढूँढते वे राक्षस के घर के पास पहुँच जाते हैं। तीनों विचार करते हैं, हो सकता है कि वह इसी घर में होगा। वह दरवाजा खोलकर अन्दर जाकर देखते हैं। झोली में वीरसिंह की लाश देखकर तीनों रोने लगते हैं। तीनों वीरसिंह को जिन्दा करने का उपाय करते हैं। लखणसिंह मुर्दा को जिन्दा करने में निपुण था। लखणसिंह जंगल में जाकर आँबावा-काँबावा नामक वृक्ष की एक छड़ी लाता है तथा ऊंबरपानी वीरसिंह की लाश पर छींट देता है और दो छड़ी सिर पर तथा दो छड़ी पैर पर मारता है, तो वीरसिंह राम-राम कहकर जिन्दा हो जाता है।

वीरसिंह अपने साथियों से गले मिलकर फूट-फूटकर रोने लगता है। वीरसिंह कहता है- मैं तो शेर का सिर काटकर लाया था। तुम कहाँ चले गये? तीन दोस्त कहते हैं- हम तो समझे थे कि तुम्हें शेर खा गया होगा, इसलिए हम जंगल में चले गये थे। वीरसिंह अपनी सारी घटना बता देता है। चारों भानुमती की खोज में निकल पड़ते हैं। चारों नदी की राह पकड़कर चलते जाते हैं। सबसे आगे गड़सिंग, उसके पीछे तीनों दोस्त जाते हैं। चलते-चलते वे दूसरे राज्य में पहुँच जाते हैं। फिर वहाँ पर डेरा डालकर रहने लगते हैं।

फिर एक दिन विधवा औरत को भी पता चल जाता है कि सुतार का लड़का लकड़सिंग यहाँ पर आया हुआ है। फिर वहाँ पर वह विधवा औरत आ जाती है। वहाँ पर विधवा औरत के आने का कारण पूछते हैं, तो वह कहती है- बेटा! मैं भी सुतार के लड़के को खोज रही हूँ। और वह कहती है- राजा का लड़का कर्मसिंह सोने के बाल वाली लड़की से शादी करना चाहता है। इसलिए मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढकर लायी हूँ। वह चाहती है कि नौ मंजिला महल बनाकर उसमें सोने की जाली लगायी जाय। इसलिए मैं सुतार को ढूँढ रही हूँ। तभी लकड़सिंग कहता है- सुतार आपके सामने है। विधवा औरत प्रसन्न हो जाती है। सुतार कहता है- मैं नौ मंजिला महल बनाकर तथा सोने के जाल लगाकर उसे नौ बार उड़ाने में निपुण हूँ। तभी लकड़सिंग कहता है- इस काम के लिए मैं नौ हजार रुपये लूँगा। फिर औरत राजा के पास आकर कहती है- राजाजी! मैंने नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढ लिया है। इस काम के लिए सुतार नौ हजार रुपये माँग रहा है। राजाजी प्रसन्न होकर विधवा औरत को ईनाम दे देता है। नौ हजार रुपये सुतार को देने के लिए दे देता है।

और चारों को मालूम हो जाता है कि भानुमती राजा के पास है। सुतार नौ मंजिला महल बनाना प्रारम्भ कर देता है। कई महीनों के पश्चात् सुतार नौ मंजिला महल बना देता है और सोने का जाल भी लगा देता है।

एक दिन विधवा औरत नौ मंजिला महल देखने के लिए आती है, तब लकड़सिंग कहता है- नौ मंजिला महल में सबसे ऊपर सोने के बाल वाली लड़की बैठेगी। इसके साथ ही तुम्हें एक सुतार की लड़की, एक लुहार की लड़की एवं एक कुम्हार की लड़की को लाना होगा। विधवा औरत दूसरे दिन सभी को ले आती है। सबसे ऊपर के महल में सोने के बाल वाली लड़की को बैठा देते हैं। वहाँ पर वीरसिंह को देखकर भानुमती प्रसन्न हो जाती है और कहती है- तुम कैसे जिन्दा हो गये? तभी वीरसिंह कहता है- मेरे दोस्त ने जिन्दा किया तथा तुम्हारी खोज में निकल पड़े। दूसरी मंजिल में सुतार की लड़की एवं सुतार का लड़का

लकड़सिंग बैठते हैं। तीसरी मंजिल में लुहार की लड़की एवं लुहार का लड़का लखणसिंह बैठते हैं तथा चौथी मंजिल में कुम्हार की लड़की एवं कुम्हार का लड़का गड़सिंग बैठते हैं। सबसे नीचे की मंजिल में विधवा औरत को बैठने को कहते हैं। लकड़सिंग विधवा औरत को कहता है कि राजाजी को कह देना कि कल कर्मसिंह की बारात लेकर आये। दूसरे दिन राजा बैण्ड-बाजे के साथ कर्मवीर की बारात लेकर आता है। राजा के सैनिक नाचते-कूदते हैं। नौ मंजिला महल के पास आकर नाचने लगते हैं। सुतार राजा को कहता है- यह महल उड़ाकर बताता हूँ। सुतार नौ मंजिला महल उड़ाकर एक किलोमीटर तक ले जाता है, फिर वापस लाता है। ऐसा करते-करते सात बार हो जाते हैं। फिर राजा और कर्मसिंह बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। फिर सुतार आठवीं बार उड़ाता है फिर वापस ले आता है। सुतार राजा और कर्मसिंह को पूछता है- कैसा उड़ रहा है? राजा कहता है- अच्छा उड़ रहा है। फिर वहाँ से सुतार नवीं बार नौ मंजिला महल को उड़ाता है, तो अपने राज्य की ओर प्रस्थान कर लेते हैं।

विधवा औरत नीचे वाले महल में बैठी रहती है। उसे पता नहीं था कि इस महल में राजा भोज का लड़का वीरसिंह भी है। लकड़सिंग और वीरसिंह नीचे के महल में आ जाते हैं। वीरसिंह को देखकर विधवा औरत घबरा जाती है। वीरसिंह उसे कहता है- तुमने मुझे जहर वाली रोटी खिलाकर मार डाला और तुम मेरी पत्नी को लेकर यहाँ आ गयीं। वीरसिंह उसे लात मारकर नीचे गिरा देता है और नौ मंजिला महल उड़ाकर अपने राज्य में ले आते हैं। राजा भोज के महल के पास आकर नीचे उतारते हैं। सभी गाँव वाले इकट्ठा हो जाते हैं। वहाँ पर राजा भोज आ जाता है। राजा भोज कहता है- क्यों वनवास के चौबीस वर्ष हो गये और शादी करके एवं महल बनाकर आ गये? वीरसिंह तीनों मित्रों को नौ मंजिला महल दे देता है और तीनों की शादी करवा देता है तथा सुतार का लड़का सुतारी का काम, लुहार का लड़का लुहारी का काम एवं कुम्हार का लड़का कुम्हारी का काम करने लगते हैं। तीनों खाते-पीते एवं मौज करते हैं।

राजा भोज का लड़का वीरसिंह भी राजपाट सँभाल लेता है। फिर राजा भोज एवं रानी के बीच झगड़ा हो जाता है। रानी राजा की गलती निकालती है और कहती है- तुम्हारे कारण मेरा लड़का चौबीस वर्ष तक वनवास गया। राजा भोज कहता है- मैं

भी वनवास जाऊँगा। वह घोड़े पर सवार होकर वनवास के लिए निकल पड़ता है। वह चलते-चलते घने जंगल में जा पहुँचता है। राजा भोज को डर लगने लगता है। राजा भोज शेर की आवाज सुनकर काँपने लगता है। दूसरी ओर से महादेव और पार्वती का स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आगमन होता है। महादेव और पार्वती पृथ्वी पर जीवों की अवस्था देखने के लिए रात के बारह बजे आते हैं। रात को घने जंगल में जंगली जानवरों की आवाज सुनकर पार्वती डरने लगती हैं। महादेव ने जंगल में बारह फीट ऊँचा मचान बनाया। मचान पर सिर्फ दो लोगों की जगह थी। महादेव और पार्वती मचान पर बैठकर बातचीत कर रहे थे। तभी वहाँ पर राजा भोज आ जाता है और महादेव को कहता है- मुझे भी बहुत डर लग रहा है। महादेव कहता है- तुम भी ऊपर आ जाओ। महादेव पार्वती को कहता है- पार्वती! तुम जरा सरक जाओ। मैं भी जरा सरक जाऊँगा तो राजा भोज को बैठा लेंगे। पार्वती कहती है- तुम्हारी जगह पर बैठा लो, मैं नहीं सरकूँगी। अगर मैं सरक गयी तो मैं गिरकर मर जाऊँगी। महादेव कहता है- पार्वती! तू नहीं मानती तो मैं अपनी जगह पर बैठा लेता हूँ। दोनों मुश्किल से बैठ जाते हैं। पार्वती महादेव को कहती है- चलो, अपना-अपना खाना खायेंगे।

महादेव के पास एक लोटा पानी, एक रोटी तथा थोड़ी दाल होती है। पार्वती के पास एक लोटा पानी, एक रोटी एवं थोड़ी दाल होती है। महादेव पार्वती को कहता है- पार्वती! तुम थोड़ा पानी, रोटी और दाल राजा को देना एवं मैं भी दूँगा। पर पार्वती नहीं मानती और कहती है- मैं अकेली एक लोटा पानी, एक रोटी खाऊँगी। किसी को नहीं दूँगी। महादेव राजा भोज को आधी रोटी, दाल एवं आधा पानी देता है। तीनों खा-पी लेते हैं।

महादेव पार्वती को कहता है- पार्वती! तुमने न तो राजा भोज को बैठने के लिए जगह दी और न ही रोटी दी, अकेली ही खायी। अब जरा सरक जाओ, राजा भोज को भी सुला लेंगे। पार्वती स्पष्ट मना कर देती है और कहती है- तुम अपनी जगह पर सुला लो। राजा भोज और महादेव दोनों चिपक-चिपककर सो जाते हैं। सूर्योदय के पूर्व महादेव एवं पार्वती मचान के नीचे उतरकर सो जाते हैं। सुबह होने पर राजा भोज जाग जाता है और नीचे उतरकर महादेव एवं पार्वती को देखता है। राजा भोज समझता है कि महादेव और पार्वती मचान से गिरने से दोनों की मृत्यु हो गयी। ये कैसे हो गया? इसका पाप तो मुझे लगेगा। अब क्या करना? उनके साथ मैं नहीं आता, तो ऐसा नहीं होता। राजा भोज कहता है- महादेव कैसे मर गयी? उन्होंने तो मेरे साथ धर्म किया था। उन्हें नहीं मरना था। उन्होंने तो मुझे मचान पर सुलाया, पानी पिलाया, रोटी खिलाया। इससे तो पार्वती को ही मर जाना था। वह घोड़े पर बैठकर विचार करता है, ये सारी घटना रानी के कारण हुई। घर जाकर रानी को मार दूँगा। जंगल से लकड़ी तोड़कर ले जाता है तथा घोड़े को तेज दौड़ाता है और मारता भी है।

स्वर्गलोक से ईश्वर का विचार है, राजा भोज तो बहुत गलत कार्य कर रहा है, उसको सुधारने के लिए पृथ्वी पर जाना होगा। इसलिए ईश्वर महाराज का वेश बनाकर पृथ्वी पर आता है। राजा भोज के आगे आकर प्रकट हो जाता है। महाराज हरिओम कहकर राजा भोज को पूछता है- कहाँ जा रहे हो, वत्स? बहुत गुस्से में हो। राजा भोज कहता है- मुझे मत रोको। मैं बहुत गुस्से में हूँ। नहीं तो मैं तुझे भी मार दूँगा। महाराज कहता है- मुझको मत मारो। उससे बात पूछी- क्या तकलीफ है तुम्हें? आओ, मैं तुम्हारा भविष्य देखता हूँ। राजा भोज कहता है- भविष्य फल अच्छी तरह से देखना, नहीं तो मैं तुम्हें मार दूँगा। फिर दोनों पंचांग लेकर बीच रास्ते में ही बैठ जाते हैं। महाराज कहता है, मेरी बात सच होगी तो हाँ कहना, नहीं तो ना।

महाराज कहता है- तुम्हारा रानी के साथ झगड़ा हुआ, रानी तुम्हें पागल कहती है और तुमने वीरसिंह के साथ झगड़ा करके चौबीस वर्ष वनवास के लिए निकाल दिया था। और साथ में सुतार का लड़का, लुहार का लड़का एवं कुम्हार का लड़का भी वनवास गये थे। चलते-चलते चारों सात रास्ते के चौराहे पर एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। चारों बातचीत करने लगे, तभी शेर की दहाड़ सुनकर तुम्हारा लड़का वीरसिंह शेर की गर्दन काटने के लिए कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर वहाँ से चला जाता है। बहुत देर हो जाने पर वीरसिंह के नहीं आने पर तीनों दोस्त समझे कि वीरसिंह को शेर खा गया होगा, इसलिए वीरसिंह नहीं आया। तीनों दोस्त वहाँ से चले जाते हैं। उनके जाने के बाद वीरसिंह वहाँ पर शेर का सिर लेकर आता है। उनको वहाँ पर न पाकर शेर का सिर वटवृक्ष के ऊपर टाँग देता है एवं उनकी खोज में निकल जाता है। उनको ढूँढते-ढूँढते वह एक राक्षस के घर पर चला जाता है। राक्षस के घर पर उसकी लड़की भानुमती होती है।

वीरसिंह उसे पसन्द कर लेता है। राक्षस जब घर आता है तो वह कंकड़ बनाकर बालों में छिपा लेती है। दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध बढ़ जाता है। बहुत समय बाद वीरसिंह राक्षस को मार देता है और राक्षस को नदी पर जला देते हैं। फिर दोनों नदी पर स्नान करने के लिए जाते हैं। भानुमती नदी के ऊपर नहाती है एवं वीरसिंह नीचे नहाता है। भानुमती का एक सोने का बाल टूटकर नदी में बह जाता है। दूसरे राज्य में राजा का लड़का कर्मसिंह जब नदी पर नहाने जाता है तो उसके हाथों में वह सोने का बाल आ जाता है। वह घर आकर बीमार पड़ जाता है। राजा जब बीमारी का कारण पूछता है, तो वह कहता है- मैं सोने के बाल वाली लड़की से शादी करूँगा। एक दिन एक विधवा औरत राजा के पास आकर कहती है- राजाजी! मैं सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढकर लाऊँगी। इसके लिए मैं चार हजार रुपये लूँगी। राजाजी भी राजी हो जाता है। एक दिन विधवा औरत सोने के बाल वाली लड़की को ढूँढते वीरसिंह के घर आ जाती है। वह वीरसिंह को जहर वाली रोटी खिला देती है। वीरसिंह को भानुमती झोली में डालकर रख देती है। फिर विधवा औरत भानुमती को दूसरे राज्य में लेकर चली जाती है।

बहुत समय बाद तीनों दोस्त उस स्थान पर आ जाते हैं, जहाँ से वह भटक गये थे। तीनों वटवृक्ष के नीचे आ जाते हैं, फिर वह वृक्ष के ऊपर देखते हैं तो शेर का सिर टँगा दिखाई देता है, फिर तीनों वीरसिंह की खोज में निकल पड़ते हैं। खोजते-खोजते वह राक्षस के घर पर आ जाते हैं। दरवाजा खोलकर देखते हैं तो वीरसिंह की लाश झोली में पड़ी है। फिर तीनों वीरसिंह को जिन्दा करने का उपाय करते हैं। लुहार का लड़का वीरसिंह को जिन्दा कर देता है। फिर चारों भानुमती की खोज में निकल पड़ते हैं। चारों भी दूसरे राज्य में पहुँच जाते हैं और भानुमती की खोज कर लेते हैं। दूसरे राज्य के राजा से भानुमती कहती है- नौ मंजिला महल बनाकर देंगे तभी मैं कर्मसिंह से शादी करूँगी, नहीं तो नहीं तथा उसमें सोने की जाली लगानी होगी। फिर विधवा औरत नौ मंजिला महल बनाने वाले सुतार को ढूँढ लेती है। लकड़सिंग नौ मंजिला महल बनाना स्वीकार कर लेता है और कहता है इसके लिए मैं नौ हजार रुपये लूँगा। राजाजी नौ हजार रुपये दे देता है।

बहुत समय बाद नौ मंजिला महल बनकर तैयार हो जाता है। फिर लकड़सिंग नौ मंजिला महल में सोने की जाली लगा देता है। फिर विधवा औरत को नौ मंजिला महल में भानुमती, एक सुतार की लड़की, एक लुहार की लड़की एवं कुम्हार की लड़की को लाने के लिए कहता है। दूसरे दिन विधवा औरत सभी को ले आती है। सबसे ऊपर की मंजिल में भानुमती, नीचे सुतार की लड़की, उसके नीचे के महल में लुहार की लड़की, उसके नीचे कुम्हार की लड़की एवं सबसे नीचे विधवा औरत बैठेगी। सुतार (लकड़सिंग) विधवा औरत को कहता है, कल राजाजी को कह देना कि कर्मसिंह की बारात लेकर आये। दूसरे दिन राजा अपने पुत्र कुँवर कर्मसिंह की बारात लेकर आ जाता है। फिर सुतार नौ मंजिला महल को आठ बार उड़ाकर बताता है। फिर नवीं बार उड़ाता है तो अपने राज्य की ओर ले आता है। विधवा औरत को वीरसिंह लात मारकर नीचे गिरा देता है। वे नौ मंजिला महल उड़ाकर अपने राज्य में ले आते हैं। और तुम रानी के साथ झगड़ा करके वनवास के लिए निकल गये। और तुम्हें महादेव और पार्वती मिले। तुम्हें महादेव ने मचान पर बिठाया और अपने हिस्से की आधी रोटी, दाल एवं पानी दिया तथा सोने के लिए जगह दी। वह मरे नहीं जिन्दा हैं। मैं यहाँ पर बैठता हूँ, तुम देखकर आओ। वह पास के राज्य में हैं।

राजा भोज पास के राज्य में जाकर देखता है। महादेव पास आकर कहता है- मैंने तुम्हें आधी रोटी, दाल और पानी और सोने के लिए जगह दी तो मुझे दशरथ का कुँवर का रूप बन गया और राजधानी मिल गयी। और पार्वती को खराब का घर मिला। पार्वती राजा भोज को देखकर दौड़कर आती है और पाँव पड़ने लगी। राजा भोज ने कहा- तुमने मुझे न तो रोटी, दाल, पानी दी और न ही सोने के लिए जगह दी। इसलिए तुम्हें खराब का घर मिला। पार्वती कहती है- मैं तुम्हें आधी रोटी, दाल और पानी दूँगी, तुम मुझे महादेव की कुँवरानी बना दो। राजा भोज कहता है- ये सब तो भगवान ने बनाया है।

राजा भोज वहाँ से महाराज (भगवान) के पास आ जाता है। महाराज पूछता है- क्यों महादेव कैसे हैं? राजा भोज कहता है- जिन्दा हैं और कहता है- धर्म करने से उसे दशरथ की राजधानी मिल गयी और पार्वती को धर्म न करने से खराब का घर मिला। वह रोज-रोज गली में साफ-सफाई कर रही है। महाराज (भगवान) कहता है- यहाँ से सीधे घर जाओ, किसी से

गुस्सा मत करना तथा धर्म करते जाना। रुपये तो आते-जाते रहते हैं। नेकी करोगे, तो नेकी का फल तुम्हें अवश्य ही मिलेगा। आज से अपना किस्सा खत्म। राजा भोज वहाँ से सीधे घर आ जाता है और सबको साथ लेकर चलता है। राजा भोज अपने परिवार के साथ सुख-शान्ति से रहने लगता है।

समाज में परम्परागत भोज सम्बन्धी छोटी-छोटी कहानीनुमा बातें न जाने कब से तैरती हुईं आज तक आ गयी हैं। ये छोटी होने पर भी सबल आधार की और सोद्देश्य होने से पीढ़ियों से मार्गदर्शन कर रही हैं। ऐसी ही कहानियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं-

मृत्यु के समय राजा भोज ने सर्वदर्शी मंत्रियों को बुलाकर उनका यथायोग्य सम्मान करके बोला- मैंने पुण्य थोड़ा-सा किया और पाप बहुत किया। इसलिए मेरे मरने के बाद मेरे एक हाथ में काजल चुपड़ दें और दूसरे हाथ में थोड़ा-सा चन्दन चुपड़ दें। मंत्री ने कहा- ऐसा क्यों कह रहे हैं? भोज ने कहा- लोग मुझे ऐसा मानकर पुण्य करेंगे। तब भोज के मरने पर ऐसा ही करके दाग के लिए ले जाते समय लोगों ने कहा- राजा के हाथ ऐसे क्यों कर दिये? तब मंत्रियों ने राजा की कही हुई बात बता दी। तब बहुत से लोगों का पुण्य की ओर लगाव हो गया।

राजा भोज की मृत्यु सम्बन्धी एक और बात बताई गयी। भोज ने मरते समय अपने सेवक को कहा कि मैंने पुण्य नहीं किया। इसलिए मेरा हाथ काला करके तलवार के सामने रख देना। जब लोग पूछें तो कहना कि ऐसा करने के लिए राजा ने कहा था। तब उन सेवकों ने जनता को धर्म का बोध कराने के लिए भोज का काला हाथ बताया। भोज की इस मृत्यु चेष्टा को सुनकर लोग दानी हो गये।

भोज की सौ रानियों में से एक विशेष प्रिय रानी थी। परन्तु वह गोविन्द ब्राह्मण पर लट्टू थी। एक बार राजा ने रात में रात्रिचर्या में घूमते हुए अपनी उस पत्नी को अन्य पुरुष के साथ सोयी हुई देखा। तब पहचान के लिए पंडित ब्राह्मण की चोटी धीरे से काट ली। क्योंकि वह अवध्य होता है। नींद से जागने पर पंडित ने अपनी कटी चोटी देखकर सोचा- राजा मेरी हरकत जान गया है। पहचान के लिए उसने ऐसा किया है। तब उसने उसी समय उठकर सब पंडितों की चोटियाँ काट दीं। प्रातःकाल राजसभा में सब पंडित कटी चोटी के पहुँचे। राजा ने सबकी चोटी कटी हुई देखकर ठीक तय नहीं कर पाया। तब कुतूहल करते हुए राजा ने सब पंडितों को निमंत्रण दिया। सब जीमने को बैठे। राजा ने रानी से कहा- पाँच-पाँच लड्डू परोस। लड्डू परोसते हुए उसने अपने प्रिय पंडित की थाली में दस लड्डू रख दिये। तब वह विद्वान बोला- पाँच-पाँच दिये जा रहे हैं। यहाँ दस क्यों? तू जानती नहीं राजा भोज स्त्री के चरित्र पर विश्वास नहीं करता। तब राजा ने पत्नी को त्याग दिया और अवध्य होने पर पंडित को घसीट कर अपने देश से बाहर कर दिया।

लक्ष्मी की चंचलता देखकर राजा भोज बहुत दान करने लगा, तो रोहित मंत्री ने सोचा कि राजा थोड़े ही दिनों में राजकोष खाली कर देगा। अतः राजा को किसी तरकीब से रोकना चाहिए। उसने चित्रशाला के पटिये पर चुपचाप लिख दिया- आपदा के लिए धन की रक्षा करें। प्रभात में मंत्री के लिखे के पास राजा ने लिख दिया- भाग्यशाली को आपदा कैसी? मंत्री ने तब वहाँ लिख दिया- कभी भाग्य विपरीत हो जाए? राजा ने उसे हटाकर लिख दिया- संचित धन भी नष्ट हो जाता है। तब मंत्री ने राजा से क्षमा माँगी, तब उसने कहा- तुम भाग्यशाली हो राजन् कि तुम्हारा मन दान करने में पूरी तरह से लगा हुआ है। तब राजा ने प्रसन्न होकर पर्याप्त दान दिया।

एक बार राजा भोज की सभा के पास वटवृक्ष की शाखा पर बैठकर तोते ने कहा- नष्ट, नष्ट, नष्ट, नष्ट। राजा ने इस शब्द का अर्थ सब पंडितों को पूछा। परन्तु किसी को समझ में नहीं आया। तब विद्वत्कुटुम्ब ने अर्थ बताया। सर्वप्रथम ब्राह्मण ने कहा- कुभोजन से दिन नष्ट हो गया। पत्नी ने कहा- कुशील (शील रहित) भार्या नष्ट हो जाती है। पुत्र ने कहा- कुपुत्र से कुल नष्ट हो जाता है। पुत्र की पत्नी ने कहा- जो नहीं दिया जाता, वह सब नष्ट हो जाता है। राजा ने इस विद्वत्कुटुम्ब को एक लाख रुपये दिये।

एक बार राजमार्ग पर रौर नामक व्यक्ति को अनाज के कण बीनते देखकर राजा भोज ने उससे कहा- जो अपना पेट भी नहीं भर पाते उनका जनमना ही बेकार है। इस पर वह रौर बोला- अच्छे समर्थ होकर भी परोपकार नहीं करते, उनका होना न होना बराबर है। तब राजा भोज ने कहा- हे माता! ऐसा पुत्र मत जन, जो

दूसरों के भरोसे जीता है। तब रौर ने कहा- ए माता! ऐसा राजा अपने पेट में मत रख जो राजा उदार न हो। तब राजा ने उसे पर्याप्त पुरस्कार दिया।

एक बार राजा भोज ने एक घर में कुटुम्ब को कलह करते देखकर पूछा- इस तरह क्यों झगड़ रहे हो? तब उसने कहा- माता मुझसे सन्तुष्ट नहीं है, न बहू से सन्तुष्ट है। वह बहू भी न माता से न मुझसे खुश है। मैं भी उन दोनों से खुश नहीं हूँ। हे राजन्! बताओ, यह किसका दोष है? तब राजा ने कलह का स्वरूप पूछा। उसने बताया- भीम ब्राह्मण, भीमा उनकी पत्नी। उन दोनों का मैं कमल नामक पुत्र। मेरी पत्नी पद्मा। परन्तु घर में दरिद्रता है। धनाभाव में सदा झगड़ा होता है। इसलिए हम परस्पर सन्तुष्ट नहीं हैं। तब राजा ने श्लोक में सब बात कहने पर लाख रुपये उसे दिये।

राजा भोज ने एक बार द्वार पर दुखियारी नार को देखकर कहा- तेरी यह हालत क्यों है? लक्ष्मी नहीं है तेरे पास? उसने एक दोहा कहा, जिसका तात्पर्य था कि परमात्मा ने लोगों की दस-दस दशाएँ बनायीं। पर भाग्य ने मेरी एक ही दशा रखी। नौ दशाएँ चोर चुरा गये। तब राजा भोज ने एक बिजोरे फल में, लाख-लाख मूल्य के दो रत्न रखकर उसे दिला दिये। उस स्त्री ने सोचा- इसे बेचकर अनाज ले आती हूँ। उसने वह बिजोरा बनिये को दे दिया। बनिये ने सार्थवाह को दे दिया। सार्थवाह ने वह फल राजा को भेंट कर दिया। राजा ने कहा- समुद्र जल पाकर पहाड़ी नदी उछलती कल्लोल करती फिर सागर में जा मिली। राजा ने उस स्त्री को बुलवाकर पूछा। उससे कहा- मेरे स्वामी मेरी एक ही दशा है, यह सत्य है। क्योंकि बिजारे में तूने रत्न नहीं देखे। तब राजा ने कृपाकर प्रचुर धन दिया।

एक बार राजा भोज ने एक चोर कवि को पर्याप्त दान दिया। चोर ने चोरी करनी छोड़ दी। राजा को दान का गर्व हो गया तो मंत्री ने राजा विक्रमादित्य की दान की बही बताई। उसमें लिखा था कि कवि ने राजा की प्रशंसा की तो उसे सुनकर विक्रमादित्य ने पंडितों में मूर्धन्य माघ कवि को आठ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ प्रसन्न होकर दिलवा दीं। यह देखकर राजा भोज का गर्व गल गया।

एक बार राजा भोज ने नया नगर बसाने के लिए श्रेष्ठ भूमि जानने के लिए डोंडी पिटवाई। एक धारा वेश्या डोंडी सुनकर यान पर बैठकर लंका गयी। लंका की स्थिति देखकर फिर आकर बोली- यदि मेरा नाम दिया जाए तो वीरभूमि बताती हूँ। राजा ने जब मान लिया तो उसने भूमि बतायी। वहाँ वेश्या के नाम से नवीन धारानगरी राजा ने बसाई।

एक बार राजा भोज की सभा में एक आदमी आया। उससे पूछा कि तूने क्या आश्चर्य देखा? उसने कहा- कान्तिपुरी में एक बड़े सेठ ने बहुत बड़ा तालाब बनवाया। पानी से भरा। जल से एक मस्तक निकलता है और बोलता है और एक से डूब जाता है। तब राजा ने पंडितों से पूछा। पर वे अर्थ नहीं समझे। तब दूर भ्रमण करता एक पंडित मरुभूमि में गया। वहाँ एक ग्राम में वृद्ध आदमी मिला। उसे यह बात बतायी। उसने कहा- यह कुत्ता लो। तुझे लाख दाम दिलाऊँगा। तब लगातार स्नान करने वाले उस ब्राह्मण ने कन्धे पर उस कुत्ते को उठाया और उस नगर में आया। तब राजा ने उस पंडित से पूछा तो वृद्ध बोला- एक लोभ से डूबता है। राजा ने कहा- कैसे? उस वृद्ध ने कहा- धन के लोभ में यह ब्राह्मण कुत्ते को भी कन्धे पर उठाकर लाया। तो मस्तक गया। वृद्ध ने उस ब्राह्मण को राजा से एक लाख दिला दिये।

एक बार राजा भोज ने राजा भीम के पत्तन (पाटन) नगर में अपना मंत्री पहुँचाया। उसने राजा भीम के सामने कहा- राजा भोज को चार वस्तुएँ दिखाई देती हैं। एक वस्तु यहाँ है, वहाँ नहीं है। एक वस्तु यहाँ भी नहीं है और वहाँ भी नहीं है। एक वस्तु यहाँ भी है और वहाँ भी है। एक वस्तु यहाँ नहीं है और वहाँ परलोक में भी नहीं है।

तब राजा ने मंत्रियों के सामने कहा कि भोज ने चार वस्तुएँ मँगवाई हैं, वे भेजो। परन्तु उनमें से कोई भी समझ नहीं पाया। तब एक वीरम नामक व्यक्ति ने कहा- मैं चारों वस्तुएँ ले जाऊँगा। आदेश दीजिए। तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा- जाओ। तब वह चारों वस्तुएँ छिपाकर लेकर वरिष्ठों के साथ अवन्ति पहुँचा और अपने आगमन का समाचार राजा भोज के पास पहुँचाया। तब राजा दरबार में आया। आसन पर बैठकर राजा ने पूछा- चारों वस्तुएँ ले आये? मंत्री ने कहा- ले आये। राजा ने कहा- प्रथम वस्तु दिखाओ। तब उसने वेश्या दिखा दी। राजा ने कहा- ऐसी वस्तु तो यहाँ व परलोक में भी है। मंत्री ने कहा- इसके उपभोग

से यह लोक तो है, परन्तु परलोक नहीं है। दूसरी वस्तु के बारे में पूछने पर साधु बता दिये। और बताया कि इनकी सेवा से यह लोक नहीं स्वर्ग प्राप्ति होने से परलोक है। तीसरी वस्तु में श्रेष्ठ श्रद्धावान् देवों को पूजते हुए बताये। ये यहाँ भी सुखी हैं और परलोक में भी सुखी रहेंगे। चौथी वस्तु के बारे में पूछने पर आपस में लड़ते हुए जुआड़ी बता दिये। उनका यह लोक है, न परलोक है। राजा भोज ने चकित होकर कहा- यह कहा जाता है कि पत्तन (पाटन) में सब पाया जाता है, वह सत्य है। तब राजा ने कपड़ों और गहनों से उस मंत्री का सम्मान किया।

एक बार नारी के पैरों में झंकार करते नूपुर और हृदय पर हार देखकर राजा भोज ने धनपाल पंडित से पूछा- वह पैरों में झींक रहा है। तब धनपाल ने उस समस्या की पूर्ति करते हुए कहा- सोनार ने अपनी दुकान में हार और नूपुर दोनों बनाये। हार को तो नारी ने अपने हृदय से लगाया और नूपुर को उसने अपने धूल भरे पैरों में पहना। अतः अपना नीच स्थान देखकर नुपूर रो-रोकर झंकार कर रहा है।

राजा भोज शैव होते हुए भी समकालीन प्रचलित विभिन्न आस्थाओं का आदर करते थे। उनके अनुसार बौद्धों की बातें सुननी चाहिए, जैनों का आचरण करना चाहिए, व्यवहार वैदिक के अनुसार हो और ध्यान शिव का हो। उनके अनुसार अन्यों के देवों की निन्दा या उनके द्वेष से परहेज करना चाहिए। समस्त देवों की कृपा से परम सम्पदा प्राप्त करें। जैन दया, कौल रस, वेद व्यवहार और निरंजन मुक्ति दिलाता है। यही राजधर्म का लोकधर्म है।

श्रोतव्यः सौगतोः धर्मः कर्त्तव्यः पुनरार्हतः।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः॥
दयार्थी जैनमास्थेयाद् रसार्थी कौलदशनम्।
वेदांश्चव्यवहारार्थी मुक्त्यर्थी च निरंजनम्॥
अन्येषामपि देवानां निन्दां द्वेषं च वर्जयेत्।
सर्वदेवप्रसादेन सलभेत् सम्पदं पराम्॥

सन्दर्भ :

1. ज्ञानदेशना पत्रिका, 2008, पृ.-11 (मेरठ), सम्पादक- अनुपम जैन.
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी, कालिदास और उनकी कविता, पृ.-73-82.
3. वेद विद्या, नागपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ.-104-105 तथा डॉ. हरिरायचन्द्र दिवेकर का डॉ. वि.श्री.वाकणकर को 09.08.1965 का पत्र
3. पब्लिकेशन स्कीम, 57 मिश्र राजाजी का रास्ता, जयपुर.
4. प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रभावकचरित 18/139, चारुचर्या (बृहद् 419) के श्लोक.

राजा भोज का काव्यशास्त्र

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी

परमारवंशियों ने महर्षि वसिष्ठ के आचार्यत्व में माउण्ट आबू अबुदाचल पर एक विशाल यज्ञ किया। उससे प्रकट हुआ एक विशालकाय तेजस्वी मानव। उस अकेले ने शत्रुओं को मृत्यु के घाट उतार दिया, अत: उसे नाम मिला परमार- पर यानी शत्रुओं का मारक। उसके विशालवंश में हुए महाराज हर्ष सीयक। उन्हें संतान नहीं थी, दु:खी थे। कहीं कोई लावारिश तुरन्त का हुआ बालक दिखाई दिया। भगवान् की देन मान वे उसे उठा लाए। बालक तेजस्वी भी था। प्रेम से पाला-पोषा, बड़ा किया। इस बालक का नाम रखा गया वाक्पतिराज। बोलचाल में उसे कहा जाया करता मुञ्ज। संयोग से राजा हर्ष की किसी रानी की भी कूँख चल पड़ी। उसे भी पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया भोज। सीयकदेव थोड़े समय में चल बसे। राज्य व्यवस्था पुत्र भोज को न देकर वयस्क मुञ्ज को सम्हला दी गयी।

भोज भी बड़ा हुआ। उसे राज्य भी मिला। उसकी राजधानी थी धारा नगरी। उज्जयिनी भी राजधानी थी, किन्तु मुञ्ज के समय वस्तुत: धर्मनगरियों पर राज्य परमात्मा का हुआ करता है, फलत: उज्जयिनी में तो राज था भगवान् महाकालेश्वर का। ईश्वर भगवान शिव का वैसा ही नाम है जैसा भगवान राम का राम या श्रीकृष्ण का श्रीकृष्ण। 'महाकाल' नाम है धाम का । उज्जयिनी में भगवान शंकर का महाकाल नामक धाम है, जिस प्रकार काशी में उन्हीं का धाम विश्वधाम या केदार में केदार धाम। इस प्रकार महाकाल नामक धाम में प्रतिष्ठित शिव कहलाते हैं- महाकालेश्वर। वहाँ के राजा भगवान ही हुआ करते हैं। धारा-नगरी उज्जैन के पास ही है। इन दिनों यह मध्यप्रदेश में पड़ती है। यहाँ का मावा, गेहूँ, मोटी ककड़ी उतनी ही प्रसिद्ध है जितना घी/ दाल-बाफला यहाँ का

अमृततुल्य भोजन है, जिसमें घी जितना लगे उतना वह भी सुगन्धित, शुद्ध और गोघृत। खेत की मिट्टी काली किन्तु नरनारी पके केले से गौर। नख शिख भी सुडौल। उज्जैन की नारी यदि चुन्नटदार लहंगा जमाकर चक्कर लगा दे तो दस मीटर का घेरा पड़ जाए। इनकी बातचीत काव्यमयी। पुरुष यदि नाराज हो जाए तो सुनिए वह क्या कहता है। वह अब माँ-बहन की गाली अधिक देगा। वह कविता ही होगी।

भोज भी सुशिक्षित था। वह बहुज्ञ और कवि था। उसने विद्वानों को बटोरा और कवियों को भी। उसके समय की कविता भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। उसका काव्य छूता है। उस युग के, न तो पहले वैसी रचना संस्कृत में मिलती और न उसके पश्चात् आज तक। उस युग की कविता की असाधारण विशेषता है कसावट और ललितता। इसके उदाहरण है महाकवि धनिक और स्वयं वाक्पतिराज मुञ्ज।

धार में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन और संक्षेप भी होते थे। नाट्यशास्त्र का जो संस्करण बड़ौदा से हुआ है, उसे उस समय प्रस्तुत रूप में भोज के दरबारी विद्वानों ने दिया था। उसे पड़ौसी गुर्जरराज भीमदेव लूटकर ले गया था। पूरे नाट्यशास्त्र का सार संक्षेप मुञ्ज के सभा पण्डित धनञ्जय ने ही किया, जिस पर वृत्ति लिखी धनिक ने। दोनों कदाचित् एक ही पिता के पुत्र थे।

भोज के चौरासी विरूद थे और चौरासी ही ग्रन्थ। काव्य शास्त्र पर भोज ने पहले बनाया पाँच परिच्छेदों का सरस्वती कण्ठाभरण, फिर बनाया संस्कृत काव्यशास्त्र का सबसे बड़ा ग्रन्थ 'श्रृँगार प्रकाश' जिसमें छत्तीस प्रकाश थे और जो लिखा तो गया था नागरी लिपि में, किन्तु मिला केरल की मलयालम लिपि में। इसके बहुत से अंश खण्डित हैं और छब्बीसवाँ पूरा प्रकाश अभी तक प्राप्त नहीं है। अपने संस्करण में हमने उसे बनाकर परिशिष्ट में जोड़ रखा, किन्तु उसकी अपनी जगह छोड़ रखी है। यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 1916 में मैसूर के पास मिला था। इसकी नागरी प्रतिलिपि चार रजिस्टरों में बांधकर शासकीय पाण्डु ग्रन्थ संग्रहालय मद्रास में रख दी गई है। दु:ख की बात है चार में से तीन रजिस्टर फट गए हैं, किन्तु हमारे पास इन चारों रजिस्टर की डिजिटल फार्म में प्रतिच्छाया सुरक्षित है। इसी ग्रंथ पर डॉ. राघवन ने शोध कार्य किया और मूलग्रन्थ अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय को 1963 में प्रकाशनार्थ दे दिया। उसके 1-14 प्रकाशों का प्रथम भाग से वहाँ से 1998 में छपा है, जिसमें न कोई विषयसूची है और न एक पेज का भी परिशिष्ट। मूल्य भी लगभग 5000/- रूपये है। 15-36 तक का दूसरा भाग अभी प्रतीक्षित ही है।

संस्कृत में काव्यशास्त्र नवीनतम शास्त्र था। भोज ने जो चौरासी ग्रंथ लिखे थे और राजा के अनुरूप उदारता के कारण उन्हें न पत्रों का संकोच था, न स्याही आदि का, जिसे जितना लिखना हो लिखे, ताड़पत्र उनसे ले लें। भोज ने काव्य शास्त्र के जो दो ग्रंथ बनाए, उनका प्रमेय इतना विपुल है कि उसमें सम्पूर्ण काव्य शास्त्र नब्बे प्रतिशत आ जाता है। इतना ही नहीं, वह उपयुक्त प्राचीन या नवीन उदाहरणों से समर्थित भी है।

महाराज भोज की काव्य शास्त्रीय विशेषताएँ

महाराज भोज की पहली विशेषता तो यह है कि उन्होंने आस्तिकों के समान ही नास्तिक काव्य शास्त्रियों को भी आदर दिया है। उन्होंने जहाँ एक ओर 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' भामह के इस वचन को सर्वाधिक महत्त्व दिया, वहीं दण्डी के 'इस्टार्थव्यवच्छिन्न पदावली' इस वचन को भी महत्त्व दिया। दण्डी काञ्ची के पास के आस्तिक वैदिक थे और भामह सुदूर उत्तर कश्मीर के लगभग बौद्ध नास्तिक। भोज ने दोनों आचार्यों को आदर दिया। ध्वनिवादी दण्डी से दूर दिखाई दिए थे। वे भामह के ही पास थे। अभिनव गुप्त ने भी भामह को ही अधिक महत्त्व दिया था। दण्डी को उन्होंने दूसरे ही तरीके से देखा था जो अथार्थ था। भोज ने रस का निरूपण कुल मिलाकर दण्डी की कारिकाओं के आधार पर किया है और काव्यनिरूपण भामह की कारिका 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' के आधार पर, यद्यपि इससे उन्होंने 'साहित्य कल्प' को जन्म दिया, जो इस समय विश्वस्तर पर प्रचलित है।

ध्वनिवादियों नें गुण और रस दोनों तत्त्वों को काव्य से खो दी थी, दोनों को काव्यशरीर में स्थान नहीं दिया था। महाराज भोज और अभिनव गुप्त समकालीन हैं, किन्तु भोज रस को भी काव्यालंकार मानते हैं और गुण को भी। कश्मीरी आचार्यों में आनंदवर्धन के पूर्णवर्त्ती सभी आचार्य रस को काव्य का अलंकार मानते मिले। अलंकार भी काव्य का धर्म है और गुण भी, साथ ही दोनों काव्य के साथ ही उत्पन्न होते हैं। उत्पति के बाद भी उन्हें

काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। इन तथ्यों की ओर से ध्वनिवादियों ने कान बन्द कर लिए थे। महाराज भोज ने प्राचीन आचार्यों के इस दबे स्वर को बल दिया और तर्कों द्वारा उसे समर्थित किया।

भोजराज के 'श्रृँगार प्रकाश' का सही नाम है 'रस प्रकाश'। रस के अर्थ में उन्होंने 'श्रृँगार' शब्द अपने खानदान में सुरक्षित साहित्यागम से लिया। इस ग्रन्थ के द्वारा भोज ने 'साहित्य प्रकाश' नामक एक नई काव्य विधा को जन्म दिया। संस्कृत काव्यशास्त्र में जो अंतिम कल्प है, उसका प्रवर्त्तन स्वयं महाराज भोज ने किया है। एतदर्थ उन्होंने श्रृंगार प्रकाश में प्रथम आठ 1-8 प्रकाश का स्थान दिया है। इनके लिए मम्मट इस तत्त्व से अनभिज्ञ हैं, अभिनवगुप्त कुछ और ही अधिक लिखते रह गए और आनंदवर्धन ने साहित्य शब्द सामान्य अर्थ में ध्वन्यालोक के अंत में दे दिया है। साहित्य को तात्त्विकता महाराज भोज ने दी। विधा के रूप में साहित्य को महत्त्व देते हुए महाराज भोज ने लिखा है

'अनभिनेयः श्रव्यः ।
सोऽप्याख्यायिकाः संहिता साहित्य प्रकाश' इति।

- पृष्ठ 659 हमारा संस्करण

आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त (लोचन तथा अभिनव भारती) तथा मम्मट ने काव्य प्रकाश में जितने उदाहरणों पर अपने काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों की आधार शिला रखी, उनकी कुल संख्या थी 1005, जबकि भोजराज के अकेले श्रृंगार प्रकाश के उद्धरणों की संख्या है 7389। इनमें से प्राकृत की 1394 गाथाएँ घटा दी जाएँ तो संस्कृत भाषा का 5795 पद्यों का विशाल कोष भोज के समक्ष है। इन पद्यों में अधिकांश वे पद्य हैं जो अन्य आचार्यों में उद्धृत नहीं मिलते।

भोज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' नामक एक संस्कृत व्याकरण भी बनाया, जो मिलता है। श्रृँगार प्रकाश में वाक्यपदीय, तन्त्रवार्त्तिक, प्रमाणमञ्जरी, व्याकरण महाभाष्य काशिका आदि ग्रंथों का सार पदे-पदे प्रस्तुत मिलता है, अतः उसे अक्षरशः पढ़ना कठिन है। यही स्थिति सरस्वती कण्ठाभरणालंकार की भी है।

संस्कृत का अलंकृत गद्य लिखने में भी भोज दक्ष हैं। सुना जाता है- 'चम्पूरामायण' नामक गद्य काव्य भोजराज ने एक रात में पूरा किया है। ऐसे युग पुरुष की स्मृति में शत-शत प्रणाम।

भोजकालीन मालवा

डॉ. श्यामसुन्दर निगम

मालवा की शस्य-श्यामल, उर्वर एवं हरीतिमायुक्त धारित्री अति प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय इतिहास का एक अभूतपूर्व आकर्षण केन्द्र रही है। इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला व स्थापत्य एवं विज्ञान को इस प्रबुद्ध अंचल ने हर समय बहुत दुर्लभ एवं श्रेययुक्त अवदान दिया है। प्राचीन मालवा को सांदीपनि, कृष्ण-बलराम, चण्डप्रद्योत, सम्पाति, अशोक मौर्य, चष्टन, अग्निमित्र, विक्रमादित्य, यशोधर्मा, वाक्पति मुंजराज जैसे इतिहास- प्रसिद्ध महापुरुषों का संस्पर्श मिला है। वीतिहोत्र, प्रद्योत, मौर्य, शुंग, सातवाहन, गर्दभिल्ल, पश्चिमी शक, गुप्त-औलिकर, वर्धन, कलचुरी, चालुक्य आदि राजवंशों ने प्राचीनकालीन मालवा में अपनी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भूमिकाएँ निर्वहन की हैं। हर एक ने अपनी छाप एवं पहिचान छोड़ी है। पर मालवा को ठीक से जानना एवं उस पर गर्व करने का सबसे बड़ा युग परमार काल सिद्ध हुआ। परमारकालीन मालवा का स्वर्णिम एवं स्मरण-योग्य समय राजा भोजदेव का राज्य-काल रहा। सहज है कि मालवमणि भोज के व्यक्तित्व एवं उपलब्धियों पर कुछ चर्चा की जाय।

प्राचीन मालवांचल के जिन महापुरुषों का नाम भारतीय इतिहास में बड़े गर्व एवं गौरव से लिया जाता है, उनमें भोजदेव परमार का उल्लेख अपरिहार्य है। भोजदेव का स्थान इसलिये बड़ा विशिष्ट है कि वह न केवल एक वीर एवं साहसी योद्धा व राज्य-विस्तारक था, अपितु ज्ञान-विज्ञान की बहुविध शाखाओं का प्रामाणिक एवं मौलिक लेखक, स्वयं विद्वान होते हुए भी विद्वानों का संरक्षक एवं आश्रयदाता, सर्वधर्मसमभाव का मूर्त रूप एवं एक सांस्कृतिक समन्वयकर्ता शासक था। परमारों की सत्ता के प्राचीन काल में अनेक केन्द्र यथा चन्द्रावती (अर्बुद) वागड़, किराडू, भीनमाल आदि रहे हैं, किन्तु मालवा के परमार उन सबमें सर्वाग्रणी रहे हैं। मालवा के

इन परमार शासकों की सूची में सीयक (श्रीहर्ष) द्वितीय, मुंजराज, भोजदेव, उदयादित्य, नरवर्मा जैसे शासकों ने परमारों के नाम एवं यश की वृद्धि में कोई कसर नहीं छोड़ी। इन शासकों ने समकालीन राजनीतिक एवं सैनिक उच्चावचनों से जूझते हुए धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, संस्कृति एवं निर्माण कार्यों का सतत विकास किया एवं उनसे सम्बन्धित रचनाधर्मियों, कलाकारों, विद्यानुरागियों, शिल्पियों, धार्मिक एवं दार्शनिक प्रचारकों को सदैव प्रोत्साहित किया, उन्हें प्रश्रय दिया। इस मामले में भोजदेव का स्थान केवल परमारों में ही नहीं, सारे भारत के राजपूत नृपतियों में सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं चमकदार रहा है।

मालवा के परमारों में राजा भोज का स्थान निर्धारित करने के पूर्व उनकी पूर्ववर्ती पारिवारिक परम्परा को देख लेना आवश्यक है ताकि यह ज्ञात हो सके कि किस प्रकार एक महनीय राजवंशीय प्रयास को भोज ने अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के माध्यम से चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया था। कुछ चर्चा भोजपूर्व मालवा के परमार शासकों की करना उचित होगा।

हर्ष की मृत्युपरांत भारत में केन्द्रीय सत्ता का जो अभाव रहा, उसके कारण भारत का राजनीतिक पटल विघटनकारी दृश्य देखने लगा। गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट और पाल शक्तियाँ एक शताब्दी से भी अधिक समय तक पारस्परिक संघर्ष में संलग्न रहीं। इन शक्तियों के अस्त होते ही विघटन की प्रक्रिया अधिक गतिशील हुई। परिणामत: चाहमान, कलचुरि, चालुक्य, परमार आदि शक्तियाँ पश्चिमी तथा मध्यभारत में न केवल राज्य स्थापित करने अपितु साम्राज्यवाद की दिशा में प्रयत्नशील होने लगीं। निश्चित ही अर्बुद से परमारों का गहरा सम्बन्ध रहा, किन्तु जब हम मालवा के परमारों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम उनकी कुलराजधानी धारा नगरी को पाते हैं। मालवा के परमारों का प्रारम्भिक इतिहास बहुत कुछ विवादास्पद रहा। विवाद का विषय प्रारम्भिक परमार नरेशों की पहचान और उनका राज्यकाल रहा है। इस सम्बन्धी विभिन्न मतों के परीक्षण के उपरान्त मालवा के प्रारम्भिक नरेशों के नाम और तिथिक्रम को इस प्रकार प्रस्तुत किया है जो कि विभिन्न स्त्रोतों के द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है-

सम्भावित काल	नसाहतांक चरित	उदयपुर प्रशस्ति	मांधाता अभिलेख
185-805 ई.	उपेन्द्र	उपेन्द्र	धूम्रराज
805-825 ई.	-	-	देवपाल सिंह
825-845 ई.	-	-	कनक सिंह
845-865 ई.	-	-	जगदेव
865-885 ई.	-	बैरिसिंह प्रथम	श्री हर्ष
885-905 ई.	-	सीयक प्रथम	स्थिरकाय
905-925 ई.	वाक्पति प्रथम	वाक्पति प्रथम	वोशरि
925-945 ई.	बैरिसिंह	बैरिसिंह द्वितीय	वीरसिंह
945 से प्रारम्भ	सीयक	सीयक द्वितीय	सीयक

कतिपय इतिहासकारों ने इस सूची के मूल-पुरुष उपेन्द्र को कृष्णराज माना है। सम्भवत: उपेन्द्र कृष्णराज न होकर धूम्रराज था। जहाँ तक कृष्णराज का वाक्पति प्रथम के रूप में पहचाने जाने का प्रश्न है, कृष्णराज वस्तुत: द्वितीय अकालवर्षदेव था जो प्रारम्भिक परमारों पर राष्ट्रकूट प्रभाव को सिद्ध करता है।

उपेन्द्र पहला व्यक्ति था, जिसको हम परमार साम्राज्यवाद का बीजवपन करने वाला मान सकते हैं। उसने मान्यखेट में गोविन्द द्वितीय व ध्रुव धारावर्ष के मध्य होने वाले गृहयुद्ध का लाभ उठा कर अवन्ती में स्वतन्त्र राजसत्ता की स्थापना की थी। उसने इस प्रयास में सम्भवत: पालों का सहयोग लिया था। उसके इस प्रयास को राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों ने बड़ी असहनीय दृष्टि से देखा। उपेन्द्र के विदा होते ही इन दोनों शक्तियों ने मालवा क्षेत्र को अपने निश्चित प्रभाव-क्षेत्र में रखना तय किया। परिणामत: परमारों का भाग्य राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के मध्य झूले की भाँति सामन्तीय पेंग लगाता रहा। इस प्रकार परमार शक्ति के अभ्युदय और उसके द्वारा साम्राज्य स्थापित किये जाने का जो स्वप्न उपेन्द्रराज की अन्त:चेतना में उदित हुआ था, वह उसके उत्तराधिकारी विपरीत परिस्थितियों तथा दुर्बल सैन्य एवं राजनीतिक स्थिति के कारण अंकुरित करने में सीयक द्वितीय के समय तक सफल नहीं हो पाये।

उपेन्द्र से लेकर बैरिसिंह द्वितीय तक मालवा के परमारों के पास साम्राज्य जैसा कुछ नहीं था। बैरिसिंह द्वितीय एक उल्लेखनीय शासक रहा था। वाक्पतिराज द्वितीय के धरमपुरी, जैनड़ और गांवड़ी अभिलेखों में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियों से विभूषित किया गया है। बैरिसिंह द्वितीय राष्ट्रकूटों के अधीन ही ये उपाधियाँ प्रयुक्त कर सका था। जैसे ही राष्ट्रकूट कमजोर हुए, मालवा क्षेत्र गुर्जर-प्रतिहार प्रभाव में आ गया, किन्तु गुर्जर-प्रतिहार भी दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से निर्बलता की ओर बढ़ने लगे। परिणामस्वरूप बैरिसिंह द्वितीय के उत्तराधिकारी सीयक द्वितीय को अपना भाग्य आजमाने का अवसर मिला। अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में सीयक (हर्ष) द्वितीय ने महाराजाधिराजपति और महामांडलिक-चूड़ामणि की उपाधियाँ धारण कीं। राष्ट्रकूटों के एक प्रभावी मांडलिक के रूप में सीयक द्वितीय ने खेटकमंडल को अधिकृत किया। उपरान्त उसने रूड़पाटी पर विजय प्राप्त की। यद्यपि पूर्वी मालवा में उसे चंदेलों के विरूद्ध असफल होना पड़ा, किन्तु फिर भी उसने यह प्रयास किया कि मालवा परमारों के आधीन एक स्वतंत्र राज्य में विकसित हो। ऐसी स्थिति में मान्यखेट के राष्ट्रकूटों से उसका संघर्ष अपरिहार्य हो गया। परिणामस्वरूप कुछ प्रारम्भिक सफलताओं के उपरान्त राष्ट्रकूट नरेश खोट्टिग परास्त हो गया। सन् 972 ई. में सीयक राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट तक जा पहुँचा और राष्ट्रकूट वैभव और सम्पदा को अपनी लूट का विषय बनाया। उसके पहले गंग मारसिंह खोट्टिग की मदद को पहुँचता, सीयक तेजी से मालवा की ओर लौट गया। सीयक द्वितीय ने जो राज्य अपने उत्तराधिकारी को सौंपा, वह निश्चित ही एक स्वतंत्र राज्य था, जिसका प्रचार पश्चिम में गुजरात के खेड़ा जिले से लेकर पूर्व में विदिशा तक था। आज जिस क्षेत्र में मध्यप्रदेश का मंदसौर जिला है, वह उसके आधीन था। दक्षिण में माही कांठे के पूर्व और नर्मदा के उत्तर में उसका राज्य स्थित था। सीयक द्वितीय के द्वारा स्थापित स्वतंत्र परमार राज्य को कालान्तर में अपनी साम्राज्यीय पिपासा तृप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

सीयक द्वितीय का उत्तराधिकारी वाक्पति द्वितीय था। उसके अन्य नाम उत्पल एवं मुंजदेव थे। वह 974ई. से 994ई. तक शासन करता रहा। वह प्रथम परमार शासक था, जिसने मालवा के परमारों को साम्राज्यवाद की दिशा में उन्मुख किया। उसने सर्वप्रथम गुहिल शासक शक्तिकुमार को परास्त कर मेवाड़ की राजधानी आघाट को अधिकृत किया। गुहिलों के पक्षधर गुर्जरेश्वर को भी उसके सम्मुख नीचा देखना पड़ा। चाहमानों से हुए संघर्ष में भी वाक्पति मुंज सफल रहा। ऐसी ही सफलता उसे हूणमंडल के हूणों के विरूद्ध प्राप्त हुई, यद्यपि हूणों का निर्णायक उन्मूलन फिर भी शेष रहा। परमारों के वास्तविक शत्रु दक्षिण के चालुक्य सिद्ध हो रहे थे। डाहल के कलचुरि इस मामले में उनके सहयोगी थे। मुंजदेव ने कलचुरि नरेश युवराजदेव को सन्धि करने को विवश कर पूर्व की ओर से आश्वस्ति पाई। कुछ इतिहासकारों की इस धारणा को, कि वाक्पतिराज ने आबू, किराडू और जालौर पर भी विजय प्राप्त की, मानना उचित नहीं है। स्थिति जो भी रही हो मुंजदेव ने मालवा के परमार राज्य की पूर्वी और पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करके दक्षिण के चालुक्यों से निर्णायक युद्ध करना तय किया क्योंकि उसका सर्वाधिक सशक्त प्रतिद्वंद्वी कल्याणी का नरेश तैलप द्वितीय था। अपने योग्य मंत्री रुद्रादित्य के आग्रह को ध्यान में न रखते हुए अपनी छः सफलताओं के अविवेकपूर्ण उन्माद में मुंज ने गोदावरी नदी को पार कर लिया। परिणामस्वरूप मुंज को अत्यन्त ही अपमानजनक परिस्थिति में एक बंदी के रूप में कर्णाट में मृत्यु का सामना करना पड़ा। चालुक्यों ने मुंज की सामरिक शक्ति को कुचल कर परमार साम्राज्यवाद के बहुप्रतीक्षित स्वप्न को पुनः हतप्रभ कर दिया।

अपने महान अग्रज मुंजराज की अत्यधिक कारुणिक परिस्थितियों में दिवंगति के उपरान्त सिन्धुराज मालवा का परमार शासक बना। इसके राजत्व का प्रारम्भ 994 ई. व अन्त 1010 ई. मानना उचित ही होगा। सिन्धुराज ने सत्ता पर आते ही कुंतल द्वारा अधिकृत मालव क्षेत्रों को पुनः प्राप्त किया। उसने हूणमंडल के हूणों का अन्तिम रूप से उन्मूलन कर दिया। वागड़ का परमार क्षेत्र गुहिलों से छीनने में भी उसे सफलता मिली। उसे कोसल, लाट, शिलाहार और मुरलों के विरूद्ध भी सफलता प्राप्त हुई। उसे सबसे बड़ी सफलता नागों के विरूद्ध प्राप्त हुई। नागों ने अपनी राजकुमारी देकर सिन्धुराज से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये। इन उपलब्धियों के कारण पद्मगुप्त सिन्धुराज को नवसाहसांक के रूप में सम्बोधित किया। दुर्भाग्य से अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसे चालुक्य चामुंडराज के हाथों पराजय या मृत्यु भोगना पड़ी, फिर भी यह स्पष्ट है कि सिन्धुराज अपने सैनिक एवं

विस्तारवादी अभियानों में अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा कम नहीं था।

भोज की जन्म-तिथि विवादास्पद है। किसी निश्चित प्रमाण के अभाव में भोज की जन्मतिथि को निर्धारित करना कठिन है। विभिन्न मत-मतान्तरों को यदि ध्यान में रख कर कोई निर्णय लें तो भोज की जन्मतिथि सन् 982-989 ई. के मध्य रखी जा सकती है।

राजा भोज के राजनीतिक एवं सैनिक इतिहास की जानकारी लेने के पूर्व हमें उन स्त्रोतों का परिचय प्राप्त करना होगा, जिनके आधार पर यह जानकारी मिलती है। आचार्य मेरुतुंग का प्रबन्धचिंतामणि, मदनकृत परिजात मंजरी, विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित, अलबेरूनी कृत किताबुल हिन्द, राजवल्लभ कृत भोजचरित्र, बल्लाल कृत भोजप्रबन्ध, प्रभाचन्द्र रचित प्रभावक चरित्र, पद्मगुप्त (परिमल) कृत नवसाहसांक चरित एवं भोजनृपति रचित विभिन्न ग्रन्थ तथा उपलब्ध अभिलेख।

इन स्त्रोतों के आधार पर भोजदेव की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व विषयक विशद सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

भोज का राज्यारोहण : सिन्धुराज का निधन सन् 1010-11 में हुआ। उसके बाद उसका पुत्र भोज मालवा के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। भोज की आयु उस समय कम थी। उसे अपने दायित्व-बोध का पूरा ध्यान था। एक ओर तो वह अपने ताऊ मुंज की अपमानजनक हत्या का बदला कल्याणी के चालुक्यों से लेना चाहता था, तो दूसरी ओर वह मालवा को एक विस्तारवादी दिशा में ले जाना चाहता था। इस कारण पूर्ण वयस्क होने तक उसने जीवन की आन्तरिक एवं बाह्य शक्ति के विकास की ओर ध्यान दिया। जहाँ तक आन्तरिक चेतना का प्रश्न है, उसने अपना ध्यान ज्ञान-विज्ञान के अर्जन में पूरी तत्परता और निष्ठा के साथ लगा दिया। वह उसके इस काल के शिक्षण-प्रशिक्षण का परिणाम था कि उसने इतने विशिष्ट एवं बहुविध ग्रन्थों का प्रणयन किया कि वह विद्वानों में विद्वान, ज्ञानियों में ज्ञानी और विज्ञानवेत्ताओं में विज्ञानी सिद्ध हुआ। जहाँ तक जीवन के बाह्य पक्ष का प्रश्न है, इसी काल में उसने युद्ध-कला, शस्त्र-संचालन एवं विभिन्न सामरिक क्षमताओं से स्वयं को परिपुष्ट किया। इस प्रकार मालव-राज्य की वल्गा थामे उसने लगभग दस वर्षों का समय साहित्य, संस्कृति, आयुर्वेद, अश्वविद्या, भवन व नगर निर्माण, अश्वारोहण, शस्त्र, युद्ध-कला आदि के गम्भीर अध्ययन, रचनाधर्मिता एवं दक्षता प्राप्ति में बिता दिया। यौवन में प्रवेश करते ही उसने अपना ध्यान अपने सम्माननीय पूर्वज मुंज के वधकर्ता चालुक्य तैलप द्वितीय का बदला लेने की ओर केन्द्रित किया। वह भली प्रकार जानता था कि मुंजराज ने भोज का वध करवाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी, किन्तु भाग्य से वह बच गया था और मुंज की मृत्यु तक निष्कासन का जीवन ही बिताता रहा था। पर भोज के सामने तो मालवा एवं परमार प्रतिष्ठा का प्रश्न था। इस कारण सर्वप्रथम कल्याणी के चालुक्यों पर आक्रमण करना तय किया।

भोजदेव एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। मालवा के परमार राज्य को एक विशाल साम्राज्य के रूप में देखने का स्वप्न उसकी आँखों में तैर रहा था। उसकी परराष्ट्र एवं सैन्य नीति के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार थे-

1. निकटवर्ती राज्यों पर आक्रमण कर उनके क्षेत्र अधिकृत करना।
2. पराजित राजाओं के आत्मसमर्पण करने पर उन्हें उपराजा या मांडलिक के रूप में स्वीकार करना।
3. भारत के विभिन्न परमार राज्यों यथा वागड़, भीनमाल, चम्पावती, किराडू आदि से पारिवारिक एवं मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना और उन्हें उचित संरक्षण एवं सहायता प्रदान करना।
4. विदेशी आक्रामकों को भारत से बाहर खदेड़ने के प्रति सजग एवं सक्रिय रहना।
5. विजित क्षेत्रों में धार्मिक निर्माण करवाना।
6. परम्परागत शत्रुओं यथा कल्याणी और लाट के चालुक्यों के प्रति आक्रामक एवं रक्षात्मक नियोजन को पूर्णता प्रदान करना।
7. मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध को इच्छुक राजाओं व राज्यों को सकारात्मक सहयोग देना, जैसे राजेन्द्र चोल जैसे शासक।
8. अविश्वसनीय मित्रों यथा कलचुरियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक रुख रखना।
9. युद्धरत अभियानों के समय तत्काल निर्णय लेना।

निश्चित है इस हेतु भोज को पर्याप्त राजनीतिक, प्रशासकीय एवं सैन्य तैयारियाँ करनी पड़ी थीं। अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों की व्यापकता को जानने एवं सूचना-प्राप्ति हेतु गुप्तचर व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के भोज के प्रयास निश्चित ही प्रशंसनीय थे। एक महत्त्वपूर्ण सैन्य-परिवर्तन यह था कि उसने किराये पर नियुक्त सैनिकों की विभिन्न क्षेत्रों में भरती कर रखी थी, जो अन्य राज्य पर आक्रमण के पूर्व उस राज्य के सीमान्त पर इनके माध्यम से पर्याप्त अराजकता पैदा करवा देता था और फिर दूतों और कुशल प्रशासकों को भेजकर शत्रु-राज्य में विचलन एवं शक्ति-क्षीणता का भय पैदा कर देता था। ऐसा करते हुए उसे भी कई बार इन स्थितियों का सामना करना होता था। स्थिति जो भी रही हो, भोज अपने समय का एक कुशल सेनाधिपति, सैन्य संगठक एवं वीर योद्धा रहा था। अपने दूतों और गुप्तचरों के प्रतिवेदनों के आधार पर वह शत्रु की आपात स्थिति एवं शक्ति-क्षीणता की सूचना प्राप्त कर उचित समय पर उचित कदम उठाता था। उत्तर भारत के समकालीन राजपूत राज्यों में इस प्रकार की यौद्धिक-क्षमता तो थी, पर युद्ध-कौशल नहीं था। इसी कारण उसे अपने समय का सर्वश्रेष्ठ सैन्य-दिग्गज कहा गया है।

कल्याणी के चालुक्यों से युद्ध : कुछ साहित्यिक कृतियों में भोज की तैलप पर विजय एवं उसे बन्दी बनाने का उल्लेख आया है, पर यह विवरण ठीक नहीं है, क्योंकि इस समय तैलप दिवंगत हो चुका था और जयसिंह कल्याणी का चालुक्य नरेश था। ऐसा लगता है कि जयसिंह और उसके वीर सामन्त बोछिराज ने भोज के नेतृत्व वाली मालव सेना को सफल नहीं होने दिया। फिर भी अनेक प्रमाण यह बताते हैं कि भोज से सीधे युद्ध में जयसिंह को पराजय एवं मृत्यु का वरण करना पड़ा। इन परस्पर विपरीत विवरणों से यह मानना होगा कि सम्भवत: यह युद्ध अनिर्णीत रहा होगा। अलबत्ता परमार शान्त नहीं बैठे रहे। जब कलचुरि नरेश गांगेयदेव ने चालुक्यों पर आक्रमण किया तो भोज ने इस अभियान में उसे सैन्य सहयोग प्रदान किया था। स्थिति जो भी रही हो, भोज ने इस युद्ध से बहुत कुछ सीखा, जिसका अनुभव उसके परवर्ती जीवन में बहुत काम आया।

इन्द्ररथ का दमन : भोज का परम मित्र राजेन्द्र चोल था। उसने आदिनगर के सोमवंशी शासक इन्द्ररथ पर भोज के सहयोग से आक्रमण किया। इन्द्ररथ पराजित हुआ और बंदी बना लिया गया। भोज की यह प्रथम निर्णायक सफलता थी।

भोज का पश्चिमी अभियान : इस विजय के बाद भोज ने मालवा का विस्तार पश्चिम की ओर करने की ठानी। भोज ने लाट को चारों ओर से घेर लिया। हताश लाट-नरेश कीर्तिराज ने समर्पण कर दिया। इससे भोज का गुजरात व नासिक क्षेत्रों के बहुत से भागों पर अधिकार हो गया। इससे भोज का कोंकण विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया।

दक्षिण की ओर विस्तार : भोज के बांसवाड़ा ताम्रपत्र-लेखों में उसके लिये 'कोंकणविजयपर्व्वणि' एवं 'कोंकणगृहजविजयपर्व्वणि' जैसे वाक्यांशों का उल्लेख आया है। स्पष्ट है कि लाट-विजय के पश्चात् भोज कोंकण की ओर बढ़ा। उस समय पश्चिमी घाट व गोवा सहित समस्त उत्तर व दक्षिणी कोंकण पर शिलाहार वंशी शासकों का अधिकार था। शिलाहार व सिन्धुराज के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध भोज के समय नहीं रहे। इस कारण भोज ने शिलाहारों को परास्त कर उन्हें अपना माण्डलिक बना लिया। इस प्रकार मालवा के परमार राज्य की सीमा पश्चिमी समुद्र तट को छूने लगी।

चतुर्दिक् प्रभावोत्पादक प्रसार : भोजराज ने मालवा की चारों दिशाओं में दूर-दूर तक सैन्य-अभियान किये एवं अपना राजनीतिक एवं सैनिक प्रभाव स्थापित किया। कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

(अ) उत्तर भारतीय अभियान

चन्देल क्षेत्रों में घुसपैठ : भोज ने सम्भवत: चन्देल राज्य पर आक्रमण किया था, किन्तु उसका कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला।

कन्नौज पर आक्रमण : परमार साम्राज्यवाद के उत्तर में स्थित दूबकुंड के कच्छपघात कन्नौज के प्रतिहारों के कट्टर शत्रु थे। दूबकुंड के कच्छपघात अर्जुन ने कन्नौज नरेश राज्यपाल को परास्त कर उसका वध करने में विद्याधर चन्देल की सहायता की थी। अर्जुन के पश्चात् उसका पुत्र अभिमन्यु गद्दी पर बैठा। वास्तव में राजनीतिक चाल के रूप में भोज के कन्नौज के विरूद्ध दूबकुंड के कच्छपघातों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये थे। अभिमन्यु के

पौत्र विक्रमसिंह के दूबकुंड अभिलेख (1088 ई.) में यशस्वी नरेश भोजदेव ने उसकी (अभिमन्यु की) प्रशंसा की है। इस प्रकार भोज ने कन्नौज पर विजय तो अवश्य प्राप्त की, किन्तु यह क्षेत्र परमार और कर्ण प्रतिहारों की मृत्यु के पश्चात् अन्तिम रूप से गहड़वाल वंश के आधीन हो गया था।

चम्ब का सफल मानमर्दन : चम्ब नरेश से भोज का संघर्ष संभवत: उसके उत्तरी अभियान के समय पर हुआ था। राजवल्लभ कृत भोजचरित्र में उल्लेख है कि भोज ने परकाया प्रवेश कर शुक का रूप धारण किया था। इस शुक की विद्वता से चम्ब-नरेश बहुत प्रभावित हुआ। अपने मूल स्वरूप में आने पर भोज ने राजा चन्द्रसेन की पुत्री मदनमंजरी से विवाह किया था।

यह निश्चित है कि भोज का संघर्ष पंजाब के किसी शक्तिशाली नरेश से अवश्य हुआ था। इतिहासकारों की धारणा है कि भोज अपनी सैन्य-वाहिनियों को पंजाब तक ले गया था। भोज चरित्र जैसे ग्रन्थों के अनुसार भोज चम्ब से आगे वहाँ तक सम्भवत: बढ़ा, जहाँ सालवाहन देव शासन कर रहा था, जो एक पराक्रमी शासक था। उस समय राजा भोज व उसके सेनापति सुरादित्य ने इस नरेश का मानमर्दन कर काश्मीर तक अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित किया था। यही कारण है कि यह मालव-राज हिमालय के उत्तुंग शिखर पर अवस्थित केदारेश्वर के मन्दिर का निर्माण करने में सफल हुआ था।

(ब) पूर्वी भारत में अभियान

मालवा के परमारों के निकट-पूर्व में डाहल के कलचुरियों का विशाल चेदि राज्य था। भोज के समकालीन कलचुरि शासक गांगेयदेव ने कुंतल नरेश जयसिंह पर हमला करने के उद्देश्य से भोज परमार और राजेन्द्र चोल से मैत्री-संगठन स्थापित किया था। इस युद्ध में कुंतल नरेश जयसिंह पराजित न हो पाया, परिणामस्वरूप यह मैत्री-संगठन विच्छिन्न हो गया था।

इस घटना के कुछ समय उपरान्त परमारों और कलचुरियों के सम्बन्ध अमैत्रीपूर्ण हो जाने से तत्कालीन राजनीतिक-चक्र पुन: परिवर्तित हो गया। विभिन्न अभिलेख, प्रबन्ध चिन्तामणि एवं परिजातमंजरी के आधार पर लगभग सभी इतिहासविदों ने यह मत प्रकट किया है कि धारापति भोज ने गांगेयदेव को पराजित किया था।

गांगेयदेव के पश्चात् उसका पुत्र कर्ण (1041 से 1072 ई.) कलचुरि शासक बना, उसके समय में भी परमारों और कलचुरियों का संघर्ष निरन्तर चलता रहा। कलचुरि कर्ण ने अन्य नरेशों की सहायता से परमार भोज पर आक्रमण किया। कर्ण ने गुजरात नरेश भीम को भोज का आधा राज्य देने का आश्वासन देकर युद्ध हेतु तैयार किया, किन्तु उस समय भोज मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार कर्ण को भोज की शासनावधि में महत्त्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी।

(स) पश्चिमी राज्यों से संघर्ष

चित्तौड़-विजय : भोज के समय मेवाड़ पर मालवा का अधिकार था। भोज के शासन-काल में चित्तौड़ का सारा क्षेत्र परमार साम्राज्य में सम्मिलित था। चित्तौड़ के एक अभिलेख में उल्लेख है कि भोज ने चित्तौड़ के दुर्ग में त्रिभुवननारायण का शिवमन्दिर बनवा कर स्वयं त्रिभुवननारायण की उपाधि ग्रहण की थी। गुहिल प्रदेश पर भोज का अधिकार 1020 ई. के उज्जैन ताम्रपत्र अभिलेख से भी विदित होता है। इस अभिलेख में उल्लेख है कि भोज ने नागद्रह पश्चिमी पथक में कुछ भूदान किये थे।

कुम्भलगढ़ अभिलेख में नागद्रह के पास भोजसर झील तथा नगर के पास श्री धारेश्वर मन्दिर का उल्लेख है, जो उस क्षेत्र पर भोज के प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गुहिल नरेश परमारों के आधीन सामन्त रूप में रहे। उसी कुम्भलगढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि योगराज को गद्दी से हटाकर परमारों के मित्र वैराट को राजसिंहासन पद प्रदान किया गया।

चौहानों से संघर्ष : भोज के पूर्व मालवा के परमारों ने चौहान क्षेत्रों पर आक्रमण किया था। यद्यपि परमार युद्ध जीतने में असफल रहे थे, किन्तु चाहमान नरेश वीर्यमान मारा गया था। भोज के समय परमार सेनाओं ने चाहमान राजधानी शाकम्भरी पर अधिकार कर लिया, किन्तु बाद में नडोल का चाहमान नरेश अणहिल्ल अपने भाई की सहायता के लिए आया तथा उसने वीर्यराम के उत्तराधिकारी चामुण्डराज की शाकम्भरी को स्वतंत्र कराने में सहायता की, किन्तु इस युद्ध में भोज का सेनापति साढ़ भी मृत्यु को प्राप्त हुआ।

गुजरात में कुलचन्द्र की लूट : गुजरात के चालुक्यों से परमारों का संघर्ष पुराना था। उदयपुर प्रशस्ति तथा कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति भीम पर भोज की विजय दर्शाती है। हेमचन्द्र ने उल्लेख किया है कि एक बार जब चामुण्डराज तीर्थयात्रा से लौट रहा था, तब रास्ते में मालवा के राजा ने उसको अपमानित कर राजचिह्न त्यागने हेतु बाध्य किया था। चामुण्डराज के दो पुत्र थे - वल्लभराज और दुर्लभराज। वल्लभराज एक सेना लेकर मालव-नरेश से बदला लेने के लिए चला, किन्तु वह आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् दुर्लभराज शासक नियुक्त हुआ। ऐसा लगता है कि भोज का सम्पूर्ण गुजरात पर प्रभाव स्थापित हो गया था एवं उसकी ओर से यह कार्य उसके सेनापति कुलचन्द्र ने सम्पन्न किया। मेरुतुंग ने उल्लेख किया है कि प्रारम्भ में भोज के भीम चालुक्य (1022-1064 ई.) से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे, परन्तु बाद में भोज गुजरात पर विजय अभियान करने की सोचने लगा। गुजरात में पड़ रहे अकाल के समय को भोज ने उचित अवसर जाना तथा गुजरात पर आक्रमण की तैयारियाँ कर लीं। भीम ने एक राजनीतिक चाल के रूप में अपने दूत डामर को भेजा, जिसके प्रयत्नों से तात्कालिक युद्ध तो अवश्य स्थगित हो गया, किन्तु कुछ समय के उपरान्त जब भीम सिन्ध प्रदेश में युद्धरत था, तब भोज ने गुजरात पर आक्रमण किया। उसके सेनापति कुलचन्द्र ने अन्हिलवाड़ को लूटा। उसने राजप्रासाद के घड़ी-स्तम्भ के सिंहद्वार पर कौड़ियाँ बो दीं तथा वहाँ के प्रशासक को विवश करके संधिलेख प्राप्त किया। इस युद्ध में चालुक्यों की इतनी अधिक क्षति हो गई थी कि 'कुलचन्द्र की लूट' एक कहावत हो गई थी।

युद्ध-विषयक परस्पर-विरोधी प्रमाण साहित्यिक ग्रन्थों एवं अभिलेखों में मिलते हैं, पर इतना निश्चित है कि भोज अपने परम्परागत शत्रु चालुक्यों का मानमर्दन करने और उन पर अपना दबदबा कायम करने में सफल हो गया था। भीम इस युद्ध से निराश नहीं हुआ और अवसर पाते ही भोज से बदला लेने का संकल्प ठाने रखा।

भोज की वृद्धावस्था में तीन दिशाओं से मालवा पर आक्रमण : भोज के अन्तिम दिन बड़ी हताशा और कठिनाइयों में बीते। जैसे ही भोज रुग्णता और वृद्धावस्था का शिकार होता चला गया, उससे पराजित होने वाली शक्तियाँ उसके विरुद्ध सिर उठाने लगीं। कर्णाट के चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय की मृत्यु होने पर उसका पुत्र सोमेश्वर प्रथम शासक बना। सोमेश्वर कुछ समय तक अपनी स्थिति सुदृढ़ करता रहा और उपरान्त उसने मालवा पर आक्रमण कर दिया। सन् 1047 ई. के नांदेड़ अभिलेख के अनुसार सोमेश्वर को वांछित सफलता मिली। मालवेश्वर परास्त होकर भाग निकला। चालुक्य सेनाओं ने धार को पूरी तरह लूटा।

सोमेश्वर की इस विजय से मालवा के शत्रुओं को परमार-शक्ति की क्षीणता का ज्ञान हो गया। विक्रमांकदेवचरित तथा नगाई अभिलेख के अनुसार चालुक्य सेनाओं ने माण्डव और धार को हस्तगत कर भारी विनाश का दृश्य उपस्थित किया। बहुत सम्भव है कि मालवा के अन्य प्रमुख नगरों की भी ऐसी ही स्थिति हुई हो। स्थिति और भी भयावह हुई जब त्रिपुरी के कलचुरि नरेश कर्ण तथा गुजरात के सोलंकी नरेश भीम प्रथम ने पारस्परिक समझौता कर मालवा कर आक्रमण कर दिया। भोज ने यथासम्भव प्रतिरक्षा का प्रबन्ध किया, किन्तु भोज को ठीक इसी समय संसार से विदा होकर जाना पड़ा। उसे भी उसी तरह निराशा और असफलता के बीच मृत्यु का वरण करना पड़ा, जिस तरह उसके पूर्वज मुंज और सिन्धुराज की विदाई हुई थी। बड़ी-बड़ी मीनारों को इसी प्रकार ढहना पड़ता है।

भोज ने इस प्रकार विशाल साम्राज्य स्थापित करने की दृष्टि से चतुर्मुखी सैन्य अभियान किये। जहाँ तक मुंजराज के वध का बदला लेकर परमार गौरव का पुनरुद्धार करना व विदेशी दुर्दान्त शक्तियों को पीछे धकेलना तो उचित था, किन्तु विजय अभियान करते समय वह चन्देलों, कलचुरियों, चालुक्यों, होयसलों, चौहानों, गुहिलों जैसे समकालीन शक्तिशाली राज्यों में बैर-भाव जुटा बैठा। इस कारण वह एक प्रकार से मित्रहीन सा हो गया। इन शत्रु राज्यों के शासक भोज की प्रतिभा के कायल थे, उसकी उदारता एवं विद्वत्ता के गीत गाते थे और कई बार तो वे भोज द्वारा विभूषित किये गये विरूदों को भी धारण कर लेते थे, उदाहरणार्थ- गुजरात के एक श्रेष्ठ श्रेष्ठी एवं सुयोग्य मंत्री वास्तुपाल ने और काश्मीर के शासक कलश ने भी भोज की ही भाँति 'सरस्वती कण्ठाभरण' की उपाधि धारण की थी। वास्तुपाल तो स्वयं को 'लघु भोजपाल' ही मानता था।

मालवा की निकटवर्ती एकाधिक शक्तियाँ इस प्रकार स्वयं को पराजित, अपमानित एवं ईर्ष्यालु हो उठी थीं। इस कारण वे समूहबद्ध होकर भोज से बदला लेने को इच्छुक व उत्सुक थीं। कलचुरि कर्ण एवं गुजरात के चालुक्य भीम का तात्कालिक दुरभि-संधियुक्त गठबंधन इसका प्रमाण माना जा सकता है। भोज से अकेले न निपट सकने की उनकी कमजोरी ऐसे गठबंधन का कारण बनी। वैसे भी इन राज्यों की गिद्ध-दृष्टि मालवा पर थी ही, पर भोज के पराक्रम के कारण वे समय की प्रतीक्षा में थे। कहने को तो भोज के आधीन बारह प्रमुख राज्य थे, पर वे कितने विश्वस्त थे, कहना कठिन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोज न केवल परमार-शक्ति का क्षेमकर्त्ता था, अपितु योगकर्त्ता भी था। उसके राज्य-प्राप्ति के उपरान्त परमार-शक्ति विस्तार के ऐसे शिखर पर पहुँच गई, जो इसके पूर्व और इसके पश्चात् कभी नहीं रही। वस्तुतः भोज के समय परमार साम्राज्यवाद अपने चरम शिखर पर पहुँच गया था। यह बात अन्य है कि भोज को अपने अन्तिम समय में कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ा था और बहुत सम्भव है कि उसे रुग्णता और वृद्धावस्था के साथ-साथ निराशा और असफलता का भी सामना करना पड़ा हो। किन्तु राजनीति में तो उत्कर्ष-अपकर्ष की स्थितियाँ बनी ही रहती हैं। इस कारण भोज का मूल्यांकन केवल इस विवाद से नहीं जाना जा सकता है कि उसके शत्रु-संघ ने उसके जीवित रहते हुए मालवा पर आक्रमण किया था। उसका मूल्यांकन इस तथ्य से किया जाना चाहिए कि उसने सिंहासनारूढ़ होने के उपरान्त किस प्रकार चहुँमुखी अभियान किये तथा सन्धि एवं विग्रह द्वारा किस प्रकार परमार साम्राज्य और परमार प्रभाव का प्रसार किया। चाहे वे दक्षिण के चालुक्य हों या पश्चिम के सोलंकी, राजस्थान के चौहान हों या उत्तरी सीमान्त के कच्छपघात, उत्तर-पूर्व क्षेत्र के चन्देल हों या पूर्व में कलचुरि, सर्वत्र ही हम महान भोज परमार को विजय अभियान करते हुए अपने खट्टे-मीठे अनुभवों के साथ पाते हैं और इस बात के प्रति राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से आश्वस्त होते हैं कि भोज का लोहा न केवल निकटवर्ती शक्तियाँ मानती थीं अपितु कोंकण, चोल, चालुक्य, तुरुष्क, कलचुरि, चन्देल और चाम्ब आदि शक्तियाँ भी उसके प्रभाव को स्वीकारने को विवश थीं। भोज इस प्रभाव और साम्राज्य की दृष्टि से अपने समकालीनों में एक बड़ा नाम था। जिसकी अपनी निश्चित ही एक विशिष्ट शख्सियत थी।

भोजदेव का रचना-साम्राज्य : भोजदेव का मूल्यांकन उसकी बाह्य उपलब्धियों के आधार पर करना उसके साथ न्याय नहीं होगा। वह केवल एक वीर योद्धा बन कर ही नहीं जिया, किन्तु भारत-प्रसिद्ध अनेक विद्वानों का वह आश्रयदाता भी था। उसके आश्रय में जो विद्वान धारानगरी की शोभा बढ़ाते थे, वे उसके यश को उसके साम्राज्यीय यश से कहीं अधिक बढ़ाने में सफल हुए। अपने कई विशिष्ट एवं उल्लेखनीय ग्रन्थों के माध्यम से भोज ने अपने बहुमुखी प्रतिभा एवं अनुभव से रचना-धर्मिता को जो दिशा दी, वह उसका एक ऐसा साम्राज्य था, जो क्षेत्र और समय की सीमा से परे सदैव अक्षुण्ण रहेगा। उसके द्वारा निर्मित अनेक निर्माणों ने केवल उसकी राज्य-सीमा को ही शोभित नहीं किया, अपितु भारत के दूरस्थ सीमान्तों यथा - केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर, काल, अनल, रुद्र आदि के मन्दिरों के निर्माण के माध्यम से भी एक ऐसा यश सम्पादित किया, जिसकी समता अन्यत्र बहुत कम देखने में आती है।

इस प्रकार हम भोज को राजनैतिक और सैनिक दृष्टि से यदि परमार साम्राज्यवाद का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक मानते हैं, तो उसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों के माध्यम से उसे भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ नृपतियों में एक मानने को बाध्य भी होते हैं। यही कारण है कि विभिन्न अभिलेख और विभिन्न साहित्यिक सन्दर्भ उसकी सर्वतोमुखी तथा उसकी अद्वितीय साम्राज्यवादिता का यश गाते हुए नहीं अघाते। उचित होगा कि भोजदेव की ज्ञानात्मक एवं बौद्धिक गतिविधियों एवं उनकी अविश्वसनीय-सी लगने वाली सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सृजनशीलता की थोड़ी-बहुत चर्चा की जाय।

राजा भोज के रचना-संसार को उनकी पूर्ववर्ती परमार वंश-परम्परा बौद्धिक एवं सांस्कृतिक अवदान के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। सीयक (श्रीहर्ष) द्वितीय ने अपने राज्य में बीसियों कर्मकाण्डीय ब्राह्मणों को आमंत्रित कर उन्हें भूमिदान करके उचित संरक्षण प्रदान किया था। वाक्पतिराज मुंजदेव माँ वाक्देवी का अनुपम आराधक एवं यशःपुंज नृपति था। इस परम विद्वान नृपति से जो विद्वानों एवं मनीषियों को आश्रय एवं प्रोत्साहन देने

की परम्परा प्रारम्भ हुई, वह सिन्धुराज से होती हुई भोजदेव तक पहुँची थी। बल्लाल के कथन पर विश्वास करें तो परमार राजधानियों – उज्जैन एवं धार में लगभग पाँच सौ कवि, साहित्यकार एवं कलाकार निवास करते थे। सच तो यह है कि भोजकालीन मालवा का जन-जन अत्यधिक प्रबुद्ध एवं सांस्कृतिक गरिमा से युक्त हो रहा था। कुविन्द जैसा जुलाहा भी संस्कृत में काव्य-रचना कर जन-मानस को चमत्कृत कर रहा था। भोज के पूर्ववर्ती चित्तप, हलायुध भट्ट, लक्ष्मीधर जैसे विद्वान एवं सीता जैसी कवयित्री इस वातावरण के मार्ग-चिह्न बने हुए थे।

राजा भोज का रचना-संसार अपार, अप्रतिम एवं अद्वितीय था। उनके ग्रन्थों की एक अच्छी सूची विद्वान डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित ने इस प्रकार दी है-

1. साहित्य – चम्पूरामायण, श्रृंगारमंजरीकथा, अवनिकूर्मशतं, सुभाषितप्रबन्ध, वाग्देवस्तुति, विद्याविनोद, शालिकथा, महाकाली विजय।

2. साहित्यशास्त्र – सरस्वतीकण्ठाभरण, श्रृंगारप्रकाश।

3. व्याकरण- सरस्वतीकण्ठाभरण, प्राकृतव्याकरण या भोजव्याकरण।

4. कोष – नाममालिका भोजनिघण्टु, अनेकार्थकोष, अमरव्याख्या।

5. संगीत – (सं) गीतप्रकाश।

6. इतिहास – संजीवनी।

7. दर्शन – तत्त्वप्रकाश, तत्त्वचन्द्रिका, क्रमकमल, राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, सिद्धान्तसंग्रह, सिद्धान्तसारपद्धति, राजमार्तण्ड (वेदान्त), शिवतत्वरत्नकलिका (शिवतत्त्व प्रकाशिका से अभिन्न)

8. ज्योतिष- राजमार्तण्ड, राजमृगांक, विद्वज्जनवल्लभप्रश्नज्ञान (प्रश्नचिन्तामणि अथवा प्रश्नचूड़ामणि), प्रश्नकेरली, आदित्यप्रतापसिद्धान्त, भुजवल-निबन्ध (भुजबलभीम या भीमपराक्रम), भीमप्रकाश, ज्योतिःसागर (सार) रत्नकोप, ग्रहभाष्यम्, भोजसामुद्रिक या हस्तसामुद्रिक, रमलामृतं, भोजदेवसारसंग्रह-अब्दप्रबोध के साथ।

9. धर्मशास्त्र – पूर्तमार्तण्ड, व्यवहारसमुच्चय, व्यवहार-मंजरी, सिद्धान्तसारपद्धति, विविधविद्याविचारचतुरा या भूपालकृत्यसमुच्चय अथवा भूपालपद्धति, राजमार्तण्ड, बृहदराजमार्तण्ड, रत्नमाला (रत्नावली), कामधेनु, धर्मप्रदीप, दुर्गोत्सवाधिकार, प्रयोगपद्धतिरत्नावली,मनु (स्मृति) भाष्य, धारेश्वर-मिताद्वारा व दाय-भाग में उद्धृत।

10. राजनीति शास्त्र – चाणक्यराजनीतिशास्त्र या चाणक्यमाणिक्य, नीतिनिवन्धन या नीतिभजन।

11. आयुर्वेद – चारुचर्या, राजमार्तण्डयोगसारसंग्रह, शालिहोत्र, राजमृगांक, विश्रान्तविद्याविनोद, आयुर्वेदसर्वस्व।

12. स्थापत्य- समरांगणसूत्रधार या वास्तुशास्त्र, युक्तिकल्पतरु।

13. संदेहास्पद –अभिनवभाष्य, पंचाशिका, मेघमाला, अयसद्भावविवृति, वृत्तिमार्तण्ड, न्यायवार्तिक, सिद्धान्तसंग्रहविवृति, द्रव्यानुयोगतर्कणा, मीमांसा (?)।

14. प्राकृतकाव्य- कोदण्डसंघात, अवनिकूर्मशतम्, खड्गशतम् (तीन), अज्ञातमान काव्य (सभी खंडित-शिलांकित और धार में सुलभ)।

भोज की इन कृतियों पर प्रकाश डालना एक पृथक ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है, फिर भी कतिपय ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय देना अन्यथा न होगा।

श्री भोजराज विरचित 'युक्तिकल्पतरु' एक ज्ञानवर्धक, मनोहारी एवं अनेक विषयों एवं विधाओं पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ है। यह नीतियुक्ति, द्वन्द्वयुक्ति, नगरयुक्ति, वास्तुयुक्ति, आसनयुक्ति, छत्रयुक्ति, अश्वयुक्ति, उपकरणयुक्ति, अलंकारयुक्ति, यात्रायुक्ति, धातुनौकायुक्ति आदि युक्तियों में विभक्त एक वृहद् ग्रन्थ है। श्री भोजराज ने इस कृति के माध्यम से जीवन एवं जगत के अनेकानेक व्यावहारिक, बाह्य एवं अन्तर्मर्मों से परिचित कराया है। राजा से लेकर रंक तक के लिए इस ग्रन्थ में कई महत्त्वपूर्ण साम्रगी समाहित की गई है। विभिन्न वास्तु-विधाओं, सामान्य एवं यौद्धिक उपकरणों, आसनों एवं छत्रों, यातायात के साधनों, रत्नों एवं अलंकारों, अश्वों व गजों के लक्षणों एवं उनकी उपयोगिता की चर्चा इस कृति में आई है।

'समरांगणसूत्रधार' प्राचीन भारतीय शिल्प एवं वास्तु परम्परा पर प्रकाश डालने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भूमिपरीक्षा, पुरनिवेश, नगरनिवेश, यंत्र-विधान, गृहदोष निवारण, स्थपति के लक्षण आदि शीर्षकों पर व्यापकतापूर्वक विचार किया गया है। इस ग्रन्थ के विविध विषय वास्तुशास्त्र पर केन्द्रित ही हैं। इस कृति में श्रीभोजदेव ने नगर-निवेश के स्वरूपों एवं उनके अंग-उपांगों, विभिन्न प्रकार के शालों, दुर्गों, छावनियों, भवनों, मन्दिरों, द्वारों, प्रासादों, प्रासादिकाओं, विशिकाओं, मण्डपों, प्रतिमाओं, यंत्रों, वेदियों, तोरणों, पताकाओं, पुष्करों आदि पर सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक प्रकाश डाला है। साथ ही स्त्री-पुरुष लक्षणों, भूमिबंधों, जगती-समुदायों, मानवीय एवं स्थापत्य गुण-दोषों को भी अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।

भोज का यह वास्तु-ज्ञान चमत्कृत कर देने वाला है। वह केवल लेखक ही नहीं, अपितु निर्माता भी था। प्राचीन भारतीय शिल्प-शास्त्र को उसका यह योगदान सदैव आदरयुक्त एवं सन्दर्भित रहेगा।

भोजदेव का आयुर्वेद-ज्ञान बड़ा गम्भीर एवं विशद था। इस ज्ञान को उन्होंने मानव-चिकित्सा ही नहीं, अश्वादि पशुओं की चिकित्सा पर शास्त्र एवं विज्ञानपरक दृष्टि से जन-जन के लिए विकीर्ण किया। मालवाधिपति भोज ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से परमारयुगीन चिकित्सा एवं औषधि के अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिससे तद्युगीन चिकित्सकीय कार्यों की जानकारी मिलती है। भोजराज ने आयुर्वेदसर्वस्व, राजमार्तण्ड, शालिहोत्र, राजमृगांक इत्यादि चिकित्सकीय ग्रन्थों की रचना कर मनुष्य एवं पशु चिकित्सा पर विस्तृत प्रकाश डाला है। यद्यपि उनके सभी ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, तथापि उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर तद्युगीन मानवीय तथा पशु व्याधियों एवं उनके उपचारों की महती जानकारी मिलती है।

भोज का अन्य ग्रन्थ 'शालिहोत्र' पूरी तरह से अश्व-चिकित्सा पर आधारित है, जिसमें अश्वों की प्रकृति, रंग, ऊँचाई, स्वास्थ्य इत्यादि पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार मालवा में पूर्व-मध्य काल के अन्तर्गत परमार शासकों के ग्रन्थों विशेषकर भोज के ग्रन्थों से तद्युगीन विज्ञान की प्रगति एवं तकनीकी के विकास की महती जानकारी मिलती है, जो आज भी प्रासंगिक है। वस्तुतः भोजकृत राजमार्तण्ड ग्रन्थ चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि इत्यादि की पद्धति के साथ ही प्रस्तुत होता है। इसमें पूर्ववर्ती चिकित्सा पद्धति का ही प्रयोग कर उसे और समसामयिक किया गया है। इस ग्रन्थ में राजयक्ष्मा रोग पर अच्छा प्रकाश डाला है, जो कि पूर्ववर्ती काल में असाध्य था। इस प्रकार 'राजमार्तण्ड, आयुर्वेद सर्वस्व' तथा 'शालिहोत्र' ग्रन्थ से तद्युगीन चिकित्सा विज्ञान तथा औषध-निर्माण का स्वरूप ज्ञात होता है। अपने इस आयुर्वेद ज्ञान के कारण भोज को 'राजमार्तण्ड' उपाधि भी दी गई थी।

भोजदेव की एक उपाधि 'सरस्वतीकण्ठाभरण' भी रही। धारानगरी में भोजदेव ने इसी नाम का एक प्रासाद भी निर्मित करवाया था। बहुत सम्भव है, वहाँ विद्यमान भोजशाला ही प्राचीन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' प्रासाद हो। ऐसे भी पुष्ट प्रमाण हैं कि उज्जयिनी में भी राजा भोज ने इसी नाम का एक प्रासाद निर्मित करवाया था। सम्भवतः भोज ने एकाधिक सरस्वतीकण्ठाभरण नाम के ग्रन्थ लिखे थे। इनमें एक तो नाटक था तथा अन्य व्याकरण एवं अलंकार विषयक ग्रन्थ थे।

भोजरचित 'शृंगारप्रकाश' काव्यशास्त्र का एक अद्भुत ग्रन्थ है, जो छत्तीस अध्यायों में निबद्ध है। इस वृहदाकार ग्रन्थ के पढ़ने पर भोज की संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं पर गहरी दखल का परिज्ञान हो जाता है। काव्यशास्त्र की विभिन्न धाराओं का समन्वय तो इसमें है ही, भोज की मौलिक समीक्षा दृष्टि भी इससे बड़े प्रेरणीय रूप में अभिव्यक्त हुई है।

भोज एक कोषकार भी रहे हैं। 'नाममालिका' नामक ग्रन्थ कई ऐसे शब्दों और उनके अर्थों को प्रस्तुत करता है, जिनकी जानकारी समकालीन जनों को अधिक नहीं थी। इस प्रकार लगभग 250 महत्त्वपूर्ण श्लोकों को सुभाषित के रूप में प्रस्तुत करने वाला 'सुभाषित संग्रह' भी एक संग्रहणीय कृति रही है।

भोज रचित 'चम्पू रामायण' एक उल्लेखनीय कृति है, जो वाल्मीकीय रामायण परम्परा को सुरक्षित रखते हुए राम के चरित्र का जो गद्य-पद्यमय विवरण देता है, वह बड़ा ललित, मौलिक एवं प्रेरणीय सिद्ध हुआ है। 'शृंगारमंजरी कथा' भोज की एक रोचक कृति है। वह भारतीय कला-जगत को प्रदत्त भोज का एक विशिष्ट अवदान है। इस कथा में कला के विभिन्न रूपों एवं उनसे संपृक्त विविध यंत्रों का बड़ी सूक्ष्मता से विवेचन हुआ है। भोज

की लेखनी केवल इतने से ही नहीं रुकी। एक अच्छे ज्ञानगम्भीर एवं अध्यावसायी टीकाकार के रूप में उन्होंने योगसूत्र, तत्त्वप्रकाश एवं कई अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर अनुभवपरक टीकाएँ लिखीं।

भोज रचित समूचे साहित्य का समूचेपन के रूप में विवेचन करना एक लघु-लेख तो ठीक एक वृहद ग्रन्थ में भी कठिन है।

मालवमणि भोज पर उसके समकालीन एवं परवर्ती लेखकों ने अनेक स्तुति-परक ग्रन्थ लिखे हैं। 'भोजप्रबन्ध' शीर्षक से कई विद्वानों ने भोज की प्रशस्ति गाई है। यदि हम विभिन्न लेखकों द्वारा भोज के व्यक्तित्व, कर्तृत्व, उससे जुड़ी गाथाएँ तथा उसकी रचनाओं पर लिखे गये पूर्ण या प्रासंगिक ग्रन्थों की सूची बनाने बैठें, तो उनकी संख्या सौ से अधिक हो सकती है। एक ऐसी ही कृति 'सिंहासन बत्तीसी' (द्वाविंशतपुत्तलिका) भी रही जो लोकप्रिय तो बहुत हुई, किन्तु थी बड़ी कल्पना-प्रसूत। उसके अनुसार एक टीले ने न्यायी राजा वीर विक्रम का सिंहासन मिल गया था, जिसमें प्रस्तर की बत्तीस पुतलियाँ थीं। राजा भोज हर बार उस पर बैठने का प्रयास करता, तो हर बार उसमें एक दोष बता कर पुत्तलिका उड़ जाती थी। इस प्रकार बत्तीस पुतलियाँ और अन्त में स्वयं सिंहासन आकाशचारी हो लुप्त हो गये। जो भी हो, भोज के बहाने विक्रमादित्य के अनेक दुर्लभ गुणों का बखान अवश्य हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोज ने एक वाङ्मयीन सदाबहार साम्राज्य भारत की इस महनीय सांस्कृतिक धरा को अर्पित किया। वह एक धर्म-सहिष्णु एवं धर्म-समन्वयी शासक था। उसके आश्रय और दरबार में अनेक उल्लेखनीय जैन विद्वान अपनी रचनाधर्मिता का परिचय दे रहे थे। कुछ का परिचय सम्प्रति समीचीन होगा।

भोजकालीन मालवा सांस्कृतिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान में किसी अन्य समकालीन राजपूत राज्यों से कम नहीं था। इस काल में शैव, वैष्णव, शाक्त आदि ब्राह्मण धर्म एवं श्वेताम्बर एवं दिगम्बर जैसे जैन मतों का पर्याप्त विकास हुआ। राजा भोज के समय तो भारत के श्रेष्ठतम जैन आचार्य, विद्वान एवं सुलेखक मालवांचल की शोभा में वृद्धि करते रहे। कुछ प्रमुख का परिचय आवश्यक है-

दिगम्बर मत

धारानगरी के निवासी मुनि 'श्रीचन्द्र' लाड़-वागड़ संघ से सम्बन्धित थे। ये आचार्य श्रीनंदी के शिष्य तथा परमार नरेश भोज के समकालीन थे। धार में रहते हुए श्रीचन्द्र ने सन् 1023 ई. में अपना 'पुराणसार' पूरा किया। सन् 1030 ई. में उन्होंने रविषेण द्वारा लिखित 'पद्मचरित' नामक काव्य की टीका लिखी। मुनि श्रीचन्द्र को महाकवि पुष्पदन्त के 'उत्तरपुराण' पर टिप्पणी करने का श्रेय भी जाता है।

'श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र' दोनों का नाम धारानगरी से जुड़ा है। कुछ विद्वानों ने प्रभाचन्द्र और श्रीचन्द्र को एक ही मान लिया है। नाथूराम प्रेमी का कई अन्त:साक्ष्यों के आधार पर कहना है कि वास्तव में श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र दो स्वतंत्र ग्रन्थकर्ता रहे। मालवा के जैन लेखकों में आचार्य 'महासेन' का नाम 'प्रद्युम्नचरित' नामक महाकाव्य के लेखक के रूप में लिया जाता है। महासेन लाड़-वागड़ संघ के आचार्य थे। आचार्य महासेन केवल कवि ही नहीं, वाग्मी और सिद्धान्तज्ञ भी थे। ये मालवा के परमार नरेश मुंज और उनके उत्तराधिकारी सिन्धुराज व भोज द्वारा पूजित थे। माणिक्यनंदी के अनेक विद्याशिष्य हुए, जिनमें नयनंदी भी एक थे। उनके ग्रन्थ 'सुन्दंसण चरिऊ' की पुष्पिका में माणिक्यनंदी का त्रैविध्य रूप से उल्लेख किया गया है। माणिक्यनंदी ने 'परीक्षामुख' नामक ग्रन्थ लिखा, जो जैन न्याय का प्रारम्भिक सूत्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 207 अत्यन्त गम्भीर किन्तु पठनीय सूत्र दिये गये हैं। माणिक्यनंदी का यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन के सूत्र-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है। कविवर 'नयनंदी' परमार-नरेश भोजदेव का समकालीन था। उसने धारा नगरी में स्थित जिनविहार में ठहर कर संवत् 1100 तद्नुसार 1043 ई. में अपना ग्रन्थ 'सुदर्शन चरित' पूर्ण किया था। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा गया। उनके अन्य ग्रन्थ 'सलविहिविहान' तथा 'आराधना' नामक है, जो अपभ्रंश भाषा में लिखे गये हैं। नयनंदी काव्य एवं छंद शास्त्र के निष्णात पंडित थे। काव्य के आदर्श को बताते हुए उन्होंने कहा कि 'रस और अलंकार से युक्त कवि की कविता में जो रस प्राप्त होता है, वह न तो तरुणियों के अरुणाभ अधरों में, न आम के फल में, न इक्षु में, न अमृत में, न ही मदिरा में, न चन्दन में और न ही चन्द्रमा में मिलता है।' सुदर्शन के चरित्र को अत्यन्त ही मनोहारी रूप में नयनंदी ने अपने ग्रन्थ की बारह सन्धियों तथा

207 कड़बकों से अमर बना दिया है। माणिक्यनंदी के अनेक विद्याशिष्य थे, जिनमें नंदी संघ के आचार्य 'प्रभाचन्द्र' का नाम नयनंदी की भाँति ही प्रमुखता से लिया जाता है। माणिक्यनंदी की ही भाँति प्रभाचन्द्र भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। प्रभाचन्द्र राजा भोजदेव के समय धार में निवास कर रहे थे।

'प्रभाचन्द्र' की रचनाओं में 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'न्यायकुमुचन्द्र' नाम के प्रसिद्ध न्याय ग्रन्थ हैं। इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरण पर 'शब्दाम्भोज भास्कर' नाम का भाष्य लिखा है। 'रतनकरण्ड टीका, क्रियाकलाप टीका, समाधितंत्र टीका, आत्मानुशासनतिलक, द्रव्यसंग्रहपंजिका, प्रवचनसरोज भास्कर, सर्वार्थसिद्ध टिप्पण' (तत्त्वार्थवृत्ति पद विवरण) आदि टीकाएँ और 'आराधना कथाकोश' (गद्य) भी उन्हीं का है। इनके सिवाय अनेक मूल ग्रन्थों पर इनकी टीकाएँ ख्यात हुई हैं।

'अमितगति' नामक एकाधिक विद्वान जैन जगत में हुए। मालवा से जिस अमितगति का सम्बन्ध आता है, वे 10वीं और 11वीं सदी में यशोपुंज परमार नरेश मुंज, सिन्धुल और भोज के समकालीन थे। विद्वानों ने उन्हें अमितगति द्वितीय के नाम से सम्बोधित किया।

अमितगति दिगम्बर सम्प्रदाय के माथुर संघ से सम्बन्धित थे। अपने 'सुभाषित रत्न संदोह' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार निरूपित की है- 'वीरसेन-देवसेन-अमितगति (प्रथम) नेमिषेण-माधवसेन।' उनके लिखे हुए 'सुभाषित रत्नसंदोह, धर्म परीक्षा, उपासकाचार्य (अमितगति श्रावकाचार), पंचसंग्रह, आराधना, तत्वभावना, योगसार प्राभृत, भावना त्रिशतिका।'

आचार्य अमितगति गम्भीर प्रकृति के निरभिमानी विवेकी नि:स्पृही तथा आत्मानुभवी आचार्य थे। उनकी बौद्धिक प्रतिभा परिष्कृत थी तथा उनका कथ्य बड़ा नैतिक, माधुर्ययुक्त और सारगर्भित था। आचार्य 'श्रुतिकीर्ति' कुन्दकुन्दान्वय देशीय गण के आचार्य श्रीकीर्ति के शिष्य थे। ये अपने समय के बड़े विद्वान विचारज्ञ, उत्तम वक्ता और उल्लेखनीय कवि थे। श्रीचन्द्र द्वारा लिखित 'कथाकोश' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में उन्हें कलचुरि नरेश गांगेयदेव तथा परमार नरेश भोज द्वारा पूजित माना है।

श्वेताम्बर मत

परमारकालीन सांस्कृतिक इतिहास में 'धनपाल' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उत्तरप्रदेश में फर्रूखाबाद जिले में सांकाश्य नामक स्थान पर इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह का नाम देवर्षि और पिता का नाम सर्वदेव था। इनके अनुज का नाम शोभन था। यह परिवार काश्यप गोत्रीय था तथा कट्टर ब्राह्मण होने से जैन धर्म का विरोधी था। आजीविका और सम्मान की तलाश धनपाल और शोभन को मालवा में ले आई। शोभन ने धारानगरी में आकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। धनपाल, जो जैन धर्म का विरोधी था, शोभन के अनवरत अनुरोध के कारण जैन धर्म की ओर आकर्षित हुआ। जैन धर्म के लिए धनपाल बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। धारानरेश वाक्पतिराज मुंज ने प्रतिभा के धनी धनपाल को 'सरस्वती' की उपाधि प्रदान की।

धनपाल का प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। उन्होंने 'पाइय लच्छीनाममाला' नामक ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा का कोष है। धनपाल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'तिलकमंजरी' है। यह एक संस्कृत गद्यकाव्य है, जिसे धनपाल ने राजा भोज की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए लिखा था। 'तिलकमंजरी' संस्कृत साहित्य का एक अद्वितीय रत्न है। ग्रन्थ में उस समय की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर काफी विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अपने छोटे भाई शोभन मुनि कृत संस्कृत स्तोत्र पर एक संस्कृत टीका भी इन्होंने लिखी। इसके सिवाय 'ऋषभ-पंचासिका' (प्राकृत), 'महावीर स्तुति' और 'सत्यपुरीय-महावीरउत्साह' (अपभ्रंश भाषा) नाम की कुछ फुटकर रचनाएँ भी इनकी मिलती हैं।

'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि धनपाल की प्रतिभा की धाक धारानगरी में अधिक थी। वह मालवा में परमार नरेश सीयक द्वितीय के समय आया था। उसके उत्तराधिकारी मुंजदेव का वह आदर का पात्र था। भोज की जिज्ञासा को भी उसने शमन किया था। महाकवि धनपाल के अनुज 'शोभन' का समय भी दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और ग्यारहवीं शताब्दी का पूवार्द्ध रहा है। शोभन मूलत: ब्राह्मण था, किन्तु मालवा में आकर उसने श्वेताम्बर सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। शोभन एकाधिक ग्रन्थों का

रचयिता था, जिनमें 'चतुविंशति, जिनस्तुति' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में थारपद्रक में 'शान्तिसूरि' नामक एक प्रभावक आचार्य हुए जो श्रीमाल वंश में उत्पन्न हुए थे और दीक्षित होने के बाद गुजरात को उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाया। जब धनपाल के सामने प्रश्न यह था कि उनके ग्रन्थ का संशोधन किससे करवाया जाय तो आचार्य महेन्द्र ने इस शान्तिसूरि का नाम सुझाया। धाराधीश ने शान्तिसूरि की अप्रतिम प्रतिभा, वाग्मिता और प्रकाण्ड पांडित्य से प्रभावित हो अपनी राज्यसभा में 'वादिवैताल' की उपाधि से उन्हें अलंकृत किया। और गुजरात प्रदेश के अनेक स्थानों में चैत्यों के निर्माण हेतु विपुल धनराशि की व्यवस्था की।

भोजराज की कला-विश्व को देन

विधर्मियों एवं समय ने भोज के कई महत्त्वपूर्ण निर्माणों को मालवा के पटल से विलोपित कर दिया। फिर भी भोजपुर का भोजेश्वर मन्दिर, बेतवा व कालियासोत की विशाल झील, धार का लोह-स्तम्भ व भोजशाला आदि आज भी भोजराज की स्मृति को संजोये हुए हैं। 'भोजपुर के भोजेश्वर मन्दिर' के समीप बेतवा व उसकी सहायक कालियासोत नदी पर भोज ने एक बाँध व विशाल सरोवर का निर्माण करवाया था। यह सरोवर एक विस्तृत घाटी में था। इसकी पर्वतीय दीवार में दो दर्रे हैं। एक, एक सौ फीट और पाँच सौ फीट। ये दोनों दर्रे अत्यन्त अद्भुत बाँधों द्वारा जोड़ दिये गये थे। मिट्टी से बने इस केन्द्रीय बाँध के भीतरी और बाहरी दोनों ओर विशालकाय प्रस्तर-खण्ड लगे हुए हैं, जो एक दूसरे पर बिना चूना के इस तरह रखे हुए और सँटे हुए हैं कि उनमें जल प्रवेश नहीं कर सकता। अधोभाग से इसके शेष दोनों पक्षों की ढाल भीतर की ओर थी। कम चौड़ाई वाले दर्रे का बाँध ऊँचाई में 78 फीट और अधोभाग पर इसकी चौड़ाई 300 फीट या कुछ अधिक थी। अधिक चौड़े दर्रे का बाँध 40 फीट ऊँचा और ऊपरी तल लगभग 100 फीट चौड़ा था। इनमें से प्रथमोक्त इस समय पूर्ण ध्वंसावस्था में है। किन्तु दूसरा ठीक अवस्था में है और अब तक कालियासोत नदी का पुराना तल पहिचाना जा सकता है। भोपाल वर्तमान में मध्यप्रदेश की राजधानी है, जिसे प्राचीन भोजपाल नगर माना जाता है। लोक-मान्यता है कि भोपाल की वृहद् झील को भोजराज ने ही आकार प्रदान किया था। दुर्भाग्यवश राजनीतिक एवं प्रशासकीय कारणों से बेतवा का यह बाँध मालवा के सुलतान होशंगशाह गोरी ने तुड़वा दिया था। जिसके अवशेष आज भी वहाँ देखे जा सकते हैं।

'धार की भोजशाला' को मुस्लिम काल में कमाल मौला की मस्जिद के रूप में बदलने का प्रयास किया गया था, किन्तु भोजशाला अक्षुण्ण बनी रही, उस पर भोजकालीन सर्पबन्ध अंकित रहा, खेले गये नाटकों का फर्श एवं भित्ति पर उत्कीर्ण विद्यमान रहा और सम्भवत: भोजकालीन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का अस्तित्व कायम रहा और वहाँ स्थापित वाक्देवी की मनोहारी प्रतिमा लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम से भारतीय मनीषा का उद्गान करती हुई भोज की प्रकीर्ति को यूरोप के प्रांगण में अनुगुंजित करती रही।

और बहुत सम्भव है कि मुंजराज के वध का बदला लेने के लिये भोज द्वारा गांगेयदेव एवं तेलंगाना को परास्त करने की स्मृति में धार की लाट मस्जिद के सामने विद्यमान लोह-स्तम्भ भोजराज की प्रकीर्ति का वैसे ही प्रमाण दे रहा है, जैसाकि दिल्ली में कुतुबमीनार के पास खड़ा हुआ लोह-स्तम्भ चन्द्र नृपति की महती विजयों का संदेश आज भी दे रहा है। धार के इस लोह-स्तम्भ को पहले गुजरात के एक सुलतान ने और बाद में सम्राट जहाँगीर ने अपनी राजधानी में ले जाने का प्रयास किया, पर स्तम्भ टूट जाने से वे इसे ले जाने में असफल रहे। आज भी भोज व स्तम्भ विषयक इतिहास लोकोक्ति 'कहाँ राजा भोज व कहाँ गांगली तेलण' में अन्तर्हित हुए बैठा है। भोज के समय का वर्धमान धातु-शिल्प का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है।

मालवा क्षेत्र में ऐसे कई महत्त्वपूर्ण अभिलेख हैं जो भोजराज की महिमा का गान करते हुए नहीं अघाते। कुछ अभिलेखों के संस्कृत से हिन्दी में रूपान्तरित उद्धरण का अवलोकन किये बिना भोजराज का ठीक से मूल्यांकन हो नहीं पायेगा। अभिलेखों के माध्यम से भी भोज को देखना आवश्यक है।

भोजदेव के अभिलेख बांसवाड़ा, बेटमा, उज्जैन, देपालपुर, शेरगढ़, तिलकवाड़ा, भोजपुर आदि स्थानों पर प्राप्त हुए। इन अभिलेखों के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरणों का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है-

बांसवाड़ा का ताम्रपत्र अभिलेख (सं. 1076=1020 ई.)

ओऽम्।

जो संसार के बीज के समान चन्द्र की कला को संसार की उत्पत्ति के हेतु मस्तक पर धारण करते हैं, मेघमंडल ही जिसके केश हैं ऐसे महादेव श्रेष्ठ हैं ॥1॥

प्रलयकाल में चमकने वाली विद्युत की आभा जैसी पीली, कामदेव के शत्रु शिव की जटाएँ तुम्हारा कल्याण करें॥ 2॥

परमभट्टारक

महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयकदेव के पदानुध्यायी परमभट्टारक

महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पतिराजदेव के पादानुध्यायी परम

भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सिन्धुराजदेव के पादानुध्यायी

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव कुशलयुक्त हो

स्थली मण्डल में घाघ्रदोर भोग के अन्तर्गत वटपद्रक में आये हुए समस्त

राजपुरुषों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, आसपास के निवासियों व ग्रामीणों आदि को आज्ञा देते हैं आपको विदित हो

कि हमारे द्वारा कोंकण विजय के पर्व पर स्नान कर चर व अचर के स्वामी भगवान भवानीपति की

विधिपूर्वक अर्चना कर संसार की असारता को देख कर

इस पृथ्वी का आधिपत्य वायु में बिखरने वाले बादलों के समान चंचल है, विषय भोग प्रारम्भ मात्र में ही मधुर लगने वाले हैं, मानव प्राण तिनके के अग्रभाग पर रहने वाली जलबिन्दु के समान है,परलोक जाने में केवल धर्म ही सखा होता है॥ 3॥

घूमते हुए संसार रूपी चक्र की धार ही जिसका आधार है, भ्रमणशील ऐसी लक्ष्मी को पाकर जो दान नहीं करते, उनको पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ फल नहीं मिलता॥ 4॥

इस जगत् का विनश्वर स्वरूप समझ कर

ये स्वयं श्री भोजदेव के हस्ताक्षर हैं

बेटमा का भोजदेव का ताम्रपत्र अभिलेख (संवत् 1076=1020 ई.)

भोक्ताओं को हमारे द्वारा दिये गये इस धर्मदान को मानना व पालन करना चाहिए और कहा गया है-

सगर आदि अनेक नरेशों ने वसुधा भोगी है और जब-जब यह पृथ्वी जिसके अधिकार में रही है, तब-तब उसी को उसका फल मिला है॥ 5॥

यहाँ पूर्व के नरेशों द्वारा धर्म व यश हेतु जो दान दिये गये है, त्याज्य एवं कै के समान जान कर कौन सज्जन व्यक्ति उसे वापस लेगा॥ 6॥

हमारे उदार कुल क्रम को उदाहरण रूप मानने वालों व अन्यों को इस दान का अनुमोदन करना चाहिये, क्योंकि इस बिजली की चमक और पानी के बुलबुले के समान चंचल लक्ष्मी का वास्तविक फल (इसका) दान करना और (इससे) पर यश का पालन करना ही है॥ 7॥

सभी इन होने वाले नरेशों से रामभद्र बार-बार कहते हैं कि यह सभी नरेशों के लिये समान रूप धर्म का सेतु है, अत: अपने-अपने काल में आपको इसका पालन करना चाहिए॥ 8॥

इस प्रकार लक्ष्मी व मनुष्य जीवन को कमलदल पर पड़ी जलबिन्दु के समान चंचल समझ कर और इस सब पर विचार कर मनुष्यों को परकीर्ति नष्ट नहीं करना चाहिए॥ 9॥

यह संवत् 1076 भाद्रपद सुदि 15 हमारी।

आज्ञा। मंगलमहाश्री। यह स्वयं श्री भोजदेव के हस्ताक्षर हैं।

उज्जैन का भोजदेव का ताम्रपत्र अभिलेख(संवत् 1077=1021 ई.)

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव कुशलयुक्त होकर नागद्रह पश्चिमी पथक

के अन्तर्गत विराणक में आए हुए समस्त राजपुरुषों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, आसपास के निवासियों पटेलों
व ग्रामीणों को आज्ञा देते हैं – आपको विदित हो कि
संवत्सर एक हजार अठहत्तरवें वर्ष की
माघ वदि तृतीय रविवार सूर्य के उत्तरायण पर्व के प्रारम्भ होने पर संकल्पित
हलों के लिखा जाने पर श्रीयुक्त धारा में निवास करते हुए
हमारे द्वारा स्नान करके चर व अचर के स्वामी
भगवान् भवानीपति की विधिपूर्वक अर्चना कर संसार की असारता देखकर
इस जगत् का विनश्वर रूप समझकर ऊपर
लिखे ग्राम को अपनी सीमा तृण गोचर भूमि तक साथ में
हिरण्य भाग भोग (का अनुदान दिया)
ये हस्ताक्षर स्वयं भोजदेव के हैं।

देपालपुर का भोजदेव का ताम्रपत्र अभिलेख

(संवत् 1071 = 1023 ई.)

परमेश्वर श्री सिन्धुराजदेव के पादानुध्यायी, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव
कुशलयुक्त हो श्रीयुत् उज्जयिनी पश्चिम पथक के अन्तर्गत किरिकैक में आए हुए सभी राजपुरुषों
श्रेष्ठ ब्राह्मणों, आसपास के निवासियों, पटेलों और ग्रामीणों को आज्ञा देते हैं – आपको विदित हो कि
श्रीयुत् धारा में निवास करते हुए हमारे द्वारा असंख्य प्राणिवध करने पर प्रायश्चित की दक्षिणा स्वरूप स्नान कर चर व अचर के स्वामी
भगवान भवानीपति की विधिपूर्वक अर्चना कर, संसार की असारता देखकर (कहते हैं कि)

जो दान नहीं करते, उनको पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ फल नहीं मिलता॥ 4॥

भोजशाला की भोजदेव- निर्मित वाग्देवी मूर्तिअभिलेख

(संवत् 1091 = 1034 ई.)

ओऽम्।

श्रीमान् भोज नरेन्द्रचन्द्र की नगरी में जो मूर्तिमति विद्याधरी देवी की मूर्ति है, जिसके नाम स्मरण से ही निश्चित रूप से सुख प्राप्त होता है, इसकी स्थापना करके जिसने प्रथम बार माँ वाग्देवी का निर्माण करके तीनों लोकों में नाम कमाया, जिसका पूजन करने में मनोरथ पूर्ण होते हैं, यह शुभ सुन्दर मूर्ति निर्मित की॥ 1॥

शुभ हो। सूत्रधार साहिर के पुत्र मनथल के द्वारा घड़ी गई। पंक्तियाँ शिवदेव द्वारा लिखी गईं।

संवत् 1091।

तिलकवाड़ा का भोजदेवकालीन ताम्रपत्र अभिलेख

(संवत् 1103 = 1046 ई.)

भूमि का दान देने वाला साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग भोगता है। इसको छीनने वाले व छीनने की स्वीकृति देने वाले, सभी उतने ही वर्षों के लिए नरक के भागी होते हैं॥ 17॥

एक स्वर्ण (मुद्रा), एक गाय, एक अँगुल भूमि का हरण करने वाला प्रलय काल तक नरक में वास करेगा॥ 18॥

भूमि का हरण करने वाले व्यक्ति विंध्य की अटवियों में सूखे वृक्षों के छिद्रों में रहने वाले कृष्ण सर्प निश्चय रूप से बनते हैं॥ 19॥

वाल वंश में उत्पन्न ऐवल पुत्र कायस्थ सोहिक ने यह राजपत्र राजा की आज्ञा से रचा॥ 20॥

इस शासन पत्र में अज्ञानवश जो भी कम या अधिक लिखा गया है, उसको नमस्कार ही करना चाहिए, क्योंकि सज्जन सब सहन करते हैं॥ 21॥

मंगल व श्रीवृद्धि हो

वास्तव में भोज की सच्ची महिमा उदयपुर की 'नीलकण्ठेश्वर मन्दिर की प्रशस्ति' में उदयादित्य द्वारा की गई है। कुछ अंश निम्न हैं–

उसके छोटे भाई श्री सिन्धुराज ने हूणराज को जीत कर विजयश्री प्राप्त की, जिससे भोजराज उत्पन्न हुआ, जिसने उत्तम व्यक्तियों को भी कँपा दिया व जो अद्वितीय रत्न था॥ 16॥

जिसने कैलाश से मलय तक तथा उदयाचल से अस्ताचल तक सम्पूर्ण पृथ्वी को पृथुराज के समान उपभोग किया, जिसने अपने धनुष की डोरी से सहज ही में दिक्पालों को उखाड़कर दिशाओं में फेंक दिया तथा जिसने पृथ्वी को परमप्रीति से प्रसन्न किया॥ 17॥

जो उसने साध्य किया (प्राप्त किया), जो दिया, जो ज्ञात किया, वह कोई न कर सका। कविराज श्री भोज की इससे अधिक प्रशंसा क्या हो सकती है॥ 18॥

कर्णाट, लाटपति, गुर्जर नरेश व तुरुष्कों, जिनमें मुख्य चेदि नरेश इन्द्ररथ, तोग्गल तथा भीम थे, की सेनाओं को जिसके भृत्यमात्रों ने ही विजित कर लिया व इस कारण जिसकी पारम्परिक सेनाओं के बाहुबल की उग्रता की गणना की जाती है, उसके योद्धाओं की नहीं की जाती (क्योंकि योद्धाओं की तो अभी बारी भी नहीं आ पाई थी)॥ 19॥

जिसने चारों ओर केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुडीर, काल, अनल व रुद्र आदि के मन्दिरों का निर्माण कर पवित्र पृथ्वी को यथार्थ नाम वाली बनाया॥ 20॥

शिव-भक्त (राजा भोज), जिसका प्रताप सूर्य के समान था, के स्वर्ग चले जाने पर, धारा नगरी के समान सारी पृथ्वी शत्रु रूपी अंधकार से व्याप्त हो गई तथा उसके पारम्परिक योद्धाजन दुर्बल हो गये, तब सूर्य के समान उदयादित्यदेव उन्नत शत्रुरूपी अंधकार को खड्गदण्ड की किरणों से नष्ट करके समस्त जनों के मनों को आनन्दित करता हुआ उदित हुआ॥ 21॥

जो (पृथ्वी उद्धार का) कार्य वराह अवतार ने किया, वह भूमि उद्धार का कार्य इस परमार ने कितनी सुगमता से किया, यह कितना आश्चर्य है॥ 22॥

उक्त अभिलेख हमें बताते हैं कि भोज एक अद्वितीय सैनिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व था। एक नृपति के रूप में उसे अपने निकट पूर्वजों की भाँति, जैसा कि विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है। वह 'परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि धारण किये हुए था। चित्तौड़ (चित्रकूट) में त्रिभुवननारायण मन्दिर के निर्माण के कारण उसे त्रिभुवननारायण उपाधि से विभूषित किया गया था। वह 'मालवाधिपति' तो था ही, उज्जैन से राजधानी धारानगरी ले जाने के कारण उसे धारापति भी कहा जाता रहा। 'धारापति' उपाधि को उसने सार्थक किया था। उसने धारानगरी को एक उल्लेखनीय कुल-राजधानी ही नहीं, नवीन राज्य-राजधानी के रूप में विकसित किया था। वहाँ उसने शारदा-सदन, एकाधिक तड़ाग, लीलोद्यान, प्राकार, परिखा, प्रासाद, तोरण-द्वारों व गोपुरों से सज्जित एवं सुरक्षित कर अपने महनीय ग्रन्थ 'समरांगणसूत्रधार' को मूर्त रूप देने का प्रयास किया था। मालवमणि, अवन्ती-नायक, मालवाधीश जैसी अनेक उपाधियों से मंडित राजा भोज भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अद्वितीय एवं अप्रतिम शासक था, एकदम बिरला, कई अन्य ख्यातनाम एवं विशिष्ट नृपतियों से भिन्न, उनसे श्रेष्ठ एवं शत्रु-गण द्वारा भी पूज्य।

राजनीतिक दृष्टि से वह एक प्रभावी महाराजाधिराज, सैनिक दृष्टि से महाबलाधिकृत व परम भट्टारक, अनेक राजाओं, मांडलिकों का परमेश्वर तथा जन-जन का कल्याणकर्ता कुशली था। वह अनेक विद्वानों का आश्रयदाता एवं उनके द्वारा सतत् संपूज्य था। आज हजार साल बीत गये, उसकी रचनाओं को भारतीय वाङ्मय में अत्यधिक आदर के साथ उद्धृत किया जा सकता है। वह एक महान सहिष्णु एवं सर्वधर्मसमन्वयी शासक था। शैव, वैष्णव, शाक्त आदि हिन्दू सम्प्रदायों, दिगम्बर एवं श्वेताम्बरों आम्नायों की विविध शाखाओं आदि के साधु-संतों, ग्रन्थों, लेखकों एवं शीर्ष पुरुषों का वह अन्तरानुशासनात्मक संरक्षक एवं ज्ञाता नृपति था।

आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य की ही भाँति उसकी सांस्कृतिक दृष्टि बड़ी व्यापक एवं भारतीय राष्ट्र के प्रति समर्पित थी। उदयपुर प्रशस्ति कहती है कि राजा भोज ने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर (मुंडीर), काल, अनल, रुद्र आदि के मन्दिरों का निर्माण करवाया था। वह एक ही समय में मालव-राज्याद्धारक एवं महावराह की भाँति पृथ्वी-उद्धारक था। उसकी तीर्थों, धर्मस्थलों, परिवार एवं राज्यानुकूल कर्मकाण्डों, पर्वों एवं त्योहारों में दृढ़ आस्था रही तथा अपने प्रजाजन को वैसा बनाने का सुप्रयास भी किया। अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि वह महादानी, भूमि-

अनुदानी, अनुदान में प्रदत्त भूमि आदि का संरक्षक, पर्वों व तीर्थों पर वांछित पूजा-अर्चना का आस्थावान पक्षधर रहा। वाग्देवी का वह परम आराधक था। वह इसलिए दान-दक्षिणा का पक्षधर था, क्योंकि वह जानता था कि भौतिक धन-सम्पदा, विषयभोग व लक्ष्मी चंचल व चलायमान है। संसार ओंस की बूँद की तरह क्षणभंगुर है। अत: लोक और परलोक को सुधारने और उनके साथ न्याय करने के लिए हमें सतत् सन्नद्ध रहना चाहिए।

भोज को जाने बिना तत्कालीन मालवा को जाना नहीं जा सकता। भोजकालीन मालवा का राजनीतिक प्रभाव काश्मीर से लेकर कर्णाट तक एवं पश्चिमी सागर से लेकर कन्नौज तक था। तुरुष्कों एवं तोग्गल के लिए तो भोजराज साक्षात् परमदेव था। भोज के समय में मालवा भारत-राष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी ही थी। साहित्य, धर्म-दर्शन एवं संस्कृति का प्रभापुंज बनकर उभर उठा था, उस समय का मालवा जिसके नीलाभ्र-गगन पर पूर्णचन्द्र की भाँति चमक रहा था सांस्कृतिक भोज, एवं जेष्ठ की दुपहरी के सूर्य की भाँति प्रखरत्व विकीर्ण कर रहा था राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भोज। उसके समय धारानगरी सदाधारा बनी हुई थी और सारे पण्डित मंडित हो रहे थे।

आभार : इस आलेख के कलेवर के लिए लेखक आभारी है- डॉ. डी.सी. गांगुली : परमार राजवंश का इतिहास, डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित : भोजदेव, अमरचन्द मित्तल : परमार अभिलेख, डॉ. अल्पना दुभाषे : परमार साम्राज्यवाद के विकास का अध्ययन (टंकित शोधप्रबन्ध), डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन : मध्यकालीन मालवा में जैन धर्म (टंकित शोधप्रबन्ध), डॉ. पृथीपाल भाटिया : द परमार्स के प्रति)।

राजा भोज और चौदहवीं विद्या

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

कहानी एक नट ने सुनाई थी- 'राजा भोज तेरह विद्यानिधान हो और चौदहवीं विद्या सीखबे डोल रह्यो औ।'

अवश्य ही कहानी का महत्त्व है, पर क्या कहानी सुनाने वाले की महिमा कुछ कम है? राजा भोज को एक हजार साल हो गये। इस बीच कितने राजा हो चुके, पर लोककहानियों को कितनों के नाम याद हैं? और फिर नट की समाज में गिनती ही कहाँ है? समाज की पेंदी में। राजा भोज का नाम समाज की पेंदी तक पहुँचा हुआ है और एक हजार साल से वाचिक परंपरा के प्रवाह में बहते हुए आया है। नट तो निरक्षर था, निश्चित ही उसने राजा भोज का नाम किताब में नहीं पढ़ा था। और फिर किताबों का भी कितना भरोसा है? 'श्रृँगार प्रकाश' जैसा विश्वकोश के स्तर का ग्रंथ अभी तक अल्पज्ञात- स्थिति में ही बना रहा। धारानगरी में (ई. 1005-1062) रचित महाराजाधिराज भोजदेव का सौन्दर्यशास्त्र पर केन्द्रित यह अद्‌भुत ग्रंथ मलयालम लिपि में केरल के एक पुस्तकालय में उपेक्षित स्थिति में प्राप्त हुआ। लगभग दो हजार पृष्ठों में केवल मूलग्रंथ है, उसका हिन्दी-अनुवाद तो अभी भी नहीं हुआ। काल बड़ा निर्मोही है। आज है, उसका राज है, कल किसने देखा है?

अपने जमाने के सर्वसमर्थ सम्राटों ने अपने को अमर बनाने के लिए क्या-क्या नहीं किया, पर अंततः विस्मृति के गर्भ में समा गये। मध्य भारत में जिस समय राजाभोज था, उसी समय दक्षिण-भारत में राजेन्द्र चोल सम्राट था। समुद्रों पर अपने जहाजी बेड़े के साथ विजयश्री प्राप्त की थी। उसे लोग भूल गये। वह कारण क्या था कि राजा भोज लोकमानस की स्मृतियों में इतनी गहराईयों में बसा कि तमाशा दिखाकर रोटीरोजी चलाने वाला नट कह रहा था- 'राजा भोज तेरह विद्याविधान हो और चौदहवीं विद्या सीखबे डोल रह्यो हो।'

इस नट का इतिहास से क्या लेना-देना और 'तेरह-विद्या विधान' होने की बात तो सचमुच बहुत कठिन है। कौन सी हैं ये तेरह विद्या? नट को क्या पता कि तेरह विद्या कौनसी थीं। उसने तो कह दिया- आई, जैसी गाई। जैसी सुनी, वैसी सुना दी। तेरह विद्या निधान होने की बात वाचिक परंपरा में गूँज रही थी। विद्वानों की मंडली में श्रुति और स्मृति की परंपरा चलती है, राजा भोज विद्वनों का आश्रय था-

अद्य धारा शुभाधारा शुभालंबा सरस्वती ।
पंडिता मंडिता: संर्वे भोजराजे भुवंगते।

पंडित-मंडली में भोज के विद्यानिधान होने की बात कोई अस्वाभाविक बात नहीं होती। भोज तो अपने समय में ही किंवदंती बन गया था और बल्लाल ने 'भोज प्रबंध' में उसे एक मिथक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया- प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। परन्तु यहाँ तो कहानी कहने वाला नट है- गाँव की बाहरी सीमा पर डेरे में रहने वाला। आज डेरा यहाँ है, कल किसी दूसरी जगह है। राजाभोज की कहानी उसके साथ चल रही है।

राजा और प्रजा का संबंध क्या है? 'सरस्वती-कंठाभरण' में अपदत्व दोष का उदाहरण राजाभोज ने दिया है-

आउज्जअ पिट्टिअए जह कुक्कुलि णाय मज्झ मत्ताले।
पेक्खन्तह लाउलककण्णि आह हा कस्स कन्देभि।।

राजा के कर्मचारी मजदूर का सिर पकड़कर उसे कुत्ते की भाँति पीट रहे है, मजदूर की पत्नी क्रंदन कर रही है, बिलख रही है- किसके पास जाकर रोऊँ?

राजा भोज की संवेदना और मजदूर की पत्नी की वेदना। क्या कहीं कोई सूत्र जुड़ रहा है?

राजा भोज वेश बदलकर प्रजा की स्थिति को देखने-समझने के लिए रात को घूमते थे। एक स्त्री पति से कह रही थी।

माणुसडा दस-दस दसा सुणियइ लोभ पसिद्ध।
महकंतइ इक्कज दसा अवरि नवोरहि सिद्ध।

लोग कहते हैं कि मुनष्य की दशा दस वर्षों में बदल जाती है, पर मेरे पति की दशा तो एक जैसी ही रही आई है।

राजा भोज हाथी पर सवार था। सामने एक दरिद्री दाने बीन रहा था। राजा उसे लक्ष्य करके बोला -

निथ उयर पूरणम्मि असमत्था किंपि तेहि जाएहि।

जो अपना भी पेट नहीं भर सकते, उनका तो जन्म ही व्यर्थ है। दरिद्री ने देखा- राजाभोज हैं। वह हँसकर बोला-

सुसमत्था बिहु न परोवयारिणो तेहि नहिं किंपि।

जो समर्थ होकर भी परोपकार नहीं कर सके, उनके ही जन्म का क्या लाभ है?

राजा को बात चुभी। वह बोला-

परपत्थणापवत्तं मा जणणि जणेसु सरिसं पुत्तं

हे माँ! तू भीख माँग कर पेट भरने वाले पुरुष को जन्म ही न दे।

दरिद्री ने उत्तर दिया-

मा पुटुवि मा धरिज्जसु पन्थण मंगो कलोजेहिं।

हे पृथ्वी! तू याचकों की प्रार्थना पर ध्यान न देने वाले पुरुष को अपने ऊपर धारण मत कर।

राजा भोज और दरिद्र प्रजा के बीच यह निर्भय संवाद राजा की किन विशेषताओं की व्याख्या कर रहा है? आज हम जनतंत्रात्मक समाज में रह रहे हैं और भारत की संसद ने नागरिकों को सूचना का अधिकार भी प्रदान किया है। मेरे सामने अखबार की खबर है। एक अधिकारी ने एक नागरिक की इसलिए हत्या करवा दी, क्योंकि उसने आर. टी. आई. के तहत एक सूचना मांगी थी। अवश्य ही भोज भारत की सामंतीय व्यवस्था का प्रतिनिधि था, परन्तु उसकी संवेदना कितनी सुकुमार थी। राजाभोज और गंगू तेली की कहानी संवेदना की ही कहानी है। राजाभोज जैसे मूसरचंद कहानी भोज की गुणग्राहकता की कहानी है।

लोकवार्ता के अध्येता इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या लोकमानस किसी के 'अहम्' को स्वीकार कर सकता है? कितना ही बड़ा जनतांत्रिक हो और जनतांत्रिक होने का अहंकार करे, क्या लोकमानस उसे स्वीकार करेगा? 'श्रृँगार प्रकाश' में जहाँ रस

का विवेचन है, वहाँ भोजदेव ने अहंकार के विगलित होने की बात कही है। मुझे लगता है कि जीवन में अहंकार का हलका और गहरा रंग, अहंगार की संकीर्णता और व्यापकता, अहंकार का अधोगमन और उदात्तीकरण निर्णायक होते हैं। अहम् तो अंत:करण का देश है और वह रहेगा। प्रश्न यह है कि अहंकार का पर्यवसान किस रूप में होता है।

लोक कहानियों के पास एक राजा और भी है- विक्रमाजीत। जहाँ न्याय का सवाल आयेगा, वहाँ विक्रमाजीत आ जायेंगे और जहाँ विद्याव्यसन का प्रश्न आयेगा, वहाँ राजा भोज का नाम आयेगा। व्याकरण आदि को पढ़ लेना एक बात है, पर व्याकरण के साथ जीना दूसरी बात है। राजा भोज विद्या के साथ जी रहा था, विद्या के प्रयोजन से जी रहा था। कितनी ही कहानियाँ हैं।

शार्ङ्गधर पद्धति में एक कथा है। धाराधीश पालकी में बैठे जा रहे थे। पालकी लेकर चलने वाला बार-बार कंधा बदल रहा था। राजाभोज ने पूछा-

भूरि भार भराक्रांत बाधति स्कंध एष ते।

अत्यधिक भार से दबे हुए हे वाहक! क्या तुम्हारा कंधा दुख रहा है? भार वाहक बोला-

तथा न बाधते स्कंधो यथ बाधति बाधते।

महाराज! इस समय कंधा उतना नहीं दुख रहा, जितना बाध् धातु का परस्मैपद का प्रयोग दुख रहा है। भवादि गणीय धातु का प्रयोग आत्मने पद में होता है।

भोज ने सरस्वती कंठाभरण नाम की विद्यापीठ धारानगरी में प्रतिष्ठित की और पाँच सौ प्रतिष्ठित विद्वानों को धारा में बसाया। वाग्देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

संगीत संबंधी ग्रंथों ने राजा भोज को संगीत रत्नाकार कहा और नाट्यशास्त्र - संबंधी ग्रंथों ने भोज को आचार्य भरत के समकक्ष बताया। उस समय का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ विज्ञानी भोज ने आश्रय में रहा, कहते हैं कि उसने वायुयान बनाने के लिए प्रयोग किया था। परन्तु उसकी सीखने की इच्छा बलवती थी, इसीलिए नट कह रहा था कि 'राजा चौदहवीं विद्या सीखबे डोल रह्यौ हो।' इस कहानी को यहाँ पूरा उद्घृत किया जा रहा है। राजा भोज नट की विद्या सीखने के लिए नट के डेरों में जाता है। परकाया प्रवेश की विद्या सचमुच में थी, या नहीं थी परंतु परकाया प्रवेश विद्या की अवधारणा लोक और शास्त्र दोनों में है। राजा भोज की जिज्ञासा की कहानी यहाँ परकाया प्रवेश विद्या में समाहित हो गयी है-

राजा भोज : चौदंई विद्या

राजा भोज तेरह विद्या निधान ओ, और चौदहीं विद्या सीखिवे डोलि रह्यो।

अपने शहर में ज्या बात की ड्योंड़ी पिटवाइ दई कै जो कोई मेरे शहर में तमासौ करै बु चौदह विद्या जानें तौ करै नहीं मेरे शहर में ऊ न घुसै। हाली-हम्माली ज्या बात कौ पहरौ दैन लगे।

एक दिन एक नट और नटिनी तमासौ करिबे आये। पहरेदारनें बु रोकि दिये। नट ते बोले कै त्र्याँ तमासौ करिबे कौ राजा कौ हुकमु नाँऐं। नट बोल्यौ- भाई मैं तमासौ करिकैं जाऊँग्गो। पहरेदार राजा के पास गये और बोले - राजा साब एक नट तुमारे शहर में तमासौ करिबे आयौ ऐ। ब्वाते नाँहीं करि लई परि बु नाँय मानै। राजा बौल्यौ- अच्छौ करन देउ।

नटिनी नें ढोलक बजाई और नट नें एक कच्चे सूत की अँड़िया मँगाई और अँड़िया कौ एकु छोर पकरि के ऊपर कूँ फैंकि दई। डोरा सैं सूधौ है गयौ। अब नट ब्वा डोरा कूँ पकरि कैं ऊपर चढ़ि गयौ। कछू देर पीछें ऊपर ते पहिलें तौ एक हात गिरयौ, फिरि दूसरौ हातु, फिर एक पाँम, बाते पीछैं दूसरौ पाँम गिरयौ। फिरि सबु शरीर गिरि परयौ।

नटिनी बोली- राजा साब मेरे पती देवतान की लड़ाई में मरि गये। अब याकी दाह क्रिया करवाइ देउ। राजा नें ईंधन मँगाइ कें चिता बनवाइ दई, और नट कूँ धरवाइ कें आगि लगवाई। ब्वाई में नटिनी सत्ती है गई। राजा और सबु आदिमी बिनें फूँकि कैं पजारि कैं आये ई हते कै इतमें ब्वा सूत पै हैकें नटु उतरि कें आयौ ओर राजा ते बोल्यौं- राजा मेरी नटिनी कहाँ ऐ। राजा बोल्यो। भाई तेरौ शरीर कटि कटि कें धरती में आयौ सो बु तौ मेरे संग चिता में जराई दई। बु तौ संग सत्ती है गई। नटु बोल्यौ- महाराज! तुम मेरी नटिनी कूँ मोकूँ दै देउ। ऐसी बहाने बाजी मति करौ। ओर हमारी

तिहारी ज्याति पाँतिऊ तौ एक नाँयें। आप ब्वाइ राखिकैं कहा करौगे। महाराज! हम नट-कंजर और आप राजा-महाराज। हमारौ तिहारौ मेलु कहा? ऐसौ मति करौ। मेरी नटिनी मोइ दै देउ। राजा बड़े ससिपंज में और सोचै कै जि बड़ी आफति लगी। जीमती होंती तौ ढूँढ़िकें ऊ लामतौ अब कहा करूँ! नट बोल्यौ- महाराज नाँइ देउ? राजा बोल्यौ- भाई हमतौ जराइ आये तेरे संग।

नटु बोल्यौ- मैं बोलूँ और देखौ नटिनी तुमारे घर में तेई निकरैगी। नट ने आवाज दई। नटिनी बोली- महाराज मैं राजा नें सात तारे भीतर मूँदि राखी हूँ। नट बोल्यौ- तौ तारेन कूँ तोरि कें निकरि आ। तारे अपुढ़ारे खूँटत गये और नटिनी बाहर आ गई। राजा भोज नें बड़ौ अचम्भौ मान्यौ और नट ते बोल्यौ- भाई ! या विद्या कूँ मोइ सिखाईदै। नट बोल्यौ- महाराज मेरे डेरान कूँ चलौ और सीखि आऔ। राजा महलन में आयौ, औरू रानी ते बोल्यौ कै मैं चौदहीं विद्या सीखिबे जाइ रह्यौ हूँ। जब लौटिकें आऊँ और तो पै बिन बोलें पानी माँगूं तो जानियौ कै राजा यै। और कहिकैं पानी मागूं तौ जानियौं राजा ते दगा है गई ऐ। फिर तू सम्हरि कैं अपनौं राज-काज करियौ। राजा इतनी कहिकैं और अपने संग एक नौंकर लैंकें नट के संग विद्या सीखिबे कूँ गयौ।

नटु अपने डेरा में पौंहोंच्यौ और राजा कूँ विद्या सिखाइबौ शुरू कर दियौ। नौकर के ते कह दई कै जब हम विद्या सिखायौ करैं जब तू डेरा ते एक खेत दूरि चल्यौ जायौ करि। नौंकर एक खेत दूरि चल्यौं जायौं करै। परि जब राजा विद्या सीखै और नट चारि बात बतावै तो नौंकर कान लगाइ कैं चार्‌यौ बातन्नें सीखि लेय और राजा दोई बात सीखै। जब राजा विद्या में खूब निपुन है गयौ तौ अपने शहर कूँ लौट्‌यौ।

गैल में एक तोता मर्‌यौ पर्‌यौ ऐ। पहलें जाई पै जाँच करौ। राजा बोल्यौ- देखि तू मेरे चोला पै माखी तक मति बैठन दीजौ। मैं याकी जाँच करलूँ। नौकर बोल्यौ- अच्छौ महाराज। राजा अपने चोला कूँ छोड़ि कें तोता के चोला में जाइ घुस्यौ। अब नौंकर के नें कहा कामु कर्‌यौ के ब्वाई बखत अपनौं चोला छोड़िकैं राजा के चोला में जाइ घुस्यौ। और घोड़ा पै बैठिकैं शहर कूँ आयौ। आइकैं दरवज्जे पै हल्ला मचायौ- पानी लाओ, पानी लाओ! इतनी सुनितई रानी आई, बाइ राजा की बताई बात यादि आइ गई और सोची कै राजा ते दगा है गई। परि खैर भगमान मेरौ धर्म बचामिंग्गे।

जब राति भई तौ बु राजा रानी के साथ में भोग करिबौ चाहै। रानी बोली- देखि राजा ! छै महीना तक तौ तू मेरौ भइया और मैं तेरी बहन । बाद छै महीना के मैं तेरी स्त्री और तू मेरौं पती। राजा बोल्यौ- अच्छौ।

बु अपने मन में बोल्यौ कै छै महीना कछू बड़ी बात नाँयें, सही। अब ब्वा राजा नें कहा करमु कर्‌यौ कै अहेरिया और बधिकियान कूँ हुक्म दयौ कै जो कोई मरौ तोता लावैगो वाकूँ पाँच रूपइया इनाम दई जाइगी। इतनी बात सुनि कें बे चले। कोई मर्‌यौ तोता लाइ रह्यौ है कोई जीमतौ ला रह्यौ ऐ। एक अहेरिया द्वै दिना ते बड़ौ परेसान। ब्वाके हात एकऊ तोता न आवै और न मरौई कोई पावै। एक पीपर के पेड़ै साँझ कूँ बहत्तर तोतान की टोली बैठी पाई। बु ब्वा पेड़ै अच्छी तरह देखिकैं गयौ। दूसरे दिन धोंताई बु ब्वा पेड़ पै कोई चुपकनी चीज लगाइ आयौ।

इतमें ब्वाई दिना बु तोता जो राजा भोज तोता बनि रह्यौ ओ बु बिन में आई मिल्यौ। वे तोता ब्वाते बोले- भइया तू हम में काए कूँ आइ मिल्यौ यै। कहूँ हमें पकरवइयों मति! ज्याँ राजा भोज ने अत्याचार करि राख्यौ ऐ ! तोतान कूँ पकरवाइ पकरवाय कें मारि रह्यौ ऐ । बु बोल्यौ- भाई जब तुम मरौगे तौ मैं ऊ मरि जाउँ गो और तुम बचौगे तौ मैं ऊ बचि जाउँगो। परि अब तौ तिहारेई संग रहुंग्गो।

साँझ कूँ सब चुगि-चुगाइ कें ब्वाई पेड़ पै जाइ बैठे। और बैठत खैम सब के पाम पेड़ ते चुपक गये। बिन में ते एक तोता बोल्यौ- देखि लेउ हमनें कही कै नाँइ कै जि हमें मरवाइ देगौ। बुई बात भई। बु तोता बोल्यौ- भाई यामें मेरौ कहा खोटु ऐ। परि एक अकलि बताऊँ। बचिवे की जौ मानि जाऔ तौ। वे बोले : बताइ भइया, कोई अकलि ऐसी बताइ जाते बचि जाँइ, बु बोल्यौ- कै जब दिन निकसै, बु लैवे आवै जब सब अपनी अपनी नारि ढुरकाइ जइयौं और ऐसे है जइयौं मानों मरि गये। और जो पहिलें गिरै बु ही बहत्तर गिन लीजो। जब बहत्तर गिन्ती में है जाँय जबई उड़ि चलियौं।

समेरें अहेरिया आयौ और ब्वाइ दूरितेई देखिकैं वे नारि मुरकाय कें उसास खैंचि गये। अहेरिया बोल्यौ मन में- चलौ और नायें तौ बहत्तर रूपइया तौ सूघे भये। लै छुरी पेड़ पै चढ़यौ और एक-एक छुड़ाइ कें धरती में डारन लग्यौ। जो पहिलें तोता गिर्‌यौ बु गिन्ती गिनन लग्यौ। इकहत्तर तोता आइ गये, और बहत्तर की

पोत हात ते छुरी छूटि परी। सो वानें जानी कै सबु आइ गये। झट उड़ि धर्‌यौ वाके पीछें सबु उड़ि गये। अहेरिया बड़ौं भारी खिस्यायौ। और बुई एक तोता राजा भोज रहि गयौ। ब्वाते बोल्यौ कै तैनें मेरे बहत्तर रूपय्यान में पानी लगायौ है। सो तोइ का छोडुंग्गो जि सब अकलि तैनें ई बताई ऐ। अहेरिया ब्वा तोता कूँ लैकें घर आयौ और अपनी औरत सै बोल्यौ कै तू या तोता की पंख-फंक उचेलि कैं चीर लै। मैं बजारते मसालौ लैं आऊँ। यानैं बड़ौ ज्यानु कर्‌यौ ऐ। मेरे बहत्तर रूपइयन में पानी दीयौ ऐ।

अहेरिनी ब्वा तोता कूँ जब चीरबे बैठी तौ तोता बोल्यौ- भागुमान तू मेरी जानि बचाइ दै। मैं ब्वाकूँ बहत्तर रूपइया दिवाइ दुंगो। ब्वा तोता की बात सुनि कें वाकूँ तरसु आई गयौ और न चर्‌यौ। अहेरिया आयौ ब्वानें बु चिर्‌यौ न पायौ तौ जरि भुजि कें खाक है गयौ। और ब्वाकूँ मारिबे दौर्‌यौ। बु बोली- सुनों जी, यानें मोते न्यों कही कै मेरी जान बचाइ दै । मैं बहत्तर रूपइया दिवाइ दुंगी। अहेरिया बोल्यौ- कहाँ ते दिवाइ देगौ। तोता बोल्यौ- भाई राजा भोज की उज्जैन नगरी छोड़ि कें मोइ काऊ शहर कूँ लै चलि। अहेरिया ब्वा तोता कूँ लैकें चलि दीयौ। और काऊ शहर में लैकें पौंहोंच्यौ।

अहेरिया बोल्यौ- भाई अब मैं काऊ ते कहा कहूँ? तोता बोल्यौ- भाई तू काऊ ते कछू मति कहै। जहाँ चारि छै आदमी बैठे होंये म्वां मोइ लै चलि। मैं आपु कहि लुंग्गो । अहेरिया बजार में गयौ। और एक दुकान पै कछू बनियां बैठे चौफर खेलि रहे। एक बनिया की जबते बु खेलिये बेठयौ जबई ते हार है रही। और जब बु अहेरिया ब्वा तोता ये लेकें ब्वाके माँऊ तमाशौ देखिबे ठाड़ौ है गयौ जबई ते ब्वाकी जीत हौन लगी और सब बाजू बराबरि करि दई। बनियां बोल्यौ- जि माया कहा भई भाई। पीछें फिरिकें देखें तौ तोता लैकें आदमी ठाड़ौ ऐ। बु बोल्यौ- ज्यों भाई या तोता कूँ बेचै का बु अहेरिया बोल्यौ- बेचूँ हूँ। बनियाँ बोल्यौ- कहा लेगौ? अहेरिया बोल्यौ- जो तोता कह दे सो। बनियाँ बोल्यौ- कह भाई तोता! तुही कह! तोता बोल्यौ- तुम लेउगे? बनियाँ बोल्यौ- लिंग्गो। तौ बहत्तर रूपइया याकूँ दै देउ। बनियां ने बहत्तर रूपइया दैकें तोता ले लियौ। अहेरिया लै रूपइया अपने घर कूँ गयौ।

तोता बोल्यौ- सेठ जी ! तुमने मैं लै तो लियौऊँ परि मेरी बातऊ मानौगे। सेठ जी बोले- मानूँगो। तोता बोल्यौ- तौ अब ईख को बवारौ ऐ। सो जितनी बुवाई ओर बितनी ईख बुवाइ देउ। तोता के कहेंते सेठजी नें दस बीघे कै जानें बीस बीघे ईख बुवाइ दई। और ब्वा की निकाई गुड़ाई ते खूब कमाई करवाई। बड़े जोर की ईख भई। शहर भरि में हल्ला हैगौ : कै तोता वारे सेठ की ईख बड़ी जोरदार है। भाई ब्वाके तौ ईख में करारे है गये।

अब ईख के पेरिबे कौ बखतु आयौ। सेठ बोल्यौ- भाई तोता कहा डौर करैगौ। अब ईख के पेरिबे कौ बखतु आयौ। तोता बोल्यौ- सेठिजी मानौ तौ बताऊँ। सेठिजी बोले- हम चों न मानिगे। हमारी तौ मालिकुई तू यै, हम कोयें ने मानिबे बारे। तोता बोल्यौं- अच्छौ तौ ईख में आगि लगाई देउ। सेठ बोल्यौ- जानें अच्छौ कर्‌यौ। बरस दिना कमाई-रखाई अब आगि लगाइबे की कह रह्यौ ऐ। कहूँ भइया रिस तौ नाँइ है गयौ। सेठानी ते बोल्यौ- कछू तैनें तौ नाँइ कह लई? सेठानी बोली- ये जी ! मैंने तौ कछू नाँइ कही। अरे कछू चुगे की तौ भूल नाँइ परि गई? नाँइ तौ जी! मैं तौ नहाइ-नहाइ धोई के बढ़िया पानी लाऊँ और तीन्यों टैम बढ़िया चुगौ धरूँ। तौ कहा बात भई। चलि हम तुम दोनों मनायें। सेठ और सेठानी दोऊ तोता के जौरें गये। और हात जोरि कें बोले- भाई तोता! कैसें रिस है गयौ ऐ? तोता बोल्यौ- ईख में आगि लगवाइ दई? सेठ चुप है गयौ। और ईख में आगि लगाइबे गयौ। सेठजी ने ईख में आगि लगाइ दई। दुनियाँ ब्वातें कहन लगी कै देखौ! जि कैसौ बाबरौ यै। एक जिनावर के कहें ते पैदा में आगि लगाइ दई। ऐसौऊ कोई मूरिख होगौ? भगवान की करनी ऐसी भई ईख की खसबोई लैकें समुंदर में ते हंस आये। और हंसन ते सबु खेतु भरि गये।

राति भरि हंस रहे ओर मोतीन की छेर करी। तौ मोतीन के ढेर जमि गये। तोता बोल्यौ- सेठजी ! दस-बारह फाबरे इकठठे करौ और गाड़ी लै चलौ। और मैंहनती लै चलौ। सेठजी नें सामानु इखट्टौ कर्‌यौ और लै मेंहनती खेत पै गयो।

तोता बोल्यौ- भाई फावरेन ते मोती भरि-भरि कें गाड़ीन में भरौ। बड़ी ढुबाई करी। बात जिहै के सेठिजी पूरे साहूकार करि दीये। अबतौ सेठजी को हल्ला है गयौ और पूरौ व्यौपार करन लग्यौ। एक दिना तोता बोल्यौ- भाई सेठ तेरें एक लड़की यै सो ऐसौ याकौ ब्याह ओर करिदै। सेठु बोल्यौ- बताइ भाई। सगाई कहाँ करूँ? तोता बोल्यौ- भाई और कहाँ बताऊँ, राजा भोज कूँ

सगाई भेजि दै। सेठ ने ब्वाई बखत उज्जैन नगरी के राजा भोज कूँ सगाई और चिट्ठी भेजि दई। ब्वानें बड़ी खुशी ते सगाई लई। अब ब्याह क सामान जुरन लगे।

मूर बात जि है कि राजा भोज की बरात गई। साहूकार के न्यां बड़े-बड़े ठाट बनाये गये। तोता ब्वा सेठ ते बाल्यौ- कै भाई सेठ मेरी एक बात माननी परैगी। सेठजी बोले- भाई एक नां द्वै मानुंग्गी। तोता बोल्यौ जब राजा की बरात आवै जब मोय दुबकाइ दीजौ। और एक काम जि करियौ कै राजा ते ज्या बातै कहियौं के महाराज तुम चौदह विद्या सीखि कें आये हो। सो हमें चौदई विद्या कौ तमासौ दिखाइ देंउ। जब ब्याहु करिंगो। जब राजा भोज की बरात आई तौ सेठजी नें तोता तौ दुबकाइ दीयौ। और राजा ते कही कै चौदहवीं विद्या कौ तमासौ दिखा देउ। तुम सीखिकें आये हौ। बु बड़ौ खुशी भयौ और एक बकरा मँगाबायौ और बु मरवायौ। अब ब्वा सेठ ते बोल्यौ कै मेरे चोला पै माखी न बैठन पावै। मैं तुम्हें तमासौ दिखाऊँ।

इतमें तोता सेठानी ते बोल्यौ कै मेरे पींजरा की खिरकी खोलि दै। सेठानी ने पींजरा खोलि दीयौ। इतमें बु राजा चोला छोड़िकें बकरा के चोला में घुस्यो और राजा भोज तोता कौ खलरा छोड़िकें अपने में घुसि गयौ। और फिरि ब्वा बकरा के ऊपर तेल छिरकवाइ कें आगि लगवाइ दई। और राजा भोज अपने शहर कूँ आयौ। आई जैसी गाई।

(सं.क.ब्र.सा.मं. के संग्रह से)

जनमानस में राजा भोज

दीपेन्द्र शर्मा

राजा भोज का स्मरण भारतीय किंवदन्तियों और लोककथाओं में एक दानवीर, रणवीर, विद्यावीर राजा के रूप में किया जाता है। ख्यातिवंत भोज न केवल कालजयी शासक के रूप में वरन् एक लोकमान्य, जनप्रिय राजा के रूप में भी स्वीकारे गये। साहित्य और संस्कृति के अनन्य आराधक, साकार क्रियाशिल्पी के अनुग्रह में उनका कृतित्त्व वरेण्य है। अनुकरणीय है। राजा भोज ने अपने बाल्यजीवन से ही साहित्यिक/ सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध बनाने के लिए जो योगदान दिया है, वह स्तुत्य है। जनमानस में राजा भोज की छवि एक विजयी सम्राट की अपेक्षा साहित्य के साधक के रूप में रही है। जनमानस में भोज का अवदान साहित्य, कला और संस्कृति के साथ निर्माण, सृजन तथा कवियों को आश्रय देने के लिए अमिट और स्मरणीय है। सरस्वती के समुज्ज्वल कण्ठाभरण राजा भोज का भारतीय प्रज्ञा के क्षेत्र मे असाधारण योगदान है। उनका काव्य, लोककाव्य है। सार्वभौम सम्राट होते हुए भी राजाभोज सामान्यजन की चर्चा और चिंता प्रमुखता से करते रहे। राजा भोज की लेखनी सच्चे लोकतंत्र की रूपांतरित प्रस्तावना भी मानी जाती है। राजा भोज राष्ट्रीय जागरण के यशस्वी पुरोधा के रूप में लोकस्मृति में सदैव स्वीकार्य रहे हैं। भावनाओं के संवाहक, शब्दों के साधक और साधकों के आश्रयदाता भोज ने देशभर के विद्वानों, कवियों को अपने राजाश्रय में श्रेष्ठतम सम्मान ही नहीं दिया, उन्हें लाखों स्वर्ण मुद्राओं से सहजता से पोषित भी किया। भारतीय राज परम्परा में, राजाश्रय में साहित्य सम्मान का ऐसा विलक्षण उदाहरण दुर्लभ है। भोजशाला के रूप में सृजन और साधना तथा काव्य प्रस्तुति का जो धरातल राजा भोज ने उपस्थित किया, उसमें काश्मीर से सुदूर दक्षिण तक के विद्वान धारानगरी तक न केवल आए, वरन् भोज की ख्याति से ज्यादा सम्मान और मुद्राएँ पाकर भोज से सम्मोहित हो गये। भोजमय

हो गये। राजा भोज उन बिरले भाग्यशाली व्यक्तियों में से थे, जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती की समान अद्‌भुत कृपा थी। राजाभोज स्वयंमेव असाधारण योद्धा होने के साथ उच्चकोटि के ग्रंथकार भी रहे। चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, कोश, व्याकरण, धर्म, वास्तु, अलंकार, कला, स्वप्न, अश्व विद्या जैसे विविध विषयों पर उन्होंने ग्रंथ रचे। लोकमान्यता है कि धारानगरी में 84 चौराहे, 84 विशेष भवन और 84 ग्रंथों का उन्होंने निर्माण किया, निर्माण करवाया है। मदनकवि की पारिजात मंजरी के अनुसार धारानगरी में 84 चौराहों पर 84 देवालय थे – 'चतुरशीति में चतुष्पथ सुरसदन प्रधाने'। हजार वर्ष पश्चात् आज न तो भोजशाला का वो स्वरूप है, न ही उनके भवन शिल्प का और न ही उनके भाव शिल्प का। भारतीय साहित्य में राजाभोज के दो दर्जन ग्रंथों की ही उपलब्धता है। भोजरचित कुछ ग्रंथ ताड़पत्रों पर तथा कुछेक ग्रंथ पांडुलिपियों पर हैं, जो संग्रहालयों में शोभायमान हैं। उनकी प्रमुख कृतियों में समरांगण सूत्रधार, चम्पूरामायण, सरस्वती कंठाभरणम्, श्रृंगारप्रकाश, नाममालिका, युक्तिकल्पतरू, व्यवहार शब्दानुशासन, तत्वप्रकाश, राजमार्तण्ड, श्रृंगारमंजरी, गोविन्द विलास, अवनिकूर्मशतक, कोदकाव्य, वाग्देवीस्तुति, संजीवनी, गीतप्रकाश, रत्नकोष, गृहभाष्यम्, भुजबलभीम, राजभृगांक इत्यादि प्रमुख हैं। राजाभोज ने युगीन ज्ञान के सम्पूर्ण वांग्मय को अपनी तथा आश्रित विद्‌वानों की लेखनी में समेटने का जो अभिनव प्रयास किया, वह भारतीय जनमानस में उपमान बन गया। भोजकालीन ग्रंथ नामित, हस्तलिखित, प्रकाशित एवं प्रस्तर उत्कीर्ण रूप में संयोजित हैं। प्रबंध चितामणि के अनुसार भोज के रचे हुए 104 गीत प्रबंध, धारा में 104 प्रसाद तथा इतने ही इसके विरूद थे। सरस्वती कंठाभरणम् के टीकाकार अंजड़ ने भोज के शिष्ट शिरोमणि, निरवद्य, विद्या निर्माण में अपूर्व प्रजापति तथा अपने 84 विरुदों के अभिधानों वाले 84 ग्रंथों का रचयिता कहा है। राजाभोज के बारे में उदयपुर प्रशस्ति में वर्णित है।

साधितं विदितं दत्तं ज्ञातं तद् यन्न केनचित,
किमन्यत कविराजस्य श्री भोजस्य प्रशस्ते।

अर्थात् जिस बात को अन्य किसी ने सिद्ध नहीं किया, जाना नहीं तथा जिस वस्तु को दिया नहीं, उसी को कविराज भोज ने सिद्ध किया, जाना तथा अधिक से अधिक दान भी दिया।

राजाभोज की दानशीलता परम दानवीर कर्ण के समान श्रेष्ठतम थी। निराभिमानी उनकी दानवीरता, लोकमान्यता या प्रचारार्थ नहीं कर्तव्य और सामाजिक दायित्वों का निर्वहन थी। लोकचर्चा है कि भोज ने दान में इतने तामपत्र दिये कि उनके राज्य में तांबे की उपलब्धता कठिन हो गई थी। 'अस्य श्री भोज राजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्, शत्रूणां श्रृंखलैलौहं ताम्रं शासन पत्रकै:'– अर्थात् राजाभोज के शासन काल में दो चीजें दुर्लभ हैं– एक शत्रुओं को हथकड़ियाँ पहनाने से लोहा और दानपत्रों को लिखने के कारण तांबा। शब्द और भावों के पारखी राजाभोज मौलिक लेखन के प्रशंसक थे। उचित शब्द प्रयोग और काव्य शब्द पूर्ति पर लाखों स्वर्ण मुद्राएँ उपहार में, सम्मान में भेंट करते थे। उस काल में राजा भोज सदृश्य कोई शब्द भाव ग्राही दूसरा राजा नहीं था।

कविषु वादिषु भोगिषु द्वेहिषु द्रविणवत्सु सतामुपकारिषु,
धनिषु, धन्विषु धर्मधनेश्वपि षितितले नहि भोज समो नृप:।

कवियों में, वक्ताओं में, भोग करने वालों में, देहधारण करने वालों में, साधुओं का उपकार करने वालों में, धनिकों में, धनुर्धारियों में, धार्मिकों में, इस भूतल में महाराज भोज के सदृश्य दूसरा कोई नहीं है– अर्थात् उक्त गुणों में महाराजा भोज अद्वितीय हैं। राजाभोज कवियों, विद्‌वानों का प्रसन्न होकर धन, रत्न, भूमि, अश्व, गौ, गज, स्वर्णकलश, आवास तथा आभूषणों से यथाशक्ति से बढ़कर सम्मान करते थे। राजा के निरन्तर दान देने से कोष सचिव को राजकोष समृद्धि की चिंता हुई। राजा के समक्ष कुछ कहने में असमर्थ होकर राजा के शयनागार की दीवार पर सचिव ने लिखा।

'आपदर्थे धनं रक्षेत्'
– आपत्ति के लिए धन संग्रह करना चाहिये।
राजा ने पढ़ा और दूसरा चरण लिखा–
'श्रीमतामापद: कुत:'
– श्रीमानों आपत्ति कहाँ ?
कोष सचिव ने फिर लिखा–
'सा चेदपगता लक्ष्मी:'

–यदि वह लक्ष्मी चली जाय तब ?

राजा ने दूसरे दिन चौथा चरण लिखा–

'सच्चितार्थो विनश्यति'

–संग्रह किया धन भी नष्ट हो जाता है।

कोष सचिव राजा के चरणों में गिर पड़ा और अपराध की क्षमा मांगी। राजा भोज की दान प्रवृत्ति निरन्तर बनी रही।

अत्युद्धृता वसुमती दलितोऽरिवर्ग:
क्रोडीकृता बलवता बलिराज लक्ष्मी:।
एकत्र जन्मनि कृतं यदनेन यूना
जन्मत्रये तदकरोत्पुरूष: पुराण:।

दानदाता तथा विद्यावंत राजाभोज ने एक ही जन्म में उन तीनों कार्यों को कर दिया, जिन कार्यों को विष्णु भगवान ने तीन जन्मों में किया। पृथ्वी का उद्धार किया, शत्रुओं का शमन किया, राजा बलि की राज्यलक्ष्मी को उनसे छीन लिया। राजाभोज का उज्ज्वल शासन काल (सन् 1010 से 1055 ई.) भोज का पर्याय है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी भी राजा का स्मरण वहाँ के नागरिक ईंट, पत्थर, चूने से बनी इमारतों के कारण ही नहीं करते, बल्कि साहित्य, संस्कृति और विभिन्न कलाओं के धरातल पर उनका जो प्रदेय होता है, उसी आधार पर अनेक शताब्दियों तक वे जीवंत रहते हैं।

राजाभोज के संबंध में अनेक कथाएँ, दन्तकथाएँ विख्यात हैं। शस्त्र और शास्त्र के ज्ञाता महाराजा भोज शिव उपासक भी थे। राजाभोज ने सभी सम्प्रदायों को समादर दिया। प्रबंध चिंतामणि तथा प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि राजाभोज ने अनेक जैन साधुओं का अपनी राजसभा में आदर किया। भक्तांबर स्त्रोत की रचना धारानगरी में भोज शाला में हुई। भोजकृत चम्पू रामायण का अन्तिम अध्याय युद्धकाण्ड जैन मुनि लक्ष्मणसूरि ने पूर्ण किया।

राजाभोज ने धारानगरी, माण्डव, भोपाल, उज्जैयिनी, केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर, कारू अनल, रूद्र आदि के मन्दिर तथा अनेक भवन बनवाये। जनश्रद्धा के मंदिरों के अलावा भोपाल के निकट 250 वर्गमील में फैली झील, धार के साढ़े बारह तालाब परमार वंशीय व राजाभोज के शासनकाल के जन उपयोगी प्रतीक रहे हैं। भोजराज ने देवमंदिरों का निर्माण किया, राजतरंगिणी में कल्हण पण्डित ने लिखा है –

मालवाधिपति भौज: प्रहितै: स्वर्ण संच्चयै:,
अकारयघेन कुण्डयोजनं कपटेश्वरै।

राजाभोज की जनप्रियता व राष्ट्रव्यापी ख्याति का प्रमुख कारण उनका समूची प्रजा के प्रति व्यवहार श्रेष्ठ बंधु की भाँति सौहार्द्रपूर्ण था। राजाभोज की राज्य व सांस्कृतिक नगरी में कोई भी अपठित व्यक्ति नहीं था। सम्पूर्ण साक्षरता प्राप्त वह देश की पहली राजधानी थी। राजकाज की भाषा संस्कृत थी। डॉ. वासुदेव शरण के अनुसार राजाभोज का राज्य सांस्कृतिक राज्य का अनुपम उदाहरण है। राजाभोज का राज्य काव्य प्रधान राष्ट्र कहलाने का सही अधिकारी है। प्रस्तर पुस्तकालयों, राजकीय नाट्यशाला, विद्वानों की आश्रयस्थली शारदा मदन भोजशाला धारानगरी के सांस्कृतिक वैभव की प्रतीक है।

राजाभोज हजारों वर्षों बाद भी उनके साहित्य, निर्माण और कृतित्त्व से प्रासंगिक हैं। जीवंत हैं। राजाभोज के व्यक्तित्व और कृतित्व के कई पहलू आज भी अनछुऐ हैं। राजाभोज की साहित्य साधना आने वाली पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक धरोहर है। राजाभोज की वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिकता इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि हजार वर्षों पूर्व उनका चिंतन, लेखन व सामाजिक दिशा–दशा जो आज तक भी उतनी ही उपयोगी है। राजा भोज का सामाजिक पूर्वानुमान, ज्योतिष आकलन, वास्तुज्ञान, विज्ञान मंथन आज राजसीमा से होता हुआ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा सहर्ष स्वीकारा व अपनाया गया है। राजाभोज का परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव के रूप में स्वयंसिद्ध होना इतिहास की साक्षी घटना है। धाराधिपति महाराजा भोज की अपूर्व उदारता अद्भुत विद्वता और अलौकिक गुणग्राहकता की उज्ज्वल कीर्ति अतिविस्तृत है। राजाभोज ने जितनी सूक्ष्म दृष्टि से रस और काव्य गुणों का विवेचन किया है। पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी अन्य साधक, रचयिता ने सांगोपांग विवेचन नहीं किया। महाराजा भोज ने पण्डित आचार्य की भाँति साहित्यिक गुण फलक पर प्रत्येक काव्य तत्त्व को समेटने का जो क्रांतिकारी उपक्रम सम्पन्न

किया, वह अद्वितीय है। साहित्यिक क्षेत्र में ऐसे प्रयास अनुकरणीय हैं। साहित्य की प्राणवायु ऐसे ही उपक्रमों में निहित है। राजाभोज ने कठोरतम सारस्वत आराधना के फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतवर्ष को आलोक प्रदान किया। भारतवर्ष में सहस्त्राब्दियों से अनेक उदार और योग्य शासक हुए, जिन्होंने राज्य विस्तृत कर प्रसिद्धि प्राप्त की, परन्तु राजा भोज ने श्रेष्ठ प्रजापालन करते हुए अपने पराक्रम से वेद, वेदांगों का अध्ययन कर संस्कृत साहित्य की प्रत्येक शाखा में अद्वितीय ग्रंथों का निर्माण किया। इसी कारण लोक में राजा भोज हृदयस्पर्शी बने रहे। राजाभोज शौर्य, दानशीलता, देशभक्ति, विद्वता और कलाप्रेम के कारण भारतीय मानस में अमिट छाप अंकित कर चुके हैं। भारत ही नहीं विश्व इतिहास में भोज जैसे त्रिगुणात्मक दानवीर, विद्यावीर, रणवीर शिरोमणि प्रतिभा सम्पन्न शासक के अभ्युदय का उदाहरण कठिन है। राजाभोज के कर्मों की सुआस धारानगरी के सांस्कृतिक केन्द्र से पल्लवित, पुष्पित और फलग्राही हो सम्पूर्ण मानवसभ्यता को लाभ देती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ

- भोजभारती 1992
- भोज और कालिदास –बाबू स्वरूप चन्द्र जैन
- भोजप्रबंध – बल्लाल कवि कृत
- चम्पूरामायण– भोजदेव कृत
- यशधारा प्रवेशांक 2007

मालवी साहित्य का देवपुरुष
राजा भोज

डॉ. पूरन सहगल

लोक की अनन्तता और गहराई को नापना बहुत कठिन है। जितनी बार डुबकी लगाओ, उतनी बार कुछ न कुछ मिल ही जाता है। लोक किसी को रीती झोली नहीं लौटाता। महादानी होता है यह लोक। भोज भी ऐसा ही महादानी था। ऐसा लोक कहता है– जो भी उसके दरबार में गया, खाली हाथ नहीं लौटा। वह सरस्वती का लाड़ला पुत्र था। कालका का चहेता था। लोक का किंवदन्ती नायक था। उसके जीवनकाल में ही अनेक किंवदन्तियाँ भोज से जुड़ गई थीं। लोक का विश्वस्त और प्रामाणिक सन्दर्भ पुरुष था राजा भोज। विक्रमादित्य के बाद यदि लोक ने किसी मालव राजा को लोकपुरुष के रूप में स्वीकार किया, तो वह राजा भोज था।

लोक साहित्य, लोक का प्रमाणिक प्रवक्ता है। पट्टनामा है। दस्तावेज है। लोक में घटित त्रिकालों की समस्त गतिविधियों का वह साक्षी एवं भोक्ता है। लोक साहित्य इतिहास नहीं होता। वह तो इतिहास का दिशा बोधक होता है। लोक साहित्य तिथियों को याद रखने के बजाए घटनाओं को याद रखता है। उन्हीं घटनाओं के आधार पर वह संस्कृति की रचना करता है, उसका प्रसार करता है और लोक में होने वाली गतिविधियों एवं चर्चाओं की निगहबानी करता है। वह हमारी सभ्यता रूपी अश्व की वल्गा होता है, जो अश्व को न तो उच्छृंखलता करने देता है और न दिशा से भटकने देता है। वह इतिहास के पीछे नहीं चलता, उसे अपने पीछे चलाता है। वह उसका रहबर और रहनुमा होता है। भूगोल और इतिहास की तो वह कभी परवाह करता ही नहीं। उसका लक्ष्य सभ्यता को संदेश देना होता है। उसे सुसंस्कृत करना होता है। कालक्रम से लोक साहित्य को क्या लेना–देना? वह राजा भोज के दरबार में कालिदास और अष्टवक्राचार्य को उपस्थित करने में भी संकोच नहीं करता। उसका बस चले तो हजार वर्षों की काल सीमा को घटाकर विक्रमादित्य और राजा भोज का सामुख्य करवा दे। ऐसा करने में वह कल्पना के पंखों पर बैठकर उड़ान भरता है। एक मिथक की रचना करता

है। तुलना करता है। वह समय को नकारता नहीं, थोड़े समय के लिए लीला रचाता है। इसीलिए मैं लोक साहित्य को लीलाधारी कहता हूँ। सही कहा जाए तो वह इतिहास पुरुषों को आगे-पीछे नहीं करता, वह तो अपने समय में उनके समतुल्य विभूतियों को अलंकृत करता है। वह कालिदास के समान काव्य-प्रतिभा सम्पन्न पंडित को कालिदास के अलंकरण से विभूषित करता है। पर महापंडित किन्तु विकलांग परम विद्वान महापुरुष देखकर उसे अष्टवक्राचार्य की स्मृति हो आती है और किसी न्यायप्रिय, पराक्रमी एवं प्रजापालक राजा में उसे विक्रमादित्य की छवि दिखलाई पड़ती है, तब वह उसे उसी सम्बोधन से अलंकृत कर देता है। इस प्रकार कभी-कभी लगने लगता है कि लोक साहित्य ने काल-सीमा का उल्लंघन कर दिया है।

राजा भोज लोक में केवल उज्जैन या धार का राजा नहीं रहा, वह एक आस्था पुरुष और लोक विश्वास का सन्दर्भ-पुरुष बन गया है। लोक को जब भी कोई संदेश देना होता है, तब वह लोक संस्कृति के प्रामाणिक एवं विश्वस्त महापुरुषों को सेतुबन्ध बनाकर प्रसारित करता है। लोक साहित्य तो लोक का प्रवक्ता होने के कारण उसे जन-जन तक पहुँचाने का प्रभार वहन करता है। उसकी प्रस्तुति में लोकरंजन और लोककल्याण सदा निहित रहता है। लोक साहित्य निर्देश नहीं देता, परामर्श देता है। अतीत से शिक्षा लेने की बात कहता है। वर्तमान को सँवारने और सार्थक बनाने की बात करता है। लोक साहित्य जानता है कि यही वर्तमान और भविष्य का निर्धारण करता है। वर्तमान, भविष्य के भव्य भवन की नींव है। नींव पर ही इमारत खड़ी होगी। इस प्रकार अतीत और भविष्य की कड़ी वह वर्तमान से जोड़कर व्यतीत, प्रतीत और आगत में एक सुसंस्कारित सेतु निर्मित करता है।

राजा भोज एक ऐसा लोक विश्वास है, जो न तो इतिहास में बँध पाया, न काव्य-ग्रन्थों में। वह तो इन सबसे बाहर उन्मुक्त होकर लोक का आस्था पुरुष बन गया। वह किंवदन्ती पुरुष बन गया। वह लोककथा-गाथा, पहेलियों और गीतों का सात्विक भाव बन गया। भोज व्यतीत होकर भी प्रतीत है। अतीत तो वह कभी हुआ ही नहीं। अनेक किंवदन्तियाँ और लोककथाएँ भोज को जीवित बनाये हुए हैं। लोक उसे एक अवतार की तरह प्रकट करता है। लोक जिस पर कृपावन्त होता है, उसका अभिषेक कर उसे सम्मानित और समादृत कर देता है।

जिस प्रकार लोक को परिभाषित करना और उसकी व्याख्या शब्दों में कर पाना ठीक वैसा ही कठिन प्रयास है, जैसा ईश्वर की व्याख्या कर पाना। दोनों ही शब्दातीत हैं। फिर भी हमारे चिन्तकों-मनीषियों ने लोक और ईश्वर की अभ्यर्थना करने का प्रयत्न किया है। वह निरन्तर है। उसी प्रकार लोक के दिव्य पुरुषों को बखान पाना भी बहुत कठिन है। कहते हैं - वेद लोक में निहित हैं और लोक वेदों में समाहित हैं। ठीक उसी प्रकार हमारे लोकपुरुष भी लोक में समाहित हैं। वे लोक का हिस्सा बन गये हैं। लोक साहित्य उन महापुरुषों की अभ्यर्थना करता है। भोज उन्हीं महापुरुषों में से एक सात्विक दिव्य विभूति हैं। ज्ञानी का और राजयोगी का वे ऐसा भव्य स्वरूप हैं, जिन्हें वन्दन करने में लोक ने थोड़ी-सी भी कोर-कसर नहीं छोड़ी। लोक साहित्य की गरिमा इससे बढ़ी है।

भोज से सम्बद्ध अनेक प्रसंग लोक के पास आज भी सुरक्षित हैं। कण्ठानुकण्ठ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी आज भी प्रासंगिक

हैं। जीवित और जीवन्त हैं। लोक जब भी मानव-मूल्यों का संदेश देना चाहता है, उसे भोज जैसे सत्पुरुषों का सम्बल लेना पड़ता है।

लोककथा, श्रुति, पहेली और किंवदन्ती एक दूसरे की पूरक होती हैं। वस्तुत: किंवदन्ती कथा की बाल सखी कही जा सकती है। किंवदन्ती में बालसुलभ सहजता होती है। तर्क की तो उसमें गुंजाइश ही नहीं होती। किंवदन्ती नन्हीं बालिका की तरह एक आँगन से दूसरे आँगन में फुदकती फिरती है। जिस प्रकार देखते-देखते बालिका से किशोरी और किशोरी से युवती, फिर प्रौढ़ा और वृद्धा का आयु विकास होता है, वैसा ही विकास किंवदन्ती से कथा, कथा से गाथा और गाथा से महाकाव्य की विकास प्रक्रिया होती है।

किंवदन्ती ऐसा परिपक्व, निरोगा और उपचारित बीज होता है, जिसके गर्भ में एक विशाल वृक्ष छुपा रहता है। मिथक-मिथक ही होता है। उसे किंवदन्ती का पर्याय कदापि नहीं माना जा सकता। बोधकथा किंवदन्ती का लोक स्वीकृत एवं अभिषेकित रूप होती है। लक्ष्य साधक स्थिति, किंवदन्ती, मिथक और बोधकथा को एक जैसा ही देखा जाता है। मिथक पूरी तरह काल्पनिक लगता है, जबकि उसमें भी सत्यांश अथवा सत्यकथा का संकेत निहित रहता है। मिथक को पुराण के निकट भी आसन नहीं दे सकते। यद्यपि पुराण में भी इतिहास, अध्यात्म एवं सांस्कृतिक संदेशों के साथ-साथ कल्पनाशीलता भी पर्याप्त होती है। तथापि पुराण को कपोल-कल्पना नहीं कहा जा सकता। पुराण में इतिहास खोजना सहज होता है। वे हमारे गौरवशाली अतीत का सुन्दर रूपक हैं। वर्तमान के लिए वे ज्योति-स्तम्भ हैं। मिथक भी कई बार इतिहास का ऐसा सुगम मार्ग सुझा देते हैं, जो मुख्यधारा से जोड़ने में सहायक होता है। भले ही वह मार्ग संकरा, अगम्य अथवा कष्टसाध्य ही क्यों न हो।

लोक में से भोज को ढूँढना निश्चित रूप से श्रम-साध्य, समय-साध्य और अर्थ-साध्य था। आस्था और विश्वास के सात्विक लोकपुरुष भोज के राजापने को हटाकर आस्था पुरुष सिद्ध करते ये सन्दर्भ दिखते हैं। बहुत सम्भव है कि, ये सन्दर्भ या इनमें से कुछ सन्दर्भ अन्यत्र, अन्य भाषाओं और अन्य सन्दर्भों में भी उपलब्ध हो जाएँ। यह तो लोक का सात्विक गुण है। वह अपना रूप-रंग बदलता है, संदेश नहीं बदलता। इनका आधार लोक है, ग्रन्थ नहीं। प्रस्तुतिकरण मेरा हो सकता है। जो भी है, जैसा भी है, वह सहज है और इसी भाव से लोकार्पित है।

(1) अवन्तिका नरेश सिंह भट्ट सीयक की संतान नहीं थी। वे राज्य के उत्तराधिकारी की चिन्ता में दिन-रात व्याकुल रहते थे। वे सदा अपनी कुलदेवी से प्रार्थना करते थे कि वे उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी प्रदान करें। एक रात उन्हें स्वप्न में वनक्षेत्र में एक बालक रोता हुआ दिखा। सीयक ने इस सपने को माता का संदेश माना और जैसा वन उन्होंने स्वप्न में देखा था, उन चिह्नों का अनुसरण करते हुए वे वन में प्रवेश कर गये। उनके साथ उनका कवि-मित्र लक्ष्मण भी था। अचानक उन्हें किसी बालक के रोने की आवाज सुनाई दी। सीयक ने घोड़े की लगाम खींची। घोड़े से उतरकर सीयक पाँव-पैदल बालक के रोने की आवाज का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ने लगे। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें मूँज घास पर केले के पत्तों में लिपटा एक नवजात शिशु दिखलाई दिया। राजा सीयक ने उस बालक को उठाकर अपने पछेवड़े में लपेट लिया और उठाकर वापिस अपने घोड़े के पास लौट आया। कवि लक्ष्मण को साथ लेकर दोनों राजमहल पहुँचे। राजा ने वह बालक अपनी रानी की गोद में डालकर कहा- यह माता कुलदेवी का प्रसाद है, इसे तुम अपने आँचल में समेट लो। रानी ने जैसे ही बालक को सीने से लगाया, उसका मातृत्व जाग्रत हो उठा। ममता की तरंगें रग-रग में प्रवाहित हो उठीं। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और माँ भगवती की लीला ऐसी हुई कि उसके स्तनों में अमृतपय हिलोरें ले उठा। रानी ने बालक को पयपान करवाया। भगवती की लीला अपरम्पार है।

ज्योतिषियों ने बालक को कुलदेवी का प्रसाद बताकर उसके पराक्रमी और यशस्वी होने की घोषणा की। अवन्तिका पर माता की यह महती अनुकम्पा थी। 'मूँज घास' पर मिलने के कारण बालक का नाम 'मुंज' रखा गया। जब सावन आता है तो केवड़ा और मोगरा महक उठते हैं। मुंज सीयक के महल में सावन बनकर आया था। तीन वर्ष पश्चात् सीयक की रानी गर्भवती

हुई और उसे पुत्र की प्राप्ति हो गई। उसका नाम 'सिंघुल' रखा गया। रानी ने अपने पति राजा सीयक से कहा- सिंघुल मेरा दूसरा बेटा है। मुंज ज्येष्ठ है। इस कारण आप राजगद्दी का उत्तराधिकारी मुंज को ही बनाना। सीयक आश्वस्त हुआ। समय आने पर कुछ दरबारियों के विरोध के बावजूद भी सीयक ने मुंज को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। सीयक के दिवंगत होने के बाद मुंज अवन्तिका का राजा बना। मुंज ने राजा बनते ही सिंघुल को युवराज घोषित कर दिया। मुंज का यश केवल मालवा में ही नहीं, अपितु आसपास के राज्यों में फैल चुका था। वह परमप्रतापी, प्रजापालक और कविप्रिय विद्वान था। संयोग से सिंघुल की कोई संतान नहीं हुई। मुंज की रानी का देहान्त हो चुका था। उसकी भी संतान नहीं थी। फिर एक बार भावी संकट दिखाई देने लगा था। सिंघुल के बाद कौन? यह प्रश्न मुंज को बहुत व्याकुल करता था। उसने सिंघुल को युवराज घोषित किया था। वह उसके बाद अवन्तिका का राजा होगा, किन्तु सिंघुल के बाद का प्रश्न मार्ग अवरुद्ध करता था। उसने अपने पिता के चरण-चिह्नों पर चलकर अपनी कुलदेवी की आराधना की। कुलदेवी ने उसे सपने में 'परचा' दिया। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम सरस्वती की आराधना करो। वह प्रसन्न होंगी, तब तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। मुंज ने सरस्वती की आराधना की। सरस्वती प्रसन्न हुई। उसने राजा मुंज को स्वप्न दिया और कहा- 'मुंज मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम धन्य हो, जो अपने भाई पर पुत्रवत् स्नेह रखते हो। सिंघुल की रानी को पुत्र प्राप्त होगा। वह मेरा ओरस-पुत्र होगा। रानी के भाग्य में संतान नहीं है, किन्तु तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर मैं अंश रूप से उसके पुत्र रूप में तुम्हें तपस्या का वरदान देती हूँ।

(2) रेख में लागी मेख सिंघुल की रानी को पुत्र उत्पन्न हो गया। जब रानी का बेटा पैदा हुआ, वह मन्दिरों में आरती का समय था। प्रसव होते ही मन्दिरों में घड़ियाल बज उठे, शंख ध्वनि होने लगी। भगवान की अभ्यर्थना-आरती से पूरा नगर आनन्दविभोर हो उठा। सुन्दर-सा बेटा राजमहल में खुशियों का उपहार लेकर आया। मिठाइयाँ बँटने लगीं। उपहार-ईनाम बँटने लगे। ब्राह्मणों के मंगल-श्लोकों और चारणों-भाटों की विरुदावलियों से महल गूँज उठा। राजा मुंज बहुत प्रसन्न था। बालक का नाम 'भोज' रखा गया। कहावत प्रसिद्ध है- 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। भोज दस-बारह वर्ष का होते-होते संस्कृत एवं साहित्य में पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर चुका था। मुंज ने उसे बेटे की तरह पाला था। उसका आवास भी मुंज के महल में था। उसे समस्त विद्याओं का ज्ञान दिया जा रहा था। राजसभा में जब काव्य-चर्चा होती, तब बालक भोज भी उस गोष्ठी में उपस्थित रहता था और काव्य-चर्चा में भाग लेता था। कई बार तो वह विद्वानों को चमत्कृत कर देता था।

यह लोककथा सुनाते-सुनाते ठाकुर दलेलसिंह यादव अचानक चुप हो गये। मैंने अनुमान लगाया, सम्भवत: लोककथा पूरी हो गई है। तभी ठाकुर साहब बोले- सहगल जी! यह कथा यहाँ पूरी नहीं हुई। यह तो कथा का एक भाग है। दूसरा भाग अभी बाकी है। लोककथा के इस भाग में मुंज का स्नेह, धर्मपरायणता, वचनबद्धता और पिता का कर्त्तव्यभाव प्रकट होता है, किन्तु वही मुंज अपनी यशलिप्सा के वशीभूत होकर कितना क्रूर हो जाता है।

(3) एक बार राजसभा में काव्य-चर्चा हो रही थी। बालक भोज भी सभा में उपस्थित था। तभी वहाँ एक ज्योतिषी ने प्रवेश किया। सभा मण्डली को देखकर वह ज्योतिषी बहुत प्रभावित हुआ। उसने राजा मुंज सहित सभी विद्वत जनों का अभिवादन किया। तभी उसकी दृष्टि बालक भोज पर पड़ी। ज्योतिषी के मुख से सहसा निकल पड़ा- 'यह बालक तो बहुत मेधावी है। बड़ा होकर यह महाप्रतापी और यशस्वी होगा। इस पर तो सरस्वती की अपार कृपा है। ऐसा लगता है मानो इसमें माता पार्वती के पुत्र गणपति एवं कार्तिकेय का समन्वित स्वरूप एवं शक्तियाँ समा गई हों। यह बालक बहुत यशस्वी है।' ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर मुंज बहुत प्रसन्न हुआ। वह ज्योतिषी को महल में ले गया और भोज की जन्मकुण्डली मँगवाकर ज्योतिषी को दी। ज्योतिषी

ने कुण्डली देखकर कहा- महाराज! मैंने जो कहा है, वही सत्य है। बालक भोज अपने वंश के अब तक हुए समस्त यशस्वी और प्रतापी राजाओं से भी अधिक यश अर्जित करेगा। मुंज ने पूछा- क्या यह मुझसे भी अधिक तेजस्वी और यशस्वी होगा? ज्योतिषी ने कहा- निश्चित रूप से। लोग आपको तो भूल ही जाएँगे। इसकी तुलना तो महाराज विक्रमादित्य से होगी। ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर राजा मुंज के मन में ईर्ष्या भाव उत्पन्न हो गया। पिता-पुत्र वाला स्नेह भाव गल कर बह गया। एक राजा की यशलिप्सा नाग की तरह फन फैलाकर कुण्डली लगाकर बार-बार फुँफकारने लगी।

मुंज के मन आंटी पड़ी, गेहरो चुभ्यो शूल।
भ्रम उपज्यो विदवान के, करिगया भारी भूल॥

एक समझदार और विद्वान के मन में भी विकार आ गया। अविवेक से सब काम बिगड़ जाते हैं। यही भूल राजा मुंज से भी हो गई। जिसे उसने बेटे की तरह पाला था, उसे सब प्रकार से योग्य बनाने का सपना सँजायो था, वही मुंज पिता से राजा बन गया। मुंज ने ज्योतिषी को तो उपहार-पुरस्कार देकर विदा कर दिया, किन्तु मन में उठने वाली ईर्ष्या की आग को वह विदा नहीं कर सका। उसने अपने विश्वस्त मंत्री को बुलवाया और कहा- कल तुम्हें मेरा एक अतिविशिष्ट काम करना होगा। मंत्री ने कहा- महाराज! आज्ञा दें? सुनो वत्सराज! यह काम अतिगोपनीय और राज-महत्त्व का है। 'महाराज! आप मुझ पर विश्वास रखें। काम गोपनीयता से ही होगा।'

'वत्सराज! आप कल भोज को जंगल में शिकार पर ले जाएँगे और वहाँ उसका वध कर देंगे।' मुंज की आज्ञा सुनते ही मंत्री की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गई। उसके मुँह से निकला- 'महाराज...!' मुंज ने उसे बीच में ही टोक दिया- 'राजा से प्रश्न नहीं किया जाता, राजाज्ञा का पालन किया जाता है।' मंत्री वत्सराज सिर झुकाकर 'जो आज्ञा' कहकर वहाँ से चला गया। दूसरे दिन प्रातःकाल मंत्री वत्सराज भोज को लेकर वन में चल दिया। दिनभर घोड़ों को दौड़ाते रहे। शिकार कुछ हुआ नहीं। मंत्री जब भी भोज की हत्या करने की बात मन में लाता, भोज का भोला मुख देखकर उसका मन व्याकुल हो उठता। दिन ढलने लगा। वत्सराज ने अपना घोड़ा रोका। भोज ने भी अपना घोड़ा रोक दिया। मंत्री ने मन में अन्तिम निर्णय कर लिया था। वह घोड़े से उतरा। भोज भी घोड़े से उतरा। दोनों नीचे बैठ गये। वत्सराज ने कठोर मन करके भोज को राजा मुंज की मंशा बता दी। भोज तनिक मुस्कराया, फिर बोला- 'मंत्री जी! आप राजाज्ञा का पालन करो। यही आपका धर्म है। राजा ने आपको विश्वस्त समझकर यह काम सौंपा है। आप मेरा वध कर दो। वध के पश्चात् मेरा एक संदेश राजा मुंज तक पहुँचा देना।' भोज ने सामने खड़े वटवृक्ष का एक बड़ा-सा पत्ता तोड़ा और उस पर एक श्लोक लिखा- 'महाराजा मुंज को अपने पुत्रवत् भोज का अन्तिम प्रणाम। इस पृथ्वी पर मान्धाता हुए थे, वे भी बीत गये। राम भी नहीं रहे। युधिष्ठिर भी स्वर्गवासी हुए। कोई भी इस पृथ्वी को अपने साथ नहीं ले जा सकता। हो सकता है आप उसे अपने साथ ले जा पाएँ और आकाशमण्डल में एक नया लोक बसाकर वहाँ अनन्तकाल तक राज करें।'

वत्सराज ने उस पत्ते पर सींक से लिखा संदेश पढ़ा और बोला- 'कुँवर भोज! मैं हरगिज आपका वध नहीं करूँगा। इसके बदले मुझे जो भी दण्ड भोगना पड़ेगा, मैं भोगूँगा। वह दण्ड भी मैं जानता हूँ। एक सिर कटना है, वह मेरा कटे या आपका। रात उतरने लगी है। मेरा महल नगर के बाहर ही है। आप यह चादर ओढ़ लीजिए और मेरे घर रहिए। मैं निस्संतान हूँ। मेरा महल आपके प्रवेश के साथ संतानवान हो उठेगा। मैं आपका यह उपकार सदा याद रखूँगा।'

भोज मंत्री वत्सराज के घर पहुँच गया। मंत्री उसी अँधेरी रात में बकरे का सिर चादर में लपेटकर राजा मुंज के सामने उपस्थित हो गया। रक्त सनी चादर में लिपटा सिर देखकर मुंज पछाड़ खाकर गिर पड़ा। 'हा दुर्दैव! यह मैंने क्या कर दिया?' वत्सराज! तुमने भी मुझे ऐसा घोर पाप करने से नहीं रोका। मंत्री का काम होता है अपने राजा को उचित मंत्रणा देना। तुम चूक गये। वत्सराज! तुम अपने कर्त्तव्य से चूक गये।' वत्सराज ने कहा- 'महाराज! आपने तो मुझे एक शब्द भी नहीं बोलने दिया। लेकिन अब क्या हो सकता है।'

बिन सोच्यां कारज करे, फेर करे संताप।
छूट्यो बाण मुड़े नहीं, पलटे नहीं सराप॥

महाराज! अब व्याकुल होने से क्या लाभ? जो होना था वह तो हो चुका। अब विलाप करने से आपका यश कलंकित होगा। राज में विप्लव हो जाएगा। राज परिवार में बैर खड़ा हो जायेगा। उस लीलाधारी की कला और लीला कौन जान सकता है? वह जो भी करता है, उसका फल भी वही जानता है तथा प्रतिफल भी।

लीलाधारी की करा, कोई सके न जाण।
बेमतलब अरथो करे, करे अकल की हाण।

वह लीलाधारी है। उसकी लीला को समझ लेना व्यर्थ ही अपनी बुद्धि को व्यर्थ करना है। आप शान्त हो जाएँ और मेरे लिए आज्ञा दें। मुंज कुछ नहीं बोल पाया और पलंग पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा। मंत्री वत्सराज वापिस अपने महल में लौट आया। भोज को सारी स्थिति से अवगत करवाया। मुंज की दशा दिनोंदिन गिरती जा रही थी। वत्सराज प्रतिदिन उनसे मिलने आते। वे मन में दृढ़ बने रहे। एक दिन एकान्त पाकर वत्सराज ने विनम्र भाव से निवेदन किया- 'महाराज! उस दिन मैंने बिना प्रश्न किये आपकी आज्ञा का पालन किया था, आज आप बिना प्रश्न किये मेरा एक विनम्र निवेदन मान लीजिये।' मुंज ने कहा- 'बोलो, वत्सराज?' 'महाराज! बाहर पालकी तैयार है। आप मेरे घर तक पधारो और लीलाधारी की लीला देखो।' मुंज ने वत्सराज की बात मान ली। पालकी में बैठकर मुंज जब वत्सराज के घर पहुँचा, तब तक दिन ढल रहा था। वत्सराज ने महाराज को आसन पर बैठाया। समुचित आदर-सत्कार किया। तभी एक बालक ने आकर मुंज के चरण स्पर्श किये। वत्सराज ने कहा- महाराज! यह मेरा पुत्र है। आप इसे आशीर्वाद दें। मुंज ने उसे आशीर्वाद दिया- 'चिरायु भव, यशस्वी भव, तेजस्वी भव।' ऐसा आशीर्वाद देकर मुंज ने अपने गले से मोतीमाला निकालकर बालक को पहनाना चाही। तभी उसका मुख मुंज ने देखा तो हतप्रभ हो गये। उनके मुँह से अनायास निकला- 'भोज'? 'हाँ महाराज!' उत्तर वत्सराज ने दिया। मैंने राजाज्ञा का उल्लंघन किया है, मेरा सिर अवनत है। आप काट दें।

मुंज ने भोज को अपनी बाँहों में भर लिया। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। तभी वत्सराज ने कहा- 'महाराज! तभी तो मैंने उस दिन कहा था। उस लीलाधारी की लीला कोई नहीं जान सकता। आपकी कृपा से मैं संतानवान हुआ। आपका भोज तो उसी दिन मारा जा चुका था। यह तो मेरा भोज है। मैं इसे आपको सौंपता हूँ। इसकी रक्षा-सुरक्षा का उत्तरदायित्व महाराज का होगा।'

'वत्सराज! तुमने मेरा ही नहीं मालव देश का भी उपकार किया है। मैं इसे जो आशीर्वाद दे चुका हूँ, वे सत्य होंगे। वह मुझसे भी अधिक तेजस्वी और यशस्वी होगा। इसकी तुलना केवल महाराज विक्रमादित्य से ही हो सकेगी।'

यह कथा कहते-कहते ठाकुर दलेलसिंह यादव भावुक हो उठते हैं। भले ही महाराज मुंज की आँखों से अश्रुधारा का बहना रुक गया हो, किन्तु ठाकुर दलेलसिंह यादव की आँखों से नहीं रुक सकी। मैं नहीं कह सकता कि यह लम्बी लोककथा इतिहास में कितनी संगत है और कितनी असंगत, किन्तु मानवीय संवेदनाओं की दृष्टि से यह पूर्णत: संगत है।

राजा भोज को यदि हम किंवदन्ती पुरुष कहें, तो अधिक युक्तियुक्त होगा। अनेक किंवदन्तियाँ राजा भोज से जुड़ी लोक में व्याप्त हैं। इनमें से एक लोक प्रसिद्ध किंवदन्ती है-

(4) कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली? इस किंवदन्ती में एक नहीं कई दन्तकथाएँ और इतिहास-कथाएँ निहित हैं। गंगू तेली वस्तुत: 'गांगेय देव तेलंग'था, जो लोक में घिस-पिटकर 'गंगू तेली' बन गया।

तेलंगाना से मालवा नरेशों का बैर सर्वविदित है। महाराज मुंज से तेलंगाना नरेश तैलप चार बार पराजित हो चुका था। पाँचवीं बार रणनैतिक भूल के कारण महाराज मुंज की पराजय हो गई और उन्हें बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया गया। कुछ दिनों बाद उन्हें हाथी के पैरों से कुचलवा कर मरवा डाला गया। मुंज के बाद सिंधुल उज्जैन के नरेश हुए। उसने तेलंगाना पर आक्रमण करके उस समय के तेलंगाना राजा सत्याश्रय को परास्त

कर दिया। उसने अधीनता स्वीकार कर ली। मन में शूल चुभता रहा। मालवा नरेशों ने सदा की भाँति उन्हें बन्दी बनाकर मुक्त कर दिया। इसे राजनैतिक भूल भी कहा जा सकता है।

भोज के राजा होने पर तेलंगाना के गांगेय देव तेलंग (कलचुरी नरेश) ने राजा भोज पर आक्रमण कर दिया। राजा भोज ने उसे परास्त कर बन्दी बना लिया। उसने अधीनता स्वीकार कर ली। राजा भोज ने उसे शास्त्राज्ञा अनुसार चरण धुलवा कर मुक्त कर दिया। तब से यह किंवदन्ती चल पड़ी- 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगेय तेलंग?'

गांगेय तेलंग को पराजित करने की युद्ध यात्रा में राजा भोज ने उड़ीसा प्रदेश के इन्द्रस्थ को भी पराजित किया। उसे भी बाद में मुक्त कर दिया। इस विजय अभियान की प्रशस्ति का प्रशस्ति-गायक एक शिलालेख आज भी गर्व सहित सिर उठाये खड़ा है।

(5) लोक में एक किंवदन्ती खूब प्रसिद्ध है- 'अभी तो आखिरी अंक बाकी है'। इसको इस अर्थ में कहा जाता है कि, जल्दी मत करो अभी तो निर्णायक क्षण शेष है। इसके पीछे जो अन्तर्कथा निहित है, वह बहुत रोचक और उत्तेजक है। राजा भोज के पराक्रम एवं दृढ़ निश्चय को भी यह कथा बखानती है।

राजा भोज के विजय अभियान से तेलंगाना के राजा एवं वहाँ के लोगों में ईर्ष्या की आग धधक रही थी। वे अनेक बार पराजय के विष को पी चुके थे। राजधानी कल्याणी की एक नाट्यमण्डली ने तेलंगाने के राजा सत्याश्रय के सम्मुख 'ग्वालियर विजय' नामक नाटक प्रस्तुत किया। उस नाटक में राजा तैलप की विजय यात्राओं में उनकी ग्वालियर विजय को विशेष रूप से मंचित किया गया था। उसे देखकर सत्याश्रय ने कहा- 'नट' तुम्हारा नाटक अधूरा है।' तुम अगला अंक महाराजा तैलप की मालवा विजय पर लिखो और उसमें मुंज को बन्दी बनाकर पूरे नगर में घुमाने, पिंजरे में बन्द रखने और कारागर में सलाखों के पीछे रखने के दृश्य दिखाओ और अन्त में मुंज को हाथी के पैरों से कुचले जाने का दृश्य अवश्य दिखाना। जब यह नाटक तैयार हो जाए, तब उसे धार जाकर वहाँ के राजा भोज और जनता को दिखाना। तेलंगाना राज्य से तुम्हें ईनाम दिये जाएँगे।

नट ने अगला अंक तैयार किया और धार जाकर अपना नाट्य प्रदर्शन करने की अनुमति राजा भोज से माँगी। अनुमति मिलने पर उसने नाटक प्रदर्शन की व्यवस्था की। राजा भोज सहित सभी मंत्री, दरबारी, सेठ-साहूकार और प्रजा के लोग भी उपस्थित थे। नट ने ग्वालियर विजय का दृश्य दिखाकर परदा गिरा दिया और मंच पर आकर कहा कि अब आपके सामने नाटक का अन्तिम अंक दिखाया जायेगा। उसके बिना मेरा नाटक अधूरा है। नट ने मंच पर मुंज पराजय एवं पराभव का दृश्य बहुत कुशलता से दिखाया, पूरे दर्शकों में आक्रोश छा गया। राजा भोज ने सबको संयत किया और नट से कहा- 'नट तुम्हारा नाटक अभी भी अधूरा है।' यह अंक तुम्हारे नाटक का अन्तिम अंक नहीं है। 'अन्तिम अंक तो अभी बाकी है।' उसे मैं शीघ्र पूरा करूँगा। राजा भोज ने नाट्य मण्डली को सुरक्षित सीमा बाहर भिजवा दिया। नट को सुरक्षा में धार में ही रखा गया।

राजा भोज ने तत्काल विशाल सेना तैयार करवाई। तेलंगाना पर आक्रमण कर सत्याश्रय को पराजित किया। उसकी मुश्कें बाँधकर अपने घोड़े के पीछे बाँधकर धार नगरी की सड़कों पर घुमाया गया। भीड़ ने उस पर कीचड़, गोबर और सड़े फल फेंककर उसे खूब अपमानित किया। बाद में उसे पिंजरे में उल्टा टाँग दिया गया। अगले दिन तेलंग को पिंजरे से बाहर निकाल कर परम्परा के अनुसार राजा भोज के चरण पखारने के बाद मुँह में घास का तिनका लेकर क्षमा माँगने और अधीनता स्वीकार करने के बाद क्षमा कर दिया गया। उस नट को सारे दृश्य दिखाये गये। प्रजा का आक्रोश था। इसे हाथी के पैर से कुचलवाया जाए। राजा भोज ने हाथी मँगवाया। सत्याश्रय को हाथी के सामने डाल दिया। वह हाथी राजा भोज का प्रिय हाथी था। 'जैसा राजा वैसी प्रजा'

यह कहावत तो खूब सुनी थी, किन्तु 'जैसा सवार स्वामी वैसी सवारी' यह उस दिन देखने को मिला। हाथी ने तेलंग राजा को अपनी सूँड में लपेटकर उठाया और महाराज भोज के चरणों में डाल दिया। राजा भोज ने तेलंग से कहा- जिसे मैंने क्षमा दान दे दिया, उसे मेरा हाथी भी क्षमा दान देता है। यह मालवा की क्षमाशील धरती की गौरवशाली संस्कृति है। जाओ सत्याश्रय अपने राज्य में लौट जाओ। अरे नट! अब तुम यह नाटक-दृश्य लिखकर उसे तुम्हारे राजा तेलंग को दिखाना, वहाँ की प्रजा भी देखे, वरना तुम्हारी भी यही गति होगी। और सुनो, उस पहले वाले अंक में महाराजा मालव नरेश मुंज के पराभव के पहले एक दृश्य और जोड़ देना, जो छूट गया है। उसमें दिखाना कि, किस प्रकार तैलप की तपस्विनी और ब्रह्मचारिणी कुटिल बहन महाराज के भव्य स्वरूप एवं निर्भय छवि पर मोहित हो गई थी। किस प्रकार वह महाराज के सीने से लिपटकर उनसे प्रेमालाप करती थी। किस प्रकार वह मालवों द्वारा कारागार तक बनाई सुरंग द्वारा महाराज के साथ भागी थी और उनके अश्व पर पीछे सवार होकर मालवा की रानी बनने की लालसा और उमंग लेकर महाराज की पीठ से लिपट कर मालवा की सीमा तक पहुँच जाने की उतावली कर रही थी और किस प्रकार पराक्रमी महाराज मुंज ने अपनी तलवार से तेलंगाना की सेना को काटते हुए अपना मार्ग तय किया था। और नट तुम यह अवश्य दिखाना कि, उस कामुक तैलय राजकुमारी ने तेलंगों की परम्परानुसार किस प्रकार महाराजा की पीठ में कटार भोंककर घायल कर दिया था। वरना महाराज तो मालव सीमा के निकट आ पहुँचे थे। राजा तैलप ने एक स्त्री को शस्त्र बनाकर महाराज का वध किया। जाओ नट! तुम अपने इस दास महाराज के साथ सुरक्षित अपने देश लौट जाओ। मालव भूमि तुम्हें भी क्षमादान देती है। 'आखिरी अंक का पटाक्षेप हो गया है। तुम्हारा और तुम्हारे राजा का नाटक भी पूरा हो गया।'

राजा भोज ने कलचुरी नरेश गांगेय देव तेलंग और तेलंगाना के जयसिंह पर विजय की स्मृति में भोजशाला में एक लोहे की लाट गढ़वाई थी। जिस पर उपरोक्त विजय अभियान की प्रशस्ति लिखी गई थी। जो बाद में उखाड़ डाली गई। उस लाट को लोगों ने 'गांगी तेलन की लाट' कहना शुरू किया। कुछ लोगों ने उसे गांगी तेलन की ताकड़ी (तराजू) की डण्डी कहना शुरू किया। कहावत ने जन्म लिया।

(6) भोज की लाट - गांगी तेलन की ताकड़ी अर बाट इस कहावत की अन्तर्कथा यूँ बनी 'एक थी गांगी तेलन। वह प्रतिदिन तेल बेचने धारा नगरी में निकलती थी। वह इतनी विशाल काय थी, सिर पर छः मन तेल का तेवड़ा (एक दूसरे पर रखे तीन मटके) दोनों कन्धों पर दो मशकें, एक हाथ में तराजू दूसरे हाथ में बटकड़ों (बाटों) की बाल्टी लेकर चलती थी। पूरे नगर में उसका बेचा तेल खाया जाता था। वह एक बार में दो सौ रोटियाँ खाती थीं और दो मटके पानी पीती थी। वह जब अपना लहँगा झटकती थी तो चार टोकरी धूल का ढेर बन जाता। धीरे-धीरे वही ढेर एक ऊँची टेकरी बन गया। ऐसी थी वह गांगी तेलन। उसकी तराजू टूट गई। पलड़े लोग उठा ले गये और डण्डी यहाँ भोज शाला में पड़ी है। आसपास जो गोल पत्थर हैं, ये सब तराजू के बटकड़े हैं। ऐसी थी वह गांगी तेलन और उसकी तराजू'।

लोक में अनेक जनश्रुतियाँ, किंवदन्तियाँ, लोककथाएँ और कहावतें कण्ठानुकण्ठ चर्चित बनी हुई हैं, जो आस्था और विश्वास के इस दिव्यपुरुष की यशोगाथा बखानते थकते नहीं।

उनका जीवन सरस्वती माता को समर्पित था। वे उनकी वरदात्री माता थीं। उनकी आराध्य देवी थीं। राजा भोज के इसी सन्दर्भ में एक समस्या-पूर्ति बहुत प्रसिद्ध है। इसे पारसी (पहेली) भी कहा जाता है।

(7) कारका हरसी क्युँ, सरसवताँ रोई क्युँ धार में दोनों माताओं की एक जैसी सत्ता। एक जैसा महत्त्व एवं वर्चस्व। फिर कालका को हर्षित होने और सरस्वती को रोने का कौन-सा कारण बना? यह पारसी कहकर वयोवृद्ध नारायण जी सेन अपनी सफेद लम्बी डाढ़ी में मन्द-मन्द मुस्कराने लगते हैं। मैं हार मान

लेता हूँ। 'जो बोले सोई हाँकर खोले' नियमानुसार हार का दण्ड एक धप्प पीठ पर। श्री नारायण सेन पारसी का अर्थ खोलने से पहले एक काव्य-पद सुनाते हैं।

कारका मात अर सरसत माता।
धारापुरी की भाग्य वधाता।
राजा भोजो धार को राजो।
परजा पारक सदमत वाजो।
दोई मात की सेवा सेवे।
दोई की करपा में रेवे।
कारका जी के बलि चढ़ावे।
दसेवरा पे धार लगावे।
सरसत माता घणी अकलावे।
राजा भोज ने यूं हमजावे।
क्युँ तू नत दन बलि चढ़ावे?
जीव मार क्युँ पाप कमावे?
अरे भोज तू हे विदवान।
फेर क्युँ होयो रे नादान।
अरे भोज तू कहणो मान।
बेजुबाना का मत ले प्रान।
कारका माता परचो दीयो।
राजा भोज नतमस्तक वीयो।
दसेवरा पे बलि चढ़ाजे।
दारू लाजे, धार लगाजे।
नीतर म्हारो होवे कोप।
धारा कर देऊं अंधड़ घोप।
राजा भोज घणो घबरायो।
अरवाणे पग मंदर आयो।
दसेवरा पे बलि चढ़ाई।
दारू लायो धार लगाई।
मात सारदा जीत नी पाई।
कारका माता यूं हरसाई।
सरसवतां की वै गी हार।
सरसत रोवे जारोजार।

राजा भोज कालका माता और सरस्वती माता दोनों का आराधक था। कालका माता से पराक्रम और सरस्वती माता से ज्ञान मिलता था। भोज कालका माता को बलि चढ़ाता था। धार लगाता था। सरस्वती माता के चरणों में कमल चढ़ाता था। भोज ने अनेक तालाबों का निर्माण करवाया। सबमें कमल लगवाये। उसने भोजपाल नगर बसाया, तब वहाँ भी विशाल तालाब बनवाया। उसके बलि प्रेम को देखकर एक दिन उसे सरस्वती माता ने परचा (स्वप्न में दर्शन) दिया- 'अरे भोज! तुम इतने समझदार और विद्वान हो। धार्मिक हो, फिर जीव हत्या क्यों करते हो? मेरी बात मानकर यह पाप कर्म बन्द कर दो। यह बात कालका माता को बुरी लगी। कालका ने इसे अपना अपमान समझा और सरस्वती को पराजित करना तय किया। कालका ने भोज को परचा दिया कि तुम दशहरे पर मुझे बलि भेंट करो और धार लगाओ, वरना मैं सारी धारा नगरी को तहस-नहस कर दूँगी। भोज धर्म संकट में। कालका की शक्ति से तो वह परिचित था। विवश होकर उसने बलि भी चढ़ाई और धार भी लगाई। इससे कालका माता हर्षित हुई। सरस्वती की हार हो गई, इस कारण सरस्वती माता जारो-जार रो उठी।'

राजा भोज और गंगू तेली वाली किंवदन्ती तो थमने का नाम ही नहीं ले रही।

(8) 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली' इस दन्तकथा का नायक सचमुच तेली है। इसका असली नाम गंगाराम तेली था। खूब सम्पन्न था। खूब खेती थी। खूब अनाज पैदा होता था। धार नगरी में तीन साल का अकाल पड़ा। अनाज और पानी की किल्लत हो गई। राजा के गोदाम से भी अनाज मिलना कम हो गया। राजा भोज ने अनाज के बदले श्रम करवाकर तालाब खुदवाये। पुराने तालाब गहरे करवाये। अनाज के भण्डारों में कमी आ गई। तब गंगा तेली ने अपने गोदाम कोठों से भरा अनाज प्रजा में बाँटना शुरू किया। राजा को जब गंगा का यह त्याग मालूम पड़ा, तब वह पाँव पैदल गंगा तेली के घर गया और उसकी प्रशंसा करते हुए उसका आभार माना। राजा ने कहा- गंगा तुम महान हो। तुमने मेरी लाज बचाई है। तब गंगा तेली बोला- 'महाराज! मेरे कोठों में

जो अनाज था, वह भी राज का ही था। आपके राज्य में सुख शान्ति नहीं होती, तो अनाज न तो पैदा होता और न संग्रह। आप मेरा उपकार मानकर मुझे लज्जित मत कीजिए।' 'कहाँ आप हमारे राजा, कहाँ मैं? कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली?'

एक किंवदन्ती इसी सन्दर्भ में कही जाती है। कई दिनों तक यह किंवदन्ती मेरे मन-मस्तिष्क में गूँजती रही। इसके पीछे छुपी अन्तर्कथा मैं समझ नहीं पा रहा था। गंगू तेली की काल से सम्बद्ध किंवदन्ती समझने के बाद यह किंवदन्ती भी मेरी समझ में आ गई। भानपुरा के लोक साहित्यकार श्री देवीसिंह परमार से उस सन्दर्भ में खूब चर्चा हुई, अर्थ खुल गया। सन्दर्भ जुड़ गया। किंवदन्ती है-

(9) 'भोज को सिर कटे, धार को कार हटे' धार के तीन साल के अकाल के चलते राजभण्डार और साहूकारों के भण्डार तक खाली हो गये। राज्य के शत्रुओं ने सिर उठाना शुरू कर दिया। राजा भोज की व्याकुलता बहुत बढ़ गई। वे जानते थे कि यह सारी विपदा कालका माता और सरस्वती माता की आपसी अहमन्यता के कारण आई है। कालका माता की मानूँ तो सरस्वती माता कुपित। सरस्वती माता की मानूँ तो कालका माता कुपित। 'देव-देव लड़ें, भक्तों को संताप'। भोज ने सोचा जो होना होगा, होकर रहेगा। मैं माता सरस्वती को रुष्ट नहीं कर सकता। भोज सरस्वती के मन्दिर में गये और उनके चरणों में गिरकर आर्तभाव से प्रार्थना की- 'हे माता! आप चाहें तो मेरे प्राण ले लें, किन्तु मुझ पर से अपना वरदहस्त नहीं उठाएँ। मेरा तो अस्तित्व ही आपके कारण है। आप तुष्ट हों।' सरस्वती ने भोज को परचा देकर कहा- 'भोज! तू यह जीव हत्या बन्द कर। सारा अकाल सुकाल में बदल जाएगा। बलि ही देना है, तो खुद की क्यों नहीं देता। कालिका के लिए जैसे अन्य पशु वैसे ही तू। सभी उसके बेटे हैं। तुझमें साहस है, जा और कालिका के चरणों में अपना सिर काटकर चढ़ा दे।' ऐसा कहकर सरस्वती अन्तर्ध्यान हो गई। राजा भोज कुछ समय तक तो अनिर्णय की स्थिति में वहीं माता के समक्ष बैठा रहा। बाद में अपने महल में लौट गया। भोज के जाने के बाद सरस्वती माता ने विचार किया 'देवी-देवता लड़ें या मरें, परजा क्युँ भूखी मरे?' माता ने एक वृद्धा का रूप धारण किया और धार नगरी के मोहल्ले-मोहल्ले जाकर एक-एक मुट्ठी ज्वार वहाँ की बूढ़ी अम्माओं को देकर कहा- एक-एक दाना अनाज की कोठी में डाल दो, सुबह खोलना। कोठी भर जाएगी। सूरज उगने के बाद कोठी का ढक्कन हटाना पहले नहीं। माता ने अपनी लीला से सारे राज्य में दाने बँटवा दिए।

राजा भोज को रात भर नींद नहीं आई। चौथा आषाढ़ भी अघलाने वाला है। बादलों का कहीं पता नहीं है। सरस्वती माता का कोप मैं नहीं सह सकता। उनके कुपित होने से मेरा विवेक, मेरा चिन्तन, मेरी भाषा, मेरे भाव सब कुण्ठित हो गए हैं। कविजन और पंडित तक मुझसे रुष्ट होते जा रहे हैं। ऐसी दशा में मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं अपनी प्रजा को भूख से मरता हुआ नहीं देख सकता। भोज ने निर्णय कर लिया। वह तत्काल कालका माता के मन्दिर पहुँचा। माता से अत्यन्त आर्तभाव से प्रार्थना की- 'माता! आप क्षमा करें। आप मेरी शक्ति हैं। मेरा पराक्रम और मेरी विजय आपका ही प्रताप है। किन्तु मैं अपनी प्रजा को भूख से मरते हुए देखकर जीवित नहीं रहना चाहता। मेरा सर्वस्व तो प्रजा के लिए है। आपको बलि से तुष्टि होती है, तो आप आज मेरी बलि ले लें।' भोज का सिर कटे तो कटे, किन्तु भोज के राज्य की यह विपदा हट जाए। ऐसा कहकर भोज ने माता के सामने रखा खड्ग उठाया और अपनी गर्दन पर वार कर दिया। तभी माता सरस्वती ने हाथ थाम लिया। कालका माता भी प्रकट हो गईं। कालका ने कहा- 'भोज! तुम धन्य हो। अपनी प्रजा के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले तुम मेरे प्रिय पुत्र हो। तुम्हें बलि का बोध विलम्ब से आया। जब तक सरस्वती प्रसन्न नहीं होती, बोध कैसे आ सकता है। आज से मेरे सामने बलि नहीं होगी। आज से अकाल समाप्त हुआ। तभी बादल गरज उठे। बिजलियाँ चमकने लगीं। मन्दिर के भीतर और बाहर खड़ी हतप्रभ भीड़ को चेत हुआ। राजा भोज की जय-जयकार होने लगी। राजा भोज का सिर नहीं कटा। अकाल हट गया। राजा भोज ने कहा- खूब आनन्द मनाओ। दोनों माताओं की जय-जयकार करो। मेरा एक आदेश था- धार में कोई निरक्षर नहीं रहेगा। अब दूसरा आदेश है हर घर में प्रतिवर्ष इन्द्रदेवता की आषाढ़ महीने की बीज में पूजा की

जाये। इन्द्रदेवता के दूत हरियाली से प्रसन्न होते हैं। मालवा के पूरे राज्य को हरियाला देश बनाया जाए। जिनके पास धन हो वे तालाब बावड़ियाँ बनवाएँ। प्रत्येक बसन्तपंचमी को सरस्वती पूजा का उत्सव तथा प्रत्येक दशहरे पर माता कालका की सात्विक पूजा की जाए। आज से धार में बलि प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। धार में आनन्दोत्सव का युग शुरू हो गया।

राजा भोज तो किंवदन्तियों के नायक हैं। एक अद्‌भुत किंवदन्ती प्रसिद्ध है–

(10) 'राजा भोज मूरखड़ो' आप ही सोचें राज भोज जैसा विद्वान मूर्ख कैसे हो सकता है? भोज केवल किंवदन्ती नायक ही नहीं। वे बोधकथाओं के भी सिरमौर हैं।' एक बार राजा भोज अपनी रानी के साथ तीर्थयात्रा पर गये। हरिद्वार में गंगा नदी के तट पर छावनी पड़ी। राजा भोज और उनकी रानी लीलावती ने गंगास्नान किया। तभी रानी को गंगा के तट पर एक झाड़ी के बीच में एक सुन्दर वन–पुष्पगुच्छ दिखा। रानी ने राजा से कहा– मुझे वह पुष्पगुच्छ तोड़ दो। बहुत सुन्दर हैं। उसे मैं अपनी वेणी में सजाऊँगी। राजा भोज ने खूब प्रयत्न किया, किन्तु वे झाड़ी में से वह पुष्पगुच्छ नहीं तोड़ पाये। थोड़ी–सी भी असावधानी से वे गंगा में फिसलकर गिर सकते थे। रानी रूठ गई। भोज करे तो क्या करे?

तभी वहाँ एक बकरा और बकरी भी पहुँचे। दोनों हरी–हरी दूब चरते–चरते वहाँ जा पहुँचे, जहाँ भोज और उनकी रूठी रानी बैठे थे। भोज बार–बार प्रयत्न कर रहे थे। उसी झाड़ी में एक हरी और कोमल घास का बूटा लगा था। उसे देखकर बकरी का मन ललचा गया। उसने अपने बकरे से कहा– तुम मुझे वह घास का बूटा ला दो। बकरे ने देखा तो कहा– वह बूटा झाड़ी के नीचे लगा है। यदि मैं उसे तोड़ने जाऊँगा तो फिसलकर नदी में गिर जाऊँगा और बह जाऊँगा। बकरी रूठ गई। तुम मुझसे प्यार करते हो, तो वह बूटा लाकर दो, वरना मैं तुमसे जोड़ी नहीं बनाऊँगी। तुम्हारी मेरी जोड़ी खत्म। बकरे ने कहा– बकरी सुन ले। अगर मैं नदी में बह गया, तब तो तुम्हारी मेरी जोड़ी वैसे भी खत्म हो जाएगी।' मैं राजा भोज जैसा मूर्ख नहीं हूँ, जो स्त्री के मोह में पड़कर अपने प्राण गँवा दूँ। जब तुम्हें मेरी जान की परवाह नहीं है, तो मैं भी तुम्हारे रूठने की परवाह क्यों करूँ?' राजा भोज पशु–पक्षियों की बोली समझते थे। बकरे की बात सुनकर उन्हें बोध हो गया। उन्होंने फूल तोड़ने का प्रयास छोड़ दिया और अपनी रूठी रानी को लेकर वहाँ से अपनी छावनी में चले गये।

किंवदन्तियों के चलते एक लोककथा भी सुनते चलें। लोककथा का अपना आनन्द होता है।

(11) राजा भोज कई बार वेश बदलकर रात में नगर भ्रमण करते थे। एक बार आधी रात के समय उन्हें पाँच व्यक्ति आते हुए दिखे। भोज को देखकर वे ठिठककर खड़े हो गये। उनके ठिठकने के भाव को देखकर राजा समझ गया कि, ये सामान्य नागरिक नहीं हैं। भोज ने भी वैसा ही व्यवहार किया। भोज डरता–डरता उनके पास गया और पूछा– 'भाई तुम कौन हो? और आधी रात में नगर में क्यों घूम रहे हो?' उन पाँचों ने प्रतिप्रश्न किया कि– 'तुम भी तो आधीरात में घूम रहे हो। पहले तुम बताओ तुम कौन हो?' राजा भोज ने कहा– 'जो तुम सोई मैं'। पाँचों बोले– 'हम तो चोर हैं।' भोज ने कहा– 'मैं भी चोर हूँ'। आज तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो। मिलकर चोरी करेंगे। एक चोर बोला– सब अपना–अपना गुण बताओ। पहला चोर बोला– मैं बीस हाथ ऊँची, खड़ी दीवार पर दौड़कर चढ़ सकता हूँ और छत पर या मकान में प्रवेश कर सकता हूँ। दूसरा चोर बोला– मैं घोड़ों का पारखी हूँ और सईसपने में माहिर हूँ। कैसा भी ताला हो, मैं उसे भी खोल सकता हूँ। तीसरा चोर बोला– मैं कुशल गुप्तचर हूँ। वेश बदलने में मेरा मुकाबला कोई नहीं कर सकता। चौथा चोर बोला– मैं हथियार बनाने में माहिर हूँ। मेरी बनाई हुई तलवार लोहे की साँट को भी काट सकती है। हथकड़ियाँ काट देना, मेरे बाएँ हाथ का काम है। ताला तो मैं चुटकियों में खोल सकता हूँ। महलों और किलों के फाटक खोलने में मेरा कोई मुकाबला नहीं

है। पाँचवाँ चोर बोला- मैं पशु-पक्षियों की बोली बोलने व समझने में माहिर हूँ। अब भोज की बारी थी। भोज ने कहा- जो कलाएँ तुम पाँचों को आती हैं, मैं उन सब मैं तो माहिर हूँ ही। इसके अलावा धन कहाँ छुपा है। धरती में या तिजोरी में अथवा दीवार में। मैं बता सकता हूँ। इससे भी बड़ी कला यह कि, अगर हम पकड़े गये तब मैं छूटने और छुड़ाने की कला भी जानता हूँ।

ऐसा गुणी साथी पाकर सब खुश हो गये। अब विचार यह हुआ कि, आज चोरी कहाँ की जाए? सबने कहा- आज तो राजा भोज के महल में चोरी की जाए। सब सहमत हो गए। महल के पिछवाड़े पहुँचकर एक चोर दौड़कर खड़ी दीवार चढ़ गया और महल के खास दरवाजे पर पहुँच गया। उसने वहाँ से रस्सी नीचे लटका दी। शेष पाँचों ऊपर चढ़ गये। राजा भोज ने खजाने की तिजोरी दिखा दी। एक चोर ने उसका ताला खोल दिया। चोरों ने धन की पोटलियाँ बाँधना शुरू कीं। मौका पाकर भोज वहाँ से खिसक गये और सैनिक भेजकर माल-मुद्दे चोरों को पकड़वा दिया।

सबेरे दरबार लगा। चोरों की मुश्कें बाँधकर दरबार में हाजिर किया गया। चोरों ने जब सिंहासन पर बैठे राजा को देखा, तो अचम्भे में पड़ गये- अरे! यह तो रात वाला चोर है। सबके मुँह से एक साथ निकला। राजा भोज ने मुस्कराकर पूछा, अचम्भे में मत पड़ो। मैं वही हूँ। चोरों ने कहा- तुमने हमें धोखा दिया है। भोज ने कहा- मैंने अपना कर्त्तव्य निर्वाह किया है। मैं राजा हूँ। राज्य की रक्षा-सुरक्षा मेरा कर्त्तव्य है। तुमने चोरी की है। इसकी सजा तो आजन्म कारावास है। चोरों ने कहा- आपने हमारे साथी के रूप में रहकर चोरी में भागीदारी की है। इसलिए आप भी चोर ही हुए। जो सजा हमारी वही आपकी। आप हमारे राजा हैं। आपका सम्मान करना और रक्षा करना हमारा भी कर्त्तव्य है। हमारा एक ही कहना है- आपने चोर के रूप में अपना गुण बताया था कि आप पकड़े जाने पर छुड़वा सकते हैं। उस वचन का पालन करना भी आपका कर्त्तव्य है। आप वचन-पालक कहे जाते हैं। इस कारण अपने वचन का पालन करते हुए हमें छुड़वाइए।

राजा भोज ने जोरदार ठहाका लगाते हुए कहा- यदि तुम पाँचों हमें यह वचन दो कि आज के बाद चोरी नहीं करोगे और अच्छे नागरिक की तरह श्रम करके अपना जीवन चलाओगे तो हम तुम्हें छुड़वा देंगे। चोरों ने वचन दिया। राजा भोज ने कहा- तुम पाँचों बहुत गुणी हो। राज्य को तुम्हारी सेवाओं की आवश्यकता है। हम तुम्हें अपनी सेवा में लेते हैं। तुम हमारी सेना की गुप्तचर टुकड़ी में शामिल किये जाते हो। इससे तुम्हें जीवनयापन करने हेतु वेतन मिलेगा, जिससे चोरी करना भी छूट जायेगा। चोरों ने राजा भोज की जय-जयकार की और राजसेवा में लग गये।

एक और किंवदन्ती याद आ रही है-

(12) 'खीर बँटे तो संत हटे' इस उक्ति को लोक में इस अर्थ में उपयोग किया जाता है कि अभीष्ट की सिद्धि हो जाए, तब वहाँ से जाएँ। 'बात यूँ बनी कि जब से राजा भोज ने धार को उत्सवों का नगर घोषित किया, तब वे स्वयं भी प्रजा के साथ जुड़कर उत्सव मनाने की उत्सुकता दिखाने लगे थे। शरद पूर्णिमा पर राजा की ओर से 'अमृत खीर' बाँटने का आयोजन रखा गया। प्रातः से ही खीर बँटना थी। रात की चाँदनी से जो अमृत वर्षा हुई, वह खीर में समा चुकी थी। इसी बीच भेदिये ने राजा को सूचना दी कि, शत्रु के किसी व्यक्ति ने खीर के एक भगोने में विष मिला दिया है। यह जान पाना कठिन है कि कौन से भगोने में विष मिलाया गया है? खीर के सौ भगोने थे। सवेरा होने वाला है। सरस्वती माता की शाला में खीर बँटना थी। राजा भोज चिन्ता में पड़ गये। अब क्या करें? सारी खीर फेंक भी दी जाए, तब भी इतनी जल्दी इतनी खीर दोबारा नहीं बन सकेगी। राजा भोज ने सरस्वती माता से प्रार्थना की- 'हे माता! कोई उपाय करो।' माता ने परचा दिया। 'पूजा पात्र में से विषहारिणी तुलसी दलों को ले जाओ। एक-एक पत्ता भगोने में डालते जाना। जिस भगोने में विष मिली खीर होगी, उसमें डालते ही तुलसीदल काला हो जाएगा। जिसमें विष नहीं होगा, तुलसीदल यथावत रहेगा। इस प्रकार विष की पहचान हो जाएगी।' संयोग ऐसा बना कि, तुलसी दलों की संख्या सौ में एक कम निकली। इससे भी बड़ा संयोग यह बना कि निन्यानवे भगोने विषमुक्त निकले। सौवाँ भगोना वहाँ से हटा दिया गया। खीर बँटने लगी। सारे भगोने खाली हो गये। दिन भी

ढलने को आया। संतों की एक टोली अचानक आ गई। आखिरी भगोना शंकास्पद था। उसमें विष की पूरी सम्भावना थी। राजा भोज ने कहा- अब क्या हो? संतों को खाली भी कैसे भेजें? 'खीर बंटे तो संत हटे।' भोज ने अपनी इष्टदेवी को प्रणाम किया और उन्हें तुलसीदल चढ़ाकर एक पात्र में लेकर भगोने के पास गये। खीर में पाँच तुलसीदल डाले। पाँचों काले पड़ गये। उन्हें निकालकर फिर पाँच दल डाले। वे भी काले पड़ गये। इस प्रकार बार-बार डालने पर सातवीं बार तुलसीदल काले नहीं पड़े। हरे ही रहे। एक बार और तुलसीदल डाले गये, वे भी हरे ही बने रहे। भोज ने माता सरस्वती और माता तुलसां को प्रणाम किया। भोज ने एक तुलसीदल मुँह में रखा और भण्डारी से कहा- भगोने में से पहला दोना मुझे भरकर दे दो। मैं खा लूँ, उसके बाद संतों को बाँटना। राजा भोज ने दोना भर नहीं, दो दोने खीर खाई। वे आश्वस्त हुए और फिर स्वयं के हाथों से संतों को खीर बाँटी। खीर बँटने के बाद संत हट गये। उनका अभीष्ट पूरा हो गया था।

अब तक बात नैतिकता की थी। एक बात शृंगार की भी हो जाए, तो थोड़ा-सा आनन्द आ जाए। याद फिर नारायण सेन की करना होगी। उन्हें पारसियाँ खूब याद थीं। एक पारसी यह भी-

(13) 'दीपक बुझा क्यों, पलंग टूटा क्यों?' पारसी कहकर वे एक मोहक मुस्कान बिखेरकर अपना उस्तरा चमड़े के पट्टे पर 'चट्ट-पट्ट - चट्ट-पट्ट' चलाने लगते थे। मेरी तो समझ में कुछ नहीं आया। कहीं तालमेल ही नहीं बैठ रहा था। दीपक का बुझना और कड़ी का टूटना। काश! मैं अपनी युवावस्था याद कर पाता। पिचहत्तर की उम्र छूने वाले को यह पारसी कैसे समझ में आती? हार मानकर नियमानुसार धप्प खाना पड़ी। नारायण जी ने यह पद सुनाकर पारसी (पहेली) का अर्थ खोला।

राजा भोज जद वियो मतंग।
लिपट्यो कलावती के अंग।
कलावती ने लज्जा आई।
हाथ ढाँप पाती ओलाई।
परंक बोल्यो झम्मक-झम्म।
कड़ी कड़क गी कड़-कड़ धम्म।

बात समझ में आ गई। पारसी का अर्थ खुल गया। हार का मलाल भी धुल गया।

(14) नारायण जी बोले, अच्छा यह बता- 'भोज का दरबार, चमड़े का व्यापार' बात फिर उलझ गई।

मैंने कहा- नारायण जी! एक धप्प और जमा लो और इस पारसी का अर्थ भी खोल दो। अरे पूरन! तेरा नाम तो है पूरन और तू है अधूरन। सुन-

एक बार एक बहुत बड़ा विद्वान अपने आश्रम से चला। उसने राजा भोज की खूब ख्याति सुन रखी थी। उसने सुना था- राजा भोज के दरबार में सभी विद्याओं के पंडित और कई कवि विराजते हैं। स्वयं राजा भी परम-विद्वान है और विद्वानों का खूब आदर करता है। वह विद्वान भी अनेक विद्याओं का ज्ञाता था। उसने सोचा क्यों न राजा भोज के दरबार में चलें और विद्वानों से चर्चा करके आनन्द प्राप्त करें। वह परम विद्वान तो था परम विकलांग भी था। लोग उसे अष्टवक्राचार्य कहते थे। वह दरबार के बाहर पहुँचा। प्रतिहारी द्वारा राजा के पास दरबार में आने की अनुमति माँगी। राजा ने कहा- सादर लिवा लाओ। विकलांग विद्वान घिसटता हुआ दरबार में आ गया। उसे इस प्रकार घिसटता हुआ देखकर दरबार में उपस्थित विद्वान व अन्य दरबारी ठहाके लगा-लगाकर हँसने लगे। राजा भोज उन्हें संयत करते उससे पहले वह विद्वान बोला- 'महाराज भोज! मैंने सुना था, आपके दरबार में विद्वान विराजते हैं। यहाँ आकर देखा कि आपके दरबार में तो चमड़े के व्यापारी बैठते हैं।' ऐसा कहकर वह वापिस लौटने को हुआ। तब तक राजा भोज सिंहासन से उतरकर उस विद्वान तक पहुँच गये थे और चरण स्पर्श कर निवेदन किया- हे सरस्वती पुत्र! आप मुझ पर कृपा करें। अपने दरबारियों की ओर से मैं क्षमा चाहता हूँ। आप आसन ग्रहण करें और मुझे कृतार्थ

करें। विद्वान ने कहा– महाराज! मैं एक ही शर्त पर आपके दरबार में रुक सकूँगा कि आपके दरबार के विद्वान मेरे साथ शास्त्रार्थ करने को सहमत हो जाएँ। दरबारियों ने विद्वान से अपनी अभद्रता के लिए क्षमा माँगी और शास्त्रार्थ करने के लिए सहमत हो गये। शास्त्रार्थ हुआ। एक-एक कर सभी विद्वान परास्त हो गये। इसके बाद वह विद्वान राजा भोज के दरबार से बाहर जाने के लिए पलट गया। भोज ने उन्हें रोकना चाहा, तब वह बोला– राजन! जिस दिन मुझे अपना चमड़ा बेचना होगा। उस दिन मैं आपके दरबार में आ जाऊँगा। विद्वान घिसटता हुआ दरबार से बाहर की ओर बढ़ने लगा। राजा भोज को लगा, मानो उसका यश ही घिसटता हुआ दरबार से बाहर जा रहा है। दरबारियों और विद्वानों के मुख बुझे हुए दीपक की तरह धुआँ दे रहे थे।

एक किंवदन्ती हाड़ोती में कही-सुनी जाती है। बड़ी विचित्र भी है। इसे मैंने सुश्री सन्तोष राजावत से सुनी थी। उसका अर्थ खोजना कठिन था। किंवद

(15) 'राजा भोज मरि गयो, गम गयो कालिदास' राजा भोज और कालिदास का समय भी मिलान नहीं हो रहा था। राजा भोज क्यों मरा और कालिदास क्यों खो गया? बहुत समय तक यह पहेली जैसी किंवदन्ती मेरे मन-मस्तिष्क में घुम्मेर घेर होती रही। कार्य-कारण सम्बन्ध भी स्थापित नहीं हो पा रहा था। उस अंचल में इस किंवदन्ती का प्रयोग इस आशय में होता है। मानो किसी एक अघट के कारण दूसरा अघट हो गया हो। जैसे पुत्र के मरने या गुम जाने पर पिता सदमा खाकर विक्षिप्त हो जाए या मर जाए।

ठाकुर दलेलसिंह जी ने इसके कार्य-कारण को स्पष्ट करते हुए इसमें निहित अन्तर्कथा को स्पष्ट किया-

राजा भोज की राजसभा में एक महाकवि था। नाम था पद्मगुप्त। वह राजा भोज का मित्र भी था। दोनों में खूब काव्य-चर्चा होती थी। राजा भोज ने उसे कालिदास की पदवी से सम्मानित किया था। इसलिए उसे इसी नाम से ही जाना जाता था। किसी बात को लेकर दोनों में मनमुटाव हो गया। कालिदास (पद्मगुप्त) रूठकर चला गया। कई दिनों तक दरबार में नहीं आया। भोज को चिन्ता हुई। खूब तलाश करने पर भी उन्हें कालिदास का पता नहीं चल पाया। अपने मित्र के विछोह से भोज व्याकुल हो उठे। उनके मन में कई प्रकार के बुरे-बुरे विचार आने लगे। कहीं वह राज्य छोड़कर तो नहीं चला गया अथवा उसने आत्मघात तो नहीं कर लिया? वह बहुत भावुक है। कुछ भी कर सकता है? यदि उसके साथ कोई अघट हो गया होगा तो मैं स्वयं को कभी भी क्षमा नहीं कर पाऊँगा।

अन्ततः वह स्वयं पद्मगुप्त कालिदास को खोजने निकल पड़ा। भोज ने साधु का वेश बनाया और भिक्षाटन के बहाने अपने मित्र को ढूँढने घर-घर घूमने लगा। संध्या होने आई, तब नगर के बाहर एक मन्दिर में भोज ने मुकाम लगाया। वहाँ एक त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण भी बैठा था। भोज ने उसे देखा तो उसे पद्मगुप्त कालिदास की याद हो आई। वह ब्राह्मण बिल्कुल पद्मगुप्त जैसा ही लग रहा था। वहाँ मुकामी हो जाने के बाद उस ब्राह्मण ने पूछा-

कठे वास, गुरु कूण हे, कूण पिता कुण मात?
किण कारण आणो वियो, किण नगरी हो जात??
धारा नगरी का कवो, कई हे हाल हवाल?
भोज राज जीसो दिखे, उणियारो अर भाल॥

'अरे! साधु आप कहाँ से आए हैं। आपका निवास और गुरु कौन है? माता-पिता कौन हैं? इस ओर नगर में आना किस कारण हुआ? अब आप कहाँ जाएँगे? धारा नगरी के क्या हालचाल हैं? आप तो राजा भोज जैसे दिखते हैं। वैसा चेहरा-मोहरा और वैसा ही उन्नत भाल है?'

साधु वेशधारी भोज ने सोचा, इसने भी मुझे पहचान लिया है। अभी मतिभ्रम तो इसे भी है और मुझे भी। भोज ने उसके प्रश्नों के उत्तर में कहा-

माता तो धरती कहूँ, गुरु-पितु हे आकास।
तीन लोक वासो करां, भोज मिलन की आस॥
धारा सूनी वै गई, मरिगयो राजा भोज।
मालव पति अवसानियो, गयो धरम को खोज॥

साधु वेशधारी भोज से ऐसा अशुभ समाचार सुनते ही

पद्मगुप्त व्याकुल हो उठा। उसके मुँह से निकल पड़ा–

जो या सांची वात हे, मरि ग्यो राजा भोज।
धारा विधवा वै गई, बुझि ग्यो हगरो ओज॥
पंडित होया बेगता, गयो काव्य को खोज।
सरसत होई बेसुती, झर-झर आवे रोज॥

'अरे साधु! यदि यह सच है कि राजा भोज मर गया है, तो मानो यह धारानगरी विधवा हो गई है। ज्ञान रूप प्रकाश बुझ गया है। समस्त पंडित दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं और काव्य-परम्परा का नाश हो गया है। माता सरस्वती निपूती हो गई है तथा वह जारोजार रो रही है।

ऐसा कहते-कहते पद्मगुप्त भाव विह्वल हो उठा। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। शब्दशक्ति समाप्त हो गई। आँखों से अश्रुधार बहने लगी और वह बेसुध होकर वहीं गिर पड़ा।

राजा भोज ने उसकी परख कर ली। वह ब्राह्मण ही पद्मगुप्त कालिदास है। कमण्डल के जल से उसके मुँह पर छींट लगाये। पछेवड़े से हवा की। थोड़ी देर में उसे चेत आ गया। उसने आँखें खोलीं, दोनों मित्रों की आँखें मिलीं। भोज ने मुस्कराकर कहा- 'कालिदास उठो। मुझे पहचानो। पद्मगुप्त के मुँह से अनायास निकल पड़ा 'महाराज!' भोज ने कहा- हाँ! पद्मगुप्त उठ बैठा। वह पूर्ण चेतमान हुआ। दोनों मित्र गले मिले। न उसमें महाकवि का दम्भ था, न इसमें राजा का बोध।

पद्मगुप्त ने कहा- मैंने जो पद पहला कहा था, वह भ्रम था। अशुभ था। सुखद व शुभ पद तो यह है-

सधवा तो धारापुरी, पंडित-मंडित जाण।
फेर कण्ठ ती आमलो, होई खरी पिछाण॥
सरसत तो हरसे सदा, वाणी होय न हाण।
जुग-जुग जीवो भोज थें, ऊँचो उड़े निसाण॥

'हे राजा भोज! धारापुरी सदा सुहागिन है। पंडित सभी महिमामण्डित हैं। अब खरी पहचान हो गई है। एक बार फिर से कण्ठ से आकर मिल जाओ। सरस्वती सदा हर्षित रहेगी। काव्य की कभी हानि नहीं होगी। हे भोज! आप युग-युगान्तर तक जीवित रहें और आपकी यशपताका सदा उन्नत रहे।'

दोनों मित्र छद्मवेश त्याग कर प्रसन्नचित्त नगर की ओर चल दिये।

यह भावुक प्रसंग सुनाते-सुनाते ठाकुर दलेलसिंह का तो सचमुच कण्ठ भर आया था। वे भावुक भी बहुत थे। मैं! क्या कम भावुक हूँ? जैसा गुरु वैसा चेला!

किंवदन्तियाँ हमारे सामने ज्ञान-विज्ञान और राग-वैराग्य का जैसा अद्‌भुत और मनभावन रूप प्रस्तुत करती हैं, रीति-नीति, प्रीति-बैर और मानव-मूल्यों का जैसा मार्ग प्रशस्त करती हैं, वैसा और कोई विधा नहीं करती। लोक साहित्य की ये लघुकथाएँ मानव जीवन को एक महत्त्वपूर्ण संदेश देकर आगे बढ़ जाती हैं। ये दन्तकथाएँ हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रवक्ता होती हैं। इन्हें देश, काल, भूगोल और इतिहास की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। ये आँखन देखी कहकर इठलाकर, अपनी कमर पर हाथ रखे, इस प्रकार मुस्कराती खड़ी दिखती हैं मानो कह रही हों, हमारी बात झुठलाओ तो जानें!!

एक किंवदन्ती है-

(16) 'शिव मर्‌याँ मुद्दत वई गणपत माँगे भीख' न तो शिवजी मरे और न गणपति भीख माँग रहे हैं। किंवदन्ती केवल यह कहना चाहती है कि परिवार के शीर्षपुरुष का पराभव हो जाने पर संतति किस प्रकार वैभवहीन हो जाती है। स्वयं राजा भोज भी बहुत दानी था। दान देते समय वे यह नहीं सोचते थे कि राजकोष की क्या स्थिति है। यह किंवदन्ती भले ही विनोदात्मक लगे, किन्तु अपना दूरगामी सन्देश अवश्य छोड़ जाती है।

बात ऐसी बनी कि एक बार एक दरिद्र ब्राह्मण राजा भोज के द्वार पर आया। उसकी स्थिति सुदामा जैसी थी। 'धोती फटी सी लटी दुपटी अर पाँव उपान्ह कीनहीं सामा'। लोक चाहता तो उसे सुदामा ही कहता। कैसा लगता कि कथा कहती- 'एक बार सुदामा जी राजा भोज के द्वार पर आए।' किन्तु लोक कथाकार इस बार प्रतीकों पर नहीं गया। प्रतीकों का उपयोग उसे आगे जो करना था। हाँ, तो वह दरिद्र ब्राह्मण बार-बार राजा भोज के दरबार में जाने की हठ करने लगा, तब द्वारपाल विवश होकर भीतर गया

और राजा भोज से निवेदन किया कि द्वार पर एक फटेहाल ब्राह्मण खड़ा है और बार-बार भीतर आने की हठ कर रहा है। राजा भोज ने कहा- उसे भीतर ले आओ। द्वारपाल उस सुदामा जैसे ब्राह्मण को भीतर ले आया। राजा भोज ने फौरन ताड़ लिया कि ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र है। 'दरिद्र को सहायता से भी पहले सांत्वना की आवश्यकता होती है।' राजा भोज ने कहा- 'हे भूदेव! आप शान्त हों। आश्वस्त हों। पहले यह बताएँ कि देवता कहाँ से पधारे हैं? आप घबराएँ नहीं। मैं आपका भाग्य तो नहीं बदल सकता, किन्तु आपका भाग्य अंश जो भी होगा, आपको अवश्य मिलेगा।' ब्राह्मण आश्वस्त हुआ। उसने अत्यन्त धैर्यपूर्वक उत्तर दिया- 'महाराज! मैं कैलाश से आ रहा हूँ।'

सारी राजसभा अचम्भे में पड़ गई। राजा भोज ने मुस्कराकर पूछा- 'भगवान शिव कुशल तो हैं, जो आपको धरती पर आना पड़ा?' 'हे महाराज! यदि भगवान सकुशल होते, तब मैं इस प्रकार दरिद्रावस्था में धरती पर दर-दर भटकने क्यों आता? शिव तो मर गये। मैं उनका पुत्र गणपति हूँ।' सारी सभा चौंक पड़ी। कुछ विद्वान और दरबारी आक्रोश में भी आ गये। राजा ने सबको शान्त किया। राजा ने संयत होकर उस ब्राह्मण से उसके कथन का तात्पर्य पूछा। ब्राह्मण बोला- शिवजी को सबने लूटकर उनका पराभव कर दिया। पराभव और मृत्यु एक समान ही होती है।

आधो विसनू ले गया, हरिहर रूप अनूप।
आधो पारवतां लियो, अर्द्ध नारीस्वर रूप॥
चंद्र गयो आकास में, गंगा सागर बीच।
कैलासां जो बच रह्यो, धूल, धुओं अर कीच॥
प्रभुता सिव की ले गया, भोज राज खुद आप।
मूं सिव बेटो गणपति, दारिदर को स्राप॥
अणि कारण तीनइ जगत, सिव जी होया लोप।
सिव के बिन होयो जगत, घोर अंधेरो घोप।

'हे राजन! शिव का आधा भाग तो विष्णु ने हरण कर लिया और वे हरिहर हो गये। आधा भाग पार्वती ने लेकर अर्धनारीश्वर बनने को उन्हें विवश कर दिया। उनके शीष (मस्तक) पर विराजित चन्द्रमा आकाश में चला गया। गंगा सागर में समा गई। कैलाश पर केवल धूल, धुँआ और कीचड़ बच रहा है। शिव की जो प्रभुता थी, उसे तो भोजराज आप ले आए हो। मैं उनका पुत्र गणपति दरिद्रता का शाप भोग रहा हूँ। इस कारण तीनों लोकों में शिवजी लुप्त हो गये हैं। शिव के बिना घोर अंधकार छा गया है।'

ब्राह्मण की ऐसी पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या सुनकर राजा भोज सहित पूरी राजसभा आश्चर्यचकित रह गई। राजा भोज ने कहा- 'हे भूदेव! आप विद्वान हैं। यह राजा भोज विद्वानों का दास है। आप अपना अभीष्ट कहिये।'

ब्राह्मण ने कहा- 'महाराज! मैं बहुत विपन्न हूँ। बच्चों को कभी दूध नहीं पिला सका। आप मुझे एक गाय या भैंस दे दें।' राजा ने मंत्री से कहा- ब्राह्मण को एक दुधारू भैंस दिलवा दो। मंत्री ने अपने सहायक से कहा और सहायक ने अपने सहायक से। 'दानी दान दे और भण्डारी का पेट फूटे।' उस चाकर ने ब्राह्मण को एक बूढ़ी भैंस देकर विदा कर दिया। ब्राह्मण ने सोचा, इसके साथ कोई बच्चा भी नहीं है। स्तनों में दूध भी नहीं है। वह जान गया कि यह भैंस दुधारू नहीं है। बूढ़ी भी है। फलने की सम्भावना भी नहीं है। वह भैंस को लेकर दरबार की ओर चला। तभी उधर से राजा भोज की सवारी भी आ रही थी। ब्राह्मण ने भैंस के कान में कुछ कहने जैसा अभिनय किया, फिर अपना कान भैंस के मुँह पर सुनने का अभिनय किया। राजा भोज ने आश्चर्य से पूछा- 'हे ब्राह्मण! तुम भैंस से क्या कह-सुन रहे हो?'

'राजन! मैंने इससे पूछा- क्या तुम गर्भिणी हो? तब इसने उत्तर दिया मेरा पति तो सतयुग के प्रारम्भ में ही माता दुर्गा द्वारा मार डाला गया था। (मैं तो विधवा हूँ। महिषासुर) फिर वृद्धा भी हूँ। गर्भिणी कैसे हो सकती हूँ?'

राजा भोज जान गया, ब्राह्मण को अहलकारों ने ठग लिया है। उन्होंने उसे एक दुधारू भैंस और एक गाय दिलवाकर विदा कर दिया।

(17) राजा भोज की दान महिमा सर्वत्र यशपताका की तरह फहरा रही थी। राजमंत्री राजा की इस दान, दयालुता से चिन्तित थे - ईश्वर नहीं करे! अकाल पड़ जाए अथवा कोई शत्रु आक्रमण कर दे और राजकोष खाली हो चुका हो तो स्थिति बड़ी

विकट हो जाएगी। मंत्रियों ने महामंत्री वत्सराज से कहा- आप ही कोई उपाय सोचो, महाराज आपको पितातुल्य मानते हैं। आपकी बात वे सुनेंगे, विचार भी करेंगे। राजा को उचित राय देना आपका कर्त्तव्य भी है।

वत्सराज पशोपेश में थे कि राजा से यह किस प्रकार कहे कि वे दान नहीं दें अथवा राजकोष के धन का उपयोग सोच-समझकर करें? खजाना तो राजा का है। राजा द्वारा अर्जित है। राजा की यह मौज कि दान देते समय सब कुछ भूल जाते हैं।

वत्सराज को एक युक्ति सूझी, उन्होंने राजपत्रों के साथ एक पर्ची पर यह दोहा लिखकर राजा भोज के सामने पेश कर दिया-

बुरो समे कद आ पड़े, कोई सके न जान।
बुरा समे न जाणतां, कीड़ी संचय धान॥

राजा भोज ने वह परचा पढ़ा। वे मन ही मन मुस्काये। उन्होंने वत्सराज की कर्त्तव्यनिष्ठा को मन ही मन सराहा। राज्य के प्रति उनकी चिन्ता उचित थी। फिर भी भोज जानते थे। धन संचय के लिए नहीं है। वंचितों को बाँटने के लिए है, जिसका जिसको सौंपने के लिए है, मैं तो मात्र भण्डारी हूँ, खजाना तो स्वामी का है। अब तक तो हाथ पीछे नहीं मुड़ा, वह अब ढलती उम्र में पीछे नहीं मुड़ सकता। माता सरस्वती लाज रखती चली आ रही है। आगे भी रखेंगी। उन्होंने वत्सराज के परचे के पीछे लिखा-

देण हार परमात्मा, मूं तो बाँटण हार।
दान दियां धन नी घटे, खुल्लो कहूँ पुकार॥

वत्सराज ने जब राजा का उत्तर पढ़ा, तब उन्होंने फिर परचा भेजा-

दान, मान, सम्मान सब, गणो राज के बाद।
राज रह्यां राजो रहे, धन जाया बरबाद॥

राजा भोज ने विचार किया वत्सराज की बात नीतिगत तो ठीक है, किन्तु धर्मगत ठीक नहीं है। राजा भोज ने उन्हें आश्वस्त करने के उद्देश्य से लिखा-

धन संच्याँ कई होवसी, हाथ करण की रेख।
इत बाँटूँ उत घण वधे, लिख्यो विधाता लेख॥

हे वत्सराज! धन संचय करने से क्या होगा? संचय करूँ भी क्यों? मेरे हाथ में दानवीर करण वाली धनरेखा पड़ी है। जितना बाँटूँगा, उतना बढ़ जायेगा। दुगुना हो जायेगा। इस पर विश्वास करो। इसमें शंका की बात नहीं है।

वत्सराज क्या उत्तर दे, आखिर तो वह राजसेवक ही है। राजा के सामने सब कहने की हिम्मत वे नहीं जुटा पा रहे थे। उन्होंने फिर एक परचा लिख भेजा।

हगरी वातां हांचली, सुण लो राजा भोज।
करणी ती भावी प्रबल, राखो थोड़ो होज॥

हे राजा भोज! आपका कथन सर्वथा सत्य है। फिर भी करनी से भावी प्रबल होती है। राजा को चाहिए कि वह आपद काल के लिए धन संचय करके रखे। राजकोष की चिन्ता करे।

राजा भोज क्या उत्तर दे? महामंत्री की बात तो ठीक है, किन्तु दान देने की परम्परा तो मालव नरेशों की सनातन है। मालव नरेश तो क्षमा, शील, दया, दान और न्याय के प्रतिमान माने जाते रहे हैं। महाराजाधिराज विक्रमादित्य से लेकर आज तक मालव नरेशों ने इस परम्परा का निर्वाह किया है। मैं कैसे तोड़ दूँ। उन्होंने वत्सराज को समझाने का एक बार फिर प्रयत्न किया-

वत्सराज जी जाण लो, राखो मन वीसास।
धन की तो हे तीन गत, दान भोग अर नास॥

अरे वत्सराज जी! धन संचय करने से क्या लाभ? वह तो चंचल है। लक्ष्मीजी की तरह चंचल। आज यहाँ, कल वहाँ। धन और पद सब अस्थाई होते हैं। इसलिए इस धन के मोह में पड़ने से तो अच्छा है, इसे बाँटते रहें। धन और पद से ही लोभ, मोह और अहंकार जन्म लेता है। इसके संचय में भी कष्ट होता है और नष्ट होने में भी। इसकी तीन गतियाँ है- दान, भोग और नाश। इसलिए उचित और संयत भाव से धन का भोग करते हुए इसे दान में लगाना चाहिए। इतने तालाब, कुँए, बावड़ियाँ हमने इसीलिए बनवाये हैं। ये प्रजा के कल्याण हेतु हैं। बस यही धन का उचित उपभोग है। संचय में क्या सुख?

धन संच्यां दुख ऊपज, नास्यां भी संताप।
परजा के सुख अपरां, धरम न जाणो आप॥

राजा भोज का यह निर्णायक निर्देश जानकर स्वयं वत्सराज उनके महल में उपस्थित हुए। उन्होंने राजा से कहा- 'महाराज! मैं आपका मंत्री हूँ। आपका और राज्य का हित चिन्तन करना मेरा कर्त्तव्य है। पूरा मंत्री परिषद आपकी दानशीलता से चिन्तित हो उठा था। उन्होंने मुझे यह कार्य सौंपा था कि मैं आपको उचित राय देकर सबकी चिन्ता से अवगत करवाऊँ। सो, मैंने सबके प्रतिनिधि के रूप में अपनी बात आप तक पहुँचाई। अवज्ञा और अभद्रता के लिए मैं क्षमा किया जाऊँ।

राजा भोज ने कहा- वत्सराज जी! आप राज्य के सुयोग्य मंत्री तो हो ही, मेरे भी जीवनदाता हो। आपकी चिन्ता स्वाभाविक है। किन्तु आप इतना जानकर रखो कि दान देने से धन खुटता नहीं। उसमें वृद्धि होती है। इसीलिए कहा है-

दान दियाँ दूनो वधे, ज्ञान और धन धाम।
संचय कर्‌यां नस्ट वे, घटे मान-सम्मान॥

राज्य में राजा का अपना कुछ नहीं होता। सब प्रजा का होता है। राजा तो उसके धन और सम्पत्ति का रखवाला होता है। प्रजा उस पर विश्वास करती है। वह विश्वास टूटना नहीं चाहिए। जिनको मैं दान देता हूँ, वे-वे उसके पात्र होते हैं। अपात्रों को कभी दान नहीं दिया। जिन्हें पुरस्कार देता हूँ, वे भी उसके हकदार होते हैं। मैंने धन का व्यय किया है, अपव्यय कभी भी नहीं किया। राजा स्वयं राज्य के लिए पात्र है या नहीं इसे प्रजा देखती है। मैं तो यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि यदि राजपरिवार में कोई पात्र नहीं है, तो प्रजा और मंत्री परिषद प्रजा में से भी पात्र राजा को तय कर सके। इससे राजपरिवार सतर्क रहेगा और स्वयं को योग्य सिद्ध करने का प्रयास करेगा।

वत्सराज मौन खड़ा अपने महाराजा के महान विचारों को सुनता रहा। उसने महाराज को प्रणाम करना चाहा। भोज ने कन्धों पर दोनों हाथ रखकर बीच में ही रोक दिया। वत्सराज जी आप दरबार में मेरे मंत्री हैं। महल में मेरे पूज्य पितातुल्य हैं। आप मेरे जीवनदाता हैं। यदि अंधभाव से राजाज्ञा का पालन करते, तब पच्चास वर्ष पूर्व ही मेरा वध हो चुका होता। आप शान्त भाव से पधारें और मेरा संदेश अपने मंत्रियों तक पहुँचा दें।

वत्सराज के मुँह से अनायास निकल पड़ा-

जुग-जुग जीओ भोज थें, मूंडे चलके ओज।
दाता तो दोई विया, एक करण एक भोज॥

किंवदन्तियों और लोकगाथाओं का सदाबहार सात्विक पात्र राजा भोज लोक में आज भी प्रासंगिक इसी कारण से है कि उसने सदा प्रजाहित में ही सोचा और प्रजाहित में ही किया।

लोककथाएँ या जनश्रुतियाँ भी कल्पनाजन्य नहीं होतीं। वे लोक में परम्परा से कण्ठानुकण्ठ होती हुई लोक में विचरण करती रहती हैं। लोक साहित्य की वे अमूल्य पूँजी होती हैं। जनश्रुतियाँ भी सत्य पर आधारित रहती हैं। उनके कालक्रम को जान पाना कठिन होता है। कभी उनका नायक भी बदलता रहता है। एक ही जनश्रुति अनेक नायकों के सन्दर्भ में कही-सुनी जाती है।

(18) एक समय की बात है। एक महिला टोकरेनुमा पलने में अपने बच्चे को लिए अपनी राह जा रही थी। उसे प्यास लगी तो उसने आसपास पानी की टोह लगाई। थोड़ी दूरी पर उसे एक बावड़ी दिखाई दी। वह बावड़ी पर पहुँची। पालना सिर से उतारकर थारे पर रखा और बावड़ी की सीढ़ियाँ उतरकर पानी पीने गई। तभी बाहर एक और स्त्री आई। उसने टोकरे में एक सुन्दर-सा बालक देखा। आसपास कोई नहीं था। उसके संतान नहीं थी। उसने मौका अच्छा देखा और बच्चे को उठाकर चल पड़ी। इतने में बच्चे की माँ पानी पीकर बावड़ी से बाहर आई। पालना खाली। बच्चा कहाँ गया? वह चिन्ता में पड़ गई। कहीं कोई जानवर तो नहीं उठा ले गया? उसने चारों ओर नजर घुमाई तो उसे एक आँख दिखी, जो तेजगति से चली जा रही थी। वह जान गई कि मेरे बच्चे को उसी ने चुराया है। वह बेतहाशा उसके पीछे दौड़ पड़ी। थोड़ी दूर पर उसने उसे धर दबोचा- 'अरे दुष्टा चोरनी! मेरे बच्चे को कहाँ लिए जा रही हो?' वह चोर महिला बहुत चालाक निकली। उसने कहा- 'अरी चुड़ैल! तू कौन है। यह तो मेरा बच्चा है। मैं तो अपने बच्चे को ही लिए जा रही हूँ। दोनों की छीना-झपटी और तू-तू मैं-मैं की आवाज आसपास के किसानों ने सुनी, तो दौड़कर वहाँ पहुँच गये। दोनों के अपने-

अपने अधिकार। कोई भी समझ नहीं पाया। सब मिलकर उसे प्रधान के पास ले गये। मामला वहाँ भी नहीं सुलझा। तब दोनों को राजा भोज के दरबार में ले गये।

राजा भोज ने अच्छी तरह दोनों की बात सुनी। उनकी भी समझ में कुछ नहीं आया। राजा समझ तो गये, लेकिन दोनों की जिद बहुत पक्की थी। राजा भोज ने कहा- दोनों अपनी-अपनी जिद पर अड़ी हुई हैं। इसलिए इस बच्चे को दो टुकड़ों में काटकर आधा-आधा दोनों को दे दिया जाए। बच्चे के टुकड़े हम स्वयं करेंगे। राजा का ऐसा आदेश सुनते ही असली माता घबरा उठी। उसका चेहरा फीका पड़ गया, दिल धड़क उठा। दूसरी दावेदार इस आदेश से विचलित नहीं दिखी। उसने तत्काल सहमति प्रकट कर दी। असली माँ तो कुछ बोल ही नहीं सकी। वह तो बेभान होने लगी थी।

बच्चे को नीचे सुला दिया गया। राजा भोज ने म्यान में से तलवार निकाली और बच्चे को काटने के लिए ऊपर उठाई, तभी बच्चे की असली माँ चीख उठी- मत काटो। मेरे बच्चे को मत काटो। भले ही इसे दे दो, लेकिन काटो मत। उसकी आर्त पुकार सुनकर भोज ने तलवार म्यान में कर ली। राजा ने कहा- 'यह बच्चा इसे दे दो। यही इसकी असली माँ है। यह दूसरी स्त्री बच्चों की चोरनी है। इसे कारावास में बन्द कर दो।' न्याय हो गया। माँ को उसका बच्चा मिल गया। चोरनी को दण्ड।

(19) एक लोककथा दशपुर अंचल के पठारी भाग कंजार्ड़ा के गाँव खेड़ली में सुनने को मिली। 'भोज के मूंडे ओज, ठग के मूंडे रोज' अर्थात् भोज के मुख पर ओजस्विता और ठग के मुँह पर रोने का भाव। रोनी सूरत। घबराहट। कथा यों चली कि- एक बार धारा नगरी में ठगों का आतंक फैल गया। सारा नगर और आसपास का अंचल ठगों से परेशान हो गया। राज्य द्वारा खूब सतर्कता की व्यवस्था की गई। कई ठग पकड़े भी गये। उनका मुखिया पकड़ में नहीं आ पा रहा था।

उधर मुखिया ने राज्य की सतर्कता को देखते हुए भूमिगत हो जाना ही ठीक समझा। कुछ समय के लिए ठगी की वारदातें बन्द हो गईं। राज्य में शान्ति हो गई। बहुत से ठग कारागार में बन्द थे। यह मान लिया गया कि ठगों का मुखिया नगर से भाग गया।

मुखिया ठग ने तय कर लिया कि मैं अब ऐसी ठगी करूँगा कि लोग युग-युग तक याद रखेंगे। चाहे यह मेरी आखिरी ठगी ही क्यों न हो। उसने एक साधारण नागरिक का वेश बनाया और जैसे-तैसे राजमहल में चाकर की नौकरी प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे वह राजा के खास महल का विश्वस्त चाकर बन गया। थोड़े समय में उसने राजा भोज से निकटता बना ली। वह राजा भोज का निजी सेवक और सलाहकार बन गया। उसने राजा भोज की चाल-ढाल, बोल-चाल, रहनी-करनी, ठाठ-ठसका सब सीख लिया। महल में सबको भलीभाँति समझ लिया। रानीवास की सब जानकारी उसने प्राप्त कर ली।

एक दिन वह एकाएक गायब हो गया। उसने एक के बाद कई ठगी की वारदातें कर डालीं। राजा फिर सतर्क हो गया। ठग तो पकड़ में नहीं आया। अन्ततः राजा भोज स्वयं भेष बदलकर नगर में घूमने लगा। एक बार राजा ने देखा बाजार के एक चबूतरे पर एक साहूकार गहनों का व्यवसाय कर रहा है। भोज ताड़ गया कि यह साहूकार कुछ विशेष है। राजा ने उसके पास जाकर गहनों का मोल-भाव किया और कुछ गहने खरीदे। राजा भोज, जो एक किसान के वेश में थे, गहने लेकर एक जौहरी की दुकान पर गये। गहनों का परीक्षण करवाया, तो पता चला कि गहने तो नकली हैं। राजा ने अपने साथ आए साधारण वेशधारी सैनिकों को उस साहूकार पर निगरानी का संकेत कर दिया था। राजा भोज ने उस साहूकार को बन्दी बनवा लिया। उसका सारा सामान भी जप्त करवा लिया। सैनिकों ने उसे कारागार में डाल दिया। उसी कारागार में और ठग भी कैद थे। उस ठग के पास एक झोला था, जिसे सैनिक ले नहीं पाए थे।

सबेरे दरबार लगा। राजा भोज सिंहासन पर विराज गये। उन्होंने बैठते ही आदेश दिया- कारागार से उस ठग को हाजिर करो। सैनिक कारागार में गये तो अवाक् रह गये। बन्दीगृह में तो ठग की जगह महाराज भोज बन्द हैं। सैनिकों ने झटपट ताला खोलकर महाराज को बाहर निकाला और प्रणाम किया। भोज बने ठग ने राजा भोज की शैली में चिल्लाकर कहा- 'अरे दुष्टों! यह तुमने क्या मूर्खता कर दी। ठग की जगह हमें कारावास में बन्द

कर दिया और ठग को छोड़ दिया। सैनिक तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। अभी-अभी तो महाराज दरबार में विराज रहे थे, अभी यहाँ कैसे? ठग चिल्लाया। जल्दी चलो, कहीं वह ठग कुछ चालाकी न कर जाए। लगता है वह किसी शत्रु राज्य का भेदिया है।

राजा भोज बना ठग तेज चाल से दरबार की ओर बढ़ने लगा। सैनिकों ने देखा बिल्कुल महाराज जैसी चाल-ढाल। रास्ता भी बिना रुके पार कर रहे थे। थोड़ी भी झिझक नहीं। वे सैनिकों से भी आगे चल रहे थे। नकली ठग दनदनाता हुआ दरबार में घुस गया और ललकार कर बोला- 'अरे ठग! तेरी यह हिम्मत कि तू मेरे सिंहासन पर बैठे। सैनिकों बन्दी बना लो।' सारा दरबार सकते में आ गया। वत्सराज ने बार-बार दोनों को देखा। उनकी आँखें भी धोखा खा गयीं। दोनों अपना-अपना दावा पेश कर रहे थे। असली-नकली पहचान कैसे हो? दोनों ने तलवारें खींच लीं। वत्सराज और सेनापति ने बीच-बचाव करके स्थिति सम्हाली। कई तरह से परीक्षा ली गई। दोनों खरे उतरे। दोनों पूरे दरबारियों को नाम सहित पहचानते थे। वत्सराज ने युक्ति लगायी। रानी जी से परख करवाई जाए। दोनों को महल में ले जाया गया। असली राजा भोज परेशान हो उठे थे। कोई उन्हें न तो पहचान पा रहा था और न उनकी बात मान रहा था। ठग सब पर भारी पड़ रहा था। दोनों रानीवास पहुँचे। रानी जी भी हतप्रभ! उसका मन डाँवाडोल हो उठा। वे जैसे ही असली भोज को पहचानती और उनके निकट जाना चाहतीं, उनका मन शंका से भर उठता! कहीं ये नकली हुए तो? इनका स्पर्श करना भी पाप। अन्ततः वे हार गईं। वत्सराज ने आखिरी प्रयास किया। वे दोनों को माता के पास ले गये। माता अवश्य पहचान लेंगी। माता के महल में पहुँचने पर नकली ठग ने तुरन्त माता के चरण स्पर्श किये और कहा कि- ये सब मुझे नकली मान रहे हैं। इस ठग ने सबको भ्रमित कर दिया है। माता ने दूर खड़े राजा भोज को देखा। वह खड़ा-खड़ा मुस्करा रहा था। उसके मुख पर एक आभा छाई हुई थी। वह अपनी माँ के सामने था। भोज की सारी चिन्ता और अवसाद समाप्त हो गया था। वह अपनी माँ के निकट गया। चरण वन्दन किया। माता ने भोज का सिर सूँघा और कहा- 'वत्सराज! यह है मेरा बेटा भोज।' 'रानी को तो मेरे बेटे के पसीने की पहचान थी। वह कैसे पहचानती। वह पहचान तो निकटता से ही सम्भव हो सकती थी। माँ को अपने बेटे के वदन में से अपने दूध की गन्ध आती है। माँ कभी भी धोखा नहीं खा सकती।'

राजा भोज के मुख पर आभा मुखर हो उठी। उनके मुखमण्डल पर ओज छा गया। ठग के सामने अब कोई भी चारा नहीं रह गया था। उसका मुँह रोने जैसा हो गया। इसीलिए कथाकार कहता है- 'भोज के मूंडे ओज, ठग के मूंडे रोज'।

ठग को फिर कारागार में डाल दिया गया। उस पर पूरी चौकसी रखी गई। अगले दिन उसे दरबार में पेश किया गया। इस बार उसने वही साहूकार वाला वेश बना रखा था। वही वस्त्र उसके झोले में थे।

राजा भोज ने उस ठग की खूब प्रशंसा की। राजा ने कहा- 'अरे ठग! तुम बहुत गुणी हो। तुम अपने गुण का दुरुपयोग कर रहे हो। तुम तो हमारे राज के एक गुणी कलाकार हो। तुम यह ठगी का काम बन्द कर दो। हम तुम्हें अपना खास गुप्तचर नियुक्त करते हैं। ईमानदारी से राज की सेवा करो और अच्छे नागरिक का कर्त्तव्य निर्वाह करो। राजा भोज ने उसे पुरस्कृत करने के बाद दरबार से विदा कर दिया।

राजा भोज को पात्र बनाकर कई किंवदन्तियाँ हमें मिल जाती हैं। और ये सच भी हैं। वही किंवदन्तियाँ अन्य भाषाओं में तथा अन्य सन्दर्भों में भी मिल जाती हैं। हमारी एक पारम्परिक धारणा है कि अधिकतर लोककथाएँ, किंवदन्तियाँ अथवा श्रुतियाँ संस्कृत से हिन्दी, मालवी अथवा अन्य भाषाओं में अनूदित हुई हैं। जबकि यही सत्य नहीं है। सत्य यह है कि किंवदन्ती पहले लोक में आती है। लोक में प्रचारित होती है। फिर वह संस्कृत में प्रवेश करती है। हमने सदा संस्कृत को ही प्रमाण माना है। उसे ही मूल माना है। आज कोई किंवदन्ती या साखी संस्कृत श्लोक में है, तो तत्काल कह दिया जाएगा कि यह संस्कृत से अनूदित है अथवा आधारित है। सच यह है कि संस्कृत का जनसामान्य में कभी प्रभाव नहीं रहा। लोक का आधार जनसामान्य है और जनसामान्य द्वारा ही लोक साहित्य का सृजन होता है। जनसामान्य की भाषा कभी-भी संस्कृत नहीं रही। लोक की अपनी भाषा होती है। अपनी कहनी होती है। यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण का एक भी श्लोक जनसामान्य में कण्ठस्थ नहीं होता, जबकि लोकभाषा में लिखी तुलसीकृत रामचरित मानस की अनेक चौपाइयाँ बेपढ़े लोगों को भी कण्ठस्थ हैं।

(20) संस्कृत का व्यवहार ठीक वैसा ही है, जैसी – 'एक लोककथा में एक बुद्धिमान तुरत बुद्धि' विद्वान का था। राजा भोज के दरबार में उसका बड़ा मान था। वह तुरत बुद्धि था। जो भी अपनी लोककथा या किंवदन्ती लेकर दरबार में आता, वह उसे सुनकर कह उठता– 'अरे! यह तो बहुत पुरानी है। संस्कृत में तो यह पुरातन काल से कही-सुनी जा रही है। वह पंडित उसी कथा-गाथा या किंवदन्ती को संस्कृत में सुना देता। बेचारा कथक्कड़ छोटा-सा मुँह लेकर बिना ईनाम लिए दरबार से खाली हाथ लौट जाता। राजा भोज उसकी यह चतुराई भलीभाँति जानता था, किन्तु उसके पाण्डित्य के आगे मौन रह जाता। धार नगरी की एक कन्या जिसका नाम सरस्वती था। दरबार में आई और अपनी कथा सुनाने की अनुमति राजा भोज से माँगी। राजा ने तुरन्त अनुमति दे दी।

सरस्वती ने तुरत बुद्धि को सम्बोधित करते हुए कहा– हे महापंडित! मेरी कथा ध्यान से सुनना और ऐसी कथा अवश्य संस्कृत में भी होगी, आप उसे सुनाकर मेरी कथा की पुष्टि करना। जो पुरस्कार मुझे मिलेगा, उसका आधा मैं आपको दे दूँगी। यदि आपने मेरी कथा की पुष्टि संस्कृत कथा से नहीं की तो आज तक जितने भी लोक कथाकारों को आपने छला है, उनका पुरस्कार आपको देना होगा अथवा महाराज भोज से दिलवाना होगा। यदि महाराज की आज्ञा हो और आपकी सहमति हो तो मैं कथा सुनाऊँ अन्यथा आप हार मान लें। मैं अपने घर लौट जाऊँगी। छोटी-सी कन्या की चुनौती सुनकर 'तुरत बुद्धि' का अहंकार नाग की तरह फन्ना उठा। उसने कहा– 'कन्या! तू बड़बोली मत कर और अपनी कथा सुना। कन्या ने महाराज को प्रणाम किया। दरबार के पंडितों और दरबारियों को प्रणाम किया और पीठिका पर बैठकर वह अपनी कथा सुनाने के लिए तत्पर हुई। सारा दरबार उत्सुकता से उसकी कथा सुनने के लिए आतुर लग रहा था। उसने अपनी कथा प्रारम्भ की–

म्हारा पूज्य पितामह जाणो।
चारण भाट खूब बखाणौ॥
गया तपस्या करवा वन में।
तपसा खूब तपी कानन में॥
जातां वेरां करी अनामत।
रिपया एक लाख था साबत॥
होना का गेहणा की पेटी।
आधा मण चाँदी की भेटी॥
राजा मुंज के करी अमानत।
सिंघुल जी ने भरी जमानत॥
पूज्य पितामह देवत होया।
जनम-जनम का पापा धोया॥
दोई राजा स्वर्ग सिधारया।
भोज राज सिंघासन धायर्‌या॥
भोज राज ती होया सिद्धा।
सिद्धा ती भोज परसिद्धा॥
मूं हूँ पितामह की वारिस।
सच-झूठ की कर लो धारिस॥
आप खातरी कर दो फौरन।
म्हारो धन मल जावे सुवरन॥
संस्कृत लिख्या सलोका बोलो।
हाँच झूंठ की आंटी खोलो॥

हे कन्या तु बोले झूंठ।
छल को उबो कर्‌यो हे ठूण्ठ॥
झूठ-झूठ! या झूठी केणी।
घड़ी-घड़ाई, छल की वेणी॥
ऐसी सुणी नहीं कोई आमत।
होई नहीं सद कोई अमानत॥
संनस्कृत मेरे हे नहीं सलोको।
देवा आई हे तू धोको॥

तुरत बुद्धि के ऐसा कहते ही कन्या ने कहा– 'अरे छली ब्राह्मण! तू नरक गामी होगा। तूने अपनी विद्वता का दुरुपयोग किया है। इस प्रकार तूने विद्या, संस्कृति और संस्कृत तीनों के

साथ-साथ अपने गुरु के साथ भी छल किया है। तूने लोक, लोक साहित्य और लोक-कथक्कड़ों का अपमान किया है। तू क्षमा योग्य नहीं है। तूने जिस प्रकार पूर्व की लोककथाओं और किंवदन्तियों का संस्कृत में तुरन्त अनुवाद करके उनको पुरातन संस्कृत साहित्य का अंग बतलाया है, इस तेरी कथा का भी तो कर। अब तेरी वाणी क्यों जड़ हो गई? अरे दुष्ट! हम परम्परा से लोककथाएँ कहते चले आ रहे हैं। संस्कृत ने लोक को आधार बनाकर श्लोक रचे और उसे अपना मूल बना दिया। अरे विद्वान पंडित! संस्कृत के पास तो अपार साहित्य सम्पदा है। फिर आप तो स्वयं ही काव्य-मनीषी हैं। नया ग्रन्थ रचिये। जूठन क्यों चाटते हैं।

ऐसा कहकर वह महाराज भोज की ओर घूमी और हाथ जोड़कर बोली- 'महाराज! मेरी अभद्रता के लिए मुझे क्षमा किया जाये। मेरा परिवार पारम्परिक रूप से लोकगायक है। इन विद्वान पंडित ने मेरे परिवार के कई लोगों को अपमानित किया है। हमारे पेट पर लात मारी है। मैं इनकी विद्वत्ता को और तुरत बुद्धि को प्रणाम करती हूँ, किन्तु इनके छली स्वभाव की भर्त्सना भी करती हूँ। मुझे तो आश्चर्य है कि आप जैसे विद्वान राजा के दरबार में ऐसा छल किया जाता रहा है।' ऐसा कहकर वह दरबार से बाहर जाने के लिए मुड़ी। राजा भोज ने उसे रोका। कन्या तुम धन्य हो। तुम्हारा नाम क्या है? मेरा नाम सरस्वती है, महाराज। राजा भोज अपने सिंहासन से नीचे उतरे। कन्या सरस्वती के पास आकर कहा- जैसा तुम्हारा नाम है, वैसा तुम्हारा ज्ञान भी है। ऐसी मुखर वाणी वाली कन्या पाकर धारा नगरी धन्य है। तुम्हारे परिवार की क्षतिपूर्ति के लिए एक सहस्त्र मुद्राएँ तथा तुम्हारे मुखर और विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य के लिए एक सहस्त्र मुद्राएँ तुम्हें दी जाती हैं। अब ऐसी भूल नहीं होगी, यह आश्वासन भी।

उस तुरत बुद्धि में ज्ञान तो खूब था, किन्तु ज्ञान के साथ छल और अहंकार भी था। ज्ञानी में यदि अहंकार आ जाए, तब वह बन्दर बन जाता है। इस डाल से उस डाल पर कूदकर अपनी कला का प्रदर्शन करता फिरता है। ऐसी ही एक लोककथा जावद अंचल के गाँव अठाना में सुनने को मिली। यह कथा तो मैंने पहले भी सुनी थी, कहीं लिखी भी है, किन्तु इसे राजा भोज के सन्दर्भ में पहली बार सुना। सुना भी तो एक अतिवृद्ध किसान के मुख से। बाल्या बा के मुँह में भले ही दाँत नहीं थे, किन्तु मस्तिष्क में कथा-किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ बहुत थीं। कथा का सन्दर्भ पात्र जो भी हो, आस्था और विश्वास का पात्र तो भोज अधिक रहा है। बाल्या बा कहते हैं-

(21) 'ज्ञानी को संतोष' - 'यदि संतोष नहीं तो होश नहीं'। होश नहीं तो भटकेगा। भटकेगा तो राह भूल जायेगा। मार्ग भूल जायेगा तो मंजिल तक नहीं पहुँचेगा। मंजिल तक नहीं पहुँचेगा तो अपयश का पात्र बनेगा। अपयश अर्थात् मौत। अपयश का जीवन तो मृत्यु से भी बुरा। राजा भोज के दरबार में एक ज्ञानी था। सब उसे 'तुरत बुद्धि' कहते थे। वह स्वयं को 'घटज्ञानी' कहता था। अहंकार उसका गहना था। उसके बोलने, बैठने, उठने, रहन-सहन, वेशभूषा सब में अहंकार छलकता था। राजा भोज ऐसे ज्ञानी में अहंकार का होना उचित नहीं समझते थे। वह तुरत बुद्धि प्रात:काल नदी स्नान करने जाता था। एक दिन राजा भोज भी नदी स्नान करने एक ब्राह्मण का वेश बनाकर चले। ब्राह्मण नदी स्नान करने जा रहा था और राजा भोज नदी स्नान करके लौट रहे थे। राजा भोज ने तुरत बुद्धि को मार्ग में आते देख 'नमोनारायण' कहा।

घटज्ञानी ने राजा के प्रणाम का उत्तर तो दिया, किन्तु उसमें अहंकार का भाव निहित था। राजा भोज ने विचार किया। पंडित का अहंकार कल एक छोटी-सी कन्या ने भंग कर दिया था, किन्तु वह तो रात भर में फिर बढ़ गया। इनका अहंकार तो कम करना पड़ेगा। राजा भोज ने कहा- 'ब्राह्मण देव! आप तो बहुत ज्ञानी हैं। मैं ठहरा एक साधारण ब्राह्मण। क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ? देव का आश्रम कहाँ है? अवसर आने पर आपसे ज्ञान प्राप्त कर सकूँ।'

भोज का ऐसा प्रश्न सुनकर वह ब्राह्मण भड़क उठा- 'अरे मूर्ख! तू हमें नहीं जानता। हमारा नाम तो पूरे राज्य में चर्चित है। हम महापंडित, काव्य-मर्मज्ञ, ज्योतिषाचार्य, व्याकरणाचार्य, संस्कृत भाषा के प्रामाणिक विद्वान 'घटज्ञानी' हैं। लेकिन तुम कौन हो?

ऐसी अभद्रता करने का साहस तुमने कैसे किया? अरे! यह प्रश्न तो हमसे राजा भोज भी नहीं पूछ सकता। हम उनके दरबार के नवरत्नों की शीर्ष मणि हैं। हमारी अवज्ञा कोई नहीं कर सकता। भोज ने कहा- 'हे भूदेव! आप मुझे क्षमा करें। मैंने 'घटज्ञानी' ऐसा नाम पहले नहीं सुना है। मेरा क्या परिचय? बस यही जानिए कि आप यदि घटज्ञानी हैं, तो मैं 'मूसल ज्ञानी' हूँ। मूसल के एक प्रहार से घट का सारा ज्ञान बिखर सकता है।

मूसल नाम सुनकर अहंकारी पंडित और भी भड़क उठा। उसने कहा- यदि तू मूसल है, तो मैं अग्नि हूँ। जलाकर राख कर दूँगा। भोज ने कहा- आप यदि अग्नि हैं, तो मैं बादल हूँ। आपको शीतल कर दूँगा। ब्राह्मण का अहंकार और अधिक भड़क उठा। वह बोला- तुम यदि बादल हो, तो मैं वायु हूँ। तुम्हें उड़ाकर दूर कर दूँगा। भोज ने कहा- तुम यदि हवा हो, तो मैं शेष हूँ। तुम्हें पी जाऊँगा। ब्राह्मण ने कहा- यदि तुम शेष हो, तो मैं गरुड़ हूँ। तुम्हें खा जाऊँगा। भोज ने कहा- आप यदि गरुड़ है, तो मैं कृष्ण हूँ। तुम पर सवारी करूँगा। घटज्ञानी का अहंकार कहाँ कम होने वाला था। वह बोला- तुम यदि कृष्ण हो, तो मैं मुकुट बनकर तुम्हारे शीश पर बैठ जाऊँगा। भोज भी कहाँ कम थे? उन्होंने कहा- आप यदि मुकुट हैं, तो मैं मोरपंख हूँ। मुकुट के ऊपर बैठूँगा। मुकुट बनकर तो तुम मेरा शृंगार ही करोगे। कृष्ण मुकुटधारी नहीं 'मोरमुकुटधारी' कहलाते हैं। घटज्ञानी एक साधारण ब्राह्मण से पराजित नहीं होना चाहता था। कल की घटना उसे स्मरण हो आई। कल एक साधारण कन्या ने उनकी वाणी पर अंकुश लगा दिया था। घटज्ञानी बोला- अरे ब्राह्मण! यदि मोरमुकुट हो, तो मैं कमलकली हूँ, मुकुट पर बैठकर तुमसे बहुत ऊँचा हो जाऊँगा।

भोज ने कहा- हे घटज्ञानी! तुम यदि कमल हो, तो मैं मकरन्द हूँ। मकरन्द से ही कमल की शोभा है। घटज्ञानी ने कहा- तुम यदि मकरन्द हो, तो मैं भँवर हूँ। तुम्हें पी जाऊँगा। भोज ने कहा- तुम यदि भँवर बनकर मेरा पान करोगे, तो मैं भी सूर्य हूँ। तुम्हें कमल में बन्द कर दूँगा। घटज्ञानी बोला- यदि तुम सूर्य हो, तो मैं राहू हूँ। तुम्हें ग्रस लूँगा। भोज ने कहा- यदि आप राहू हैं, तो मैं दान देकर तुम्हें प्रसन्न कर लूँगा। ब्राह्मण और राहू तो दान पाकर प्रसन्न हो जाते हैं। घटज्ञानी बोला- तुम यदि दान दोगे, तो मैं प्रसन्न होकर सन्तुष्ट हो जाऊँगा। भोज ने कहा- 'हे भूदेव! आप यदि सन्तुष्ट हो जाएँगे, तो आपका अहंकार समाप्त हो जायेगा। ऐसी स्थिति में मैं आपके चरण स्पर्श कर लूँगा। मैं आपको ससम्मान अपना राजपंडित बना लूँगा। घटज्ञानी बोला- मैं तो राजा भोज का नवरत्न हूँ। भोज ने कहा- पंडितजी! यदि आप राजा भोज के नवरत्न हैं, तो मैं राजा भोज हूँ। आपको सम्मानित करूँगा।

राजा भोज ने अपना ब्राह्मण वेश उतारकर ब्राह्मण को पुनः प्रणाम कर कहा- पंडितजी! आप परमज्ञानी हैं। ज्ञानी को सदा अहंकार भाव से मुक्त रहना चाहिए। अहंकार ज्ञानी का शत्रु होता है।

(22) 'ज्ञानी से मूंजी भला' - एक ब्राह्मण राजा भोज की सभा में आया और निवेदन किया कि- 'महाराज! मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। मेरी बेटी ब्याहने योग्य हो गई है। मैं धन के अभाव में उसका ब्याह नहीं कर पा रहा। आपकी कृपा हो जाए, तो मेरी कन्या का विवाह हो जाए।' राजा भोज ने कहा- 'हे पंडित! क्या तुम कोई विद्या जानते हो? पंडित ने कहा- विद्या तो मैं जानता हूँ, किन्तु उस पर दरिद्रता और उससे उत्पन्न चिन्ताओं की धुँध छा गई है। राजा भोज ने कहा- हम तुम्हें चिन्ता से मुक्त करते हैं। कन्या के विवाह के पश्चात् आप हमें अपनी विद्या से अवगत करवाना। राजा भोज ने मंत्री से कहा- इस ब्राह्मण को पाँच सौ मुद्राएँ राजकोष में से दिलवा दो। ब्राह्मण चला गया। मंत्री ने अपने सहायक से कहा, सहायक ने खजांची से कहा, खचांजी ने ब्राह्मण से अगले दिन आने को कहा। इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। ब्राह्मण निराश हो गया। वह राजा भोज के दरबार तक पहुँचा, उसने एक कागज पर लिखा-

दाता से मूंजी भला, तुरतहि देय जवाब।

परचा उसने प्रतिहारी के हाथ राजा भोज के पास भिजवा दिया। राजा भोज ने दोहे की अर्द्धाली पढ़ी और उसे पूरा कर दिया-

झटपट सम्मुख आ मिलो, तुरतहिं करां हिसाब॥

राजा भोज का उत्तर पाकर ब्राह्मण दरबार में उपस्थित हुआ। अपनी सारी व्यथा कह सुनाई। राजा भोज ने मंत्री व

कर्मचारियों को खूब प्रताड़ित किया तथा ब्राह्मण को पाँच सौ के बदले एक सहस्र मुद्राएँ तत्काल दिलवाकर विदा किया।

मालवा में दो ही राजा ऐसे हुए, जिनका नाम पूरे देश में ख्यात हुआ। एक राजा विक्रमादित्य, दूसरा राजा भोज। यशोधर्मन इतिहास के पृष्ठों में अलंकृत होकर रह गये। विक्रम और भोज जन-जन के लोक व्यवहार में रच-बस गए। इनमें भोज तो किंवदन्ती पुरुष ही बन गये। जिस सन्दर्भ में भी देखो, राजा भोज का आधार दिख जाता है। एक किंवदन्ती है-

(23) 'राजा भोज निरखरो' - निरखरो अर्थात् निरक्षर। यह ब्याज स्तुति है। राजा भोज मूर्ख कैसे हो सकता है?

एक बार एक ब्राह्मण अपना काव्य ग्रन्थ लेकर मेवाड़ से चला और उसने मार्ग में एक शिव मन्दिर में रात्रि विश्राम किया। वहीं एक ब्राह्मण और भी आकर रुक गया। दोनों में 'ऊँ नमोनारायण' हुआ। मेवाड़ी ब्राह्मण ने आगत ब्राह्मण से पूछा- आप कौन से राज्य के रहने वाले हैं और कहाँ से पधार रहें हैं? आगत ब्राह्मण ने बताया- मैं गुजरात का रहने वाला हूँ और धारा नगरी से लौट रहा हूँ। आप कहाँ से पधारे हैं और कहाँ जाएँगे? मेवाड़ी ब्राह्मण ने बताया - मैं मेवाड़ राज्य का रहने वाला हूँ। और धारा नगरी से लौट रहा हूँ। उसने गुजराती ब्राह्मण से पूछा- यहाँ से धारा नगरी कितनी दूर है? और राजा भोज का व्यवहार ब्राह्मणों के प्रति कैसा है? सुना है वह बहुत ज्ञानी और विद्वानों और कवियों का बहुत आदर करता है, उन्हें मुक्तहस्त से दान देता है।' 'दानी तो वह है किन्तु मूर्ख और निरक्षर' गुजराती ब्राह्मण की बात सुनकर मेवाड़ी ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया। उसने सोचा यदि वह निरक्षर है, तब मेरे काव्य ग्रन्थ को कैसे समझ पाएगा। यदि समझ नहीं पाएगा, तब मेरी काव्य प्रतिभा को भी कैसे समझेगा? मैं व्यर्थ ही इतना चल कर यहाँ तक आया हूँ। प्रात: काल इसी ब्राह्मण के साथ वापिस मेवाड़ की राह पकड़ना ही उत्तम है। ऐसा विचार करके वह बहुत निराश हो उठा। उसने थोड़ी देर में शान्तचित्त होकर उस गुजराती ब्राह्मण से पूछा। आप राजा भोज से स्वयं मिलें हैं अथवा सुनी-सुनाई बात कह रहे हैं! उस ब्राह्मण ने मुस्कराकर एक दोहा पढ़ा-

राजा भोज निरखरो, बाँच न पायो भाल।

इतना कहकर वह गुजराती ब्राह्मण मौन हो गया। वह आगे बोला- मैं कोई विद्वान नहीं हूँ। मेरा अनुमान असत्य भी हो सकता है, किन्तु आप बताएँ आप किस उद्देश्य से धारा नगरी जा रहे हैं? उस ब्राह्मण ने मेवाड़ी ब्राह्मण को यह पद सुनाया-

धारा नगरी में तपे, दानी राजा भोज।
ज्ञानवान, कवि, पंडितों, मूंडे झलके ओज॥
श्रुति, पुराण पुनि ज्योतिषी, दानवीर विख्यात।
मालव राजा राज की, धारा नगरी जात॥

गुजराती ब्राह्मण ने जब मेवाड़ी ब्राह्मण से पद सुना तो बोला- आप अवश्य जाओ। राजा भोज विद्वानों और कवियों का बहुत आदर करता है तथा उन्हें मुक्तहस्त पुरुस्कार भी देता है। मेवाड़ी ने कहा- 'आप तो कहते हैं वह निरक्षर है। फिर वह मेरे काव्य को कैसे समझेगा? समझेगा नहीं तो प्रशंसा भी कैसे करेगा और पुरस्कार भी कैसे देगा?' गुजराती बोला- मैंने ऐसा कब कहा? मैंने तो पूरा पद पढ़ा ही नहीं। पूरा पद सुन लो फिर निर्णय करना।

राजा भोज निरखरो, बाँच न पायो भाल।
विधि ने दारिद्रो लिख्यो, भोज दियो मणि थाल॥

मैंने राजा भोज को इस कारण निरक्षर कहा कि, वह मेरे भाग्य का लिखा नहीं पढ़ पाया। विधाता ने मेरे भाग्य में दरिद्रता लिखी है और राजा भोज ने मुझे मणियों का थाल भरकर दिया और सम्पन्न कर दिया। इस प्रकार वह तो विधाता से भी ऊपर हुआ। वह रेख में भी मेख लगा सकता है। यह उसके पुण्य का प्रताप है।

मेवाड़ी ब्राह्मण, गुजराती से राजा भोज की ब्याज स्तुति सुनकर अतिप्रसन्न और आश्वस्त हो गया।

(24) 'एक बार' – राजा भोज और उनके महामंत्री वत्सराज शिकार करने के लिए जंगल में गए। दिन ढलते-ढलते उन्हें एक शूकर दिखा। विशालकाय शूकर। दोनों ने घोड़े उसके पीछे लगा दिए। लगभग चार-पाँच मील पीछा करने के बाद वह शूकर भोज की सीमा में आ पाया। भोज ने धनुष पर बाण चढ़ाया। निशाना साधा और बाण छोड़ दिया। शूकर घायल होकर धरती पर गिर पड़ा। भोज का घोड़ा शूकर तक पहुँचे उससे पहले एक भील शूकर को कंधे पर लाद कर भाग खड़ा हुआ। भोज कुछ सोचे – तब तक वह भील उनकी आँखों से ओझल हो गया। तब तक वत्सराज भी वहाँ आ पहुँचा। राजा भोज को अचम्भे में देखकर वत्सराज ने पूछा- महाराज! शिकार कहाँ गया। आपका निशाना तो अचूक है फिर यह कैसे हो गया? भोज ने सारी बात बताते हुए कहा। शिकार को एक भील युवक उठा कर भाग गया। बाण उसका भी शूकर के सीने में लगा था। यह कहना कठिन है कि, पहला बाण किसका लगा? मेरे लिए यह बात भी आश्चर्यजनक नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि, उस विशालकाय शूकर को कंधे पर लादकर वह भील युवक इस कदर भाग रहा था, मानो एक मेमने को उठाकर भाग रहा हो। अद्भुत है। प्रणम्य है वह भील युवक और उसका पराक्रम। भोज भावुक हो उठा।

अंधेरा घिरने लगा था। दोनों को मार्ग समझ नहीं आ रहा था। अनुमान से दोनों आगे बढ़े। अंधेरा होते-होते दोनों एक टेकरी (टोले) पर पहुँचे। वहाँ एक झोपड़ी थी। उसमें दीपक का प्रकाश फैला रहा था। भीतर एक श्वेत वसना वृद्धा ध्यानावस्था में विराजित थी। वत्सराज ने द्वार खटखटाया। भीतर से आवाज आई, भीतर आ जाओ। दोनों भीतर गए। भोज ने पूछा- 'माता! यह रास्ता कहाँ जाता है?'

यह तो यहीं रहता है। जाते तो राहगीर हैं।' वृद्धा ने कहा।

- 'माता! हम पथिक ही हैं।'
- 'पथिक तो दो ही हैं। एक सूर्य, दूसरा चन्द्रमा।'
- 'माता! हम अतिथि हैं।'
- 'अतिथि तो केवल दो ही हैं एक धन, दूसरा यौवन।'
- 'माता! हम राजा हैं।'
- 'राजा तो केवल दो हैं। एक इन्द्र, दूसरा यम।
- 'माता! हम उज्जयनी पति हैं।'
- 'उज्जैनी पति तो केवल दो हैं पहला महाकाल दूसरा राजा विक्रमादित्य।'
- 'माता! हम बली हैं। हमें मार्ग बताओ।'
- 'बली तो केवल दो हैं- एक शनि दूसरे दानवीर महाराज बली।'
- 'माता! हमें साधू मान लो।'
- 'साधू तो केवल दो हैं- एक शील दूसरा संतोष।'
- 'माता! हमें मार्ग बताओ, हम सभी कष्ट सहन कर लेंगे।'
- 'सहनशीलता केवल दो में है। एक पृथ्वी में दूसरी स्त्री में।'
- 'माता! हम तो राह भटक गए हैं- हमें राह बताओ।'
- 'राह तो केवल दो भटकते हैं- पहला भोगी दूसरा लोभी।'
- 'राजा भोज घबरा उठे। वे इस वृद्ध विदूषी से पराजित होते लग रहे थे। वह उस वृद्धा की भव्यता भी समझ रहे थे। उन्होंने कहा- 'माता! हम परदेसी हैं। हमारी सहायता करो।'
- 'परदेसी तो केवल दो हैं, एक जीव दूसरा पक्षी।'
- 'माता! हम विवश हैं।'
- 'विवश केवल दो हैं एक अज (बकरा) दूसरी कन्या।'
- 'माता! हम आपके ऋणी होंगे। हमारा मार्ग प्रशस्त करो।'
- 'ऋणी तो केवल दो होते हैं पहला धन ऋणी दूसरा कन्या ऋणी।'

अन्ततः राजा भोज उस वृद्धा के चरणों पर गिर पड़े। माता क्षमा करो। मैं आपकी शरण में हूँ।

'उठो राजा भोज! उठो। मैं उज्जयिनी हूँ। तुम्हें मार्ग मैंने ही भटकाया है। मैं यहाँ तपस्या कर रही हूँ, तुम्हारा शूकर ले जाने वाले राजाधिराज स्वयं महाकाल ही थे। भोज तुम उज्जैनी का त्याग करके धार जाना चाह रहे हो। इससे उज्जयिनी अरक्षित हो जाएगी। तुमने इसका विचार नहीं किया – किया है माता! मेरा आधा ध्यान उज्जयिनी पर ही रहेगा। भगवान महाकाल मेरे अराध्य हैं। मैं उनके दर्शन करने आऊँगा। मैं उज्जयिनी का त्याग नहीं कर रहा, मैं तो मालवा की सुरक्षा के लिए राजनैतिक व्यवस्था कर

रहा हूँ। श्रावण मास में मेरी राजधानी उज्जयिनी ही रहेगी। आप प्रसन्न हों देवी। उज्जयिनी ने भोज को आशीर्वाद दे दिया। तभी वहाँ भील युवक भी आ गया। भोज ने और वत्सराज ने उन्हें प्रणाम किया- प्रभु मुझे क्षमा करें। राजाधिराज तो आप हैं। आप ही नगर नायक हैं। आप मुझ पर कृपा करें। मैं मालवा की रक्षा कर सकूँ, ऐसा आशीर्वाद दें। महाकाल ने भोज को प्रत्यक्ष दर्शन दिए और अन्तर्ध्यान हो गए। रात्रि विश्राम कर दोनों उज्जयिनी के लिए प्रस्थित हो गए।

(25) 'विष तो पीयो भोज ने मरिगयो गोरखनाथ' - बात प्रथम दृष्टि में समझ में नहीं आती। राजा भोज के विषपान करने से गोरखनाथ कैसे मर गया? लोक झूठ भी क्यों बोलेगा। कथा यूँ बनी कि, एक बार जब राजा भोज ने तेलंगाना के राजा सत्याश्रय को पराजित कर बंदी बना लिया था। सब का यही कहना था कि, जिस प्रकार राजा मुंज को हाथी के पैरों तले तेलंगाना के तैलप ने कुचलवाया था। उसी प्रकार सत्याश्रय को भी कुचलवा दिया जाय। राजा भोज ने उसे क्षमादान देकर छोड़ दिया था। सत्याश्रय जानता था- शक्ति के बल पर तो भोज को परास्त करना असम्भव है। इस बार भी यदि बंदी बना लिया गया तो क्षमादान के स्थान पर मृत्यु ही मिलेगी। इस कारण उसने छल से काम लिया।

उज्जैन नगर के उत्तरी पश्चिमी भाग के एक खंडहर में कुछ दिनों से एक तांत्रिक ने डेरा डाला था। वह स्वयं को गोरखनाथ बताता था। उसके साथ उसके शिष्य भी थे। शिष्य प्रतिदिन नगर में जाकर तांत्रिक का यश बखान करते थे। तांत्रिक ने वहीं भैरव की स्थापना भी कर रखी थी। धीरे-धीरे नगर में खूब प्रचार हो गया, लोग अपना दुखड़ा लेकर तांत्रिक के पास जाने लगे। प्रतिदिन भैरव के सामने बकरे-मुर्गे की बलि चढ़ती। शराब की धार लगती। तांत्रिक और उसके चेलों ने भोज के विरूद्ध खूब दुष्प्रचार किया। राजा पर दुर्देवों का भार है। राजा का भार प्रजा को भोगना पड़ता है। बहुत बड़ा अकाल और महामारी आने वाली है। सारा नगर शमशान बन जाएगा। लोग भयभीत होने लगे। राजा के प्रति उनका विरोध बढ़ने लगा। तांत्रिक प्रत्येक बाधा में राजा के पाप को कारण बताता। प्रतिदिन सैकड़ों लोग तांत्रिक के पास जाने लगे। रोज दस-बारह बकरों की बलि होने लगी। मुर्गों की संख्या अलग। शराब भी खूब चढ़ने लगी। राजा ने भेदियों से कहा- तुम लोग यह पता लगाओ कि, दस-बारह बकरों और अनेक मुर्गों का मास लगभग चार मन होता है। यह कौन खाता है? तीन-चार मटके मदिरा कौन पीता है? भेदिए सक्रिय हुए, पता चला कि लगभग एक हजार सैनिक आसपास के गाँव में छुपे हुए हैं। कई परिवारों ने उन्हें शरण दे रखी है। शरण भी भयवश दे रखी है। सभी गाँव तेलंगाना की सेना के कारण त्रस्त हैं। राजा भोज की चिन्ता बढ़ गई। उन्होंने सोचा- वे खुद उस तांत्रिक से मिलेंगे। भोज एक साधारण नागरिक का वेश धारण कर तांत्रिक के पास गए। तांत्रिक ने कहा- तुम्हारे राजा का पाप है। भोज ने कहा- तब तो राजा का उपचार होना चाहिए। तांत्रिक ने कहा- होना चाहिए। वेशधारी भोज ने कहा- मैं राजा भोज को आपके पास भेज सकता हूँ। आप वचन दो कि, उनका पाप आप मिटा कर सारी प्रजा को सुखी कर दोगे। तांत्रिक ने कहा- मैं सारा पाप हमेशा के लिए खत्म कर दूँगा।

अगले दिन राजा ने चाकर भेजकर तांत्रिक को समाचार दिया कि, महाराज आपके पास आना चाहते हैं। पूजा की सामग्री बता दो। तांत्रिक ने खूब सारी सामग्री बता दी। उसने अपने भेदियों द्वारा दूर-दूर गाँवों में छुपी सैनिक टुकड़ियों को सावधान कर दिया। राजा भोज बचकर वापस नहीं जाने पाए।

भोज ने अपने भेदियों के मुखिया को बुलाया। वह भेदिया रूप बदलने में कुशल था। राजा ने कहा- तुम मेरे जैसे दस रूपधारी तैयार करो। वे दसों कुशल योद्धा भी हों। ऐसा ही किया गया। भोज ने अपनी रणनीति के अनुसार सारी रणनीति तैयार कर दी। भोज स्वयं तंत्र विद्या में प्रवीण थे।

वे जानते थे तांत्रिक कैसे-कैसे प्रयोग उन पर करेगा। पहले वह उन्हें एक काढ़ा पिलाएगा, जो भैरव का प्रसाद होगा। तांत्रिक ऐसा काढ़ा पिला कर नशे में लाकर अपने वश में किया करते हैं। भोज ने सोच लिया कि, वह उस प्रसाद वाले काढ़े में विष भी मिला सकता है। भोज ने विष का प्रभाव नष्ट करने वाली औषधि को खा लिया। सभी तरह से अस्त्र-शस्त्र कवच आदि धारण कर भोज तांत्रिक के पास पहुँच गए। उनके साथ वत्सराज,

सेनापति और पाँच अंगरक्षक थे। सभी दूर झाड़ियों में छुपे थे। तेलंगाना की टुकड़ियाँ चारों ओर घेरा डाले तैनात थीं। यदि भोज तांत्रिक और उसके शिष्यों से बच निकले तो बचकर जाने नहीं पाए।

तांत्रिक ने पहले तो राजा का खूब सत्कार किया। फिर भैरव के समक्ष रखा प्याला भोज को दिया। भोज ने उसे पी लिया। राजा जान गया, इसमें विष है। कड़वा होने के कारण राजा ने उल्टी होने का अभिनय किया और मौका देखकर अपने साथ लाए जल में से थोड़ा जल पी लिया। जल में विष नाशक औषधि मिली थी। थोड़ी देर में भोज ने झूमने का अभिनय किया। जैसे किसी प्रेत का प्रभाव हो गया हो। बीच-बीच में वे अपने पात्र में से जल भी पीते रहे। थोड़ी देर में भोज अपने स्थान पर खड़े हो गए। उन्होंने तलवार निकाल ली और झूमने लगे। तांत्रिक खुश था। जैसे ही तांत्रिक ने अपना खड़ग उठाना चाहा, वैसे ही भोज ने अपनी तलवार के वार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसका वध होते ही तांत्रिक के बीस-पच्चीस योद्धा-शिष्य भोज की ओर तलवारें लेकर झपटे। भोज ने अपनी तलवार से उन्हें काटना शुरू किया। उनके कटते ही एक और टुकड़ी वहाँ आ पहुँची तब तक वत्सराज, सेनापति और पाँचों योद्धा वहाँ पहुँच चुके थे। तेलंगाना की वह टुकड़ी समाप्त कर दी गई। उधर दस भोज रूपधारी चारों ओर घोड़ों पर सवार घेरा तोड़कर निकल भागने का अभिनय करने लगे। तेलंगाना की सेना दस भागों में बँट गई। पीछे से भोज की सेना ने भी आक्रमण कर दिया। सत्याश्रय की सारी तेलंगानी सेना काट डाली गई। वह तांत्रिक वास्तव में तेलंगाना का सेनापति था। उसके शिष्य कुशल योद्धा थे। इस प्रकार भोज ने तो विष पिया और गोरखनाथ मर गया।

मृत्यु तो शाश्वत है, उसे टालना या नकारना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। राजा भोज अत्यन्त वृद्ध हो गया था। रोगों ने भी भोज को बुरी तरह घेर लिया था। अर्द्धशती से भी ज्यादा भोज मालवा पर राज्य कर चुका था। उसे कमजोर देखकर तेलंग का राजा कर्णदेव अपने बाप का बदला लेने की तैयारी कर रहा था। उधर गुजरात के राजा भीम ने भी कर्णदेव का साथ देना तय कर लिया। भोज के पीछे कोई ऐसा वीर नहीं निकला, जो भोज के यश की रक्षा कर सके।

भोज का मन निराशा भाव से भरता जा रहा था। उसने जी भर कर दान करना शुरू किया। जितने तालाब, भवन बनवाए थे। उनकी मरम्मत करवाई। राजकोष शत्रु के हाथ लगे इससे अच्छा है वह प्रजा के कल्याण में लगे। परिवार से व धन सम्पत्ति से भोज का मोह टूट चुका था। एक दिन दरबार लगा था। उस दिन भोज कुछ अधिक ही उद्दिग्न था। दरबार में आते ही भोज ने कहा-

(26) 'भोज मरे तो हंडो कूण करे?' - यह उक्ति सुनते ही सारा दरबार सन्न रह गया। मरने पर साथ कौन जा सकता है। सबने अपना-अपना दिमाग लगाया। कोई भी तह तक नहीं जा पाया। राजा भोज मौन बैठा दरबारियों और विद्वानों के उत्तर की प्रतिक्षा कर रहा था। यद्यपि वह उत्तर से परिचित था, किन्तु वह इसी माध्यम से दरबारियों को एक सीख भी देना चाहता था।

इसी बीच वहाँ एक वृद्ध ने प्रवेश किया। उसने आते ही महाराज को प्रणाम किया और बिना अनुमति प्रवेश के लिए क्षमा माँगी। भोज ने कहा- मेरे दरबार में अचानक वही व्यक्ति आता है जो अत्यन्त दुखी होता है। हे नागरिक! तुम निश्चिंत होकर अपनी बात कहो। वृद्ध ने कहना शुरू किया-

'महाराजा की जय हो'। आपकी यश पताका ऊँची रहे। मैं आपकी नगरी का साधारण नागरिक हूँ। न मैं पंडित हूँ, न कवि, न ज्योतिषी और न ही मुझे कोई और विद्या आती है। मैं किसी पुरस्कार का अधिकारी भी नहीं हो सकता। मेरी व्यथा यह है कि, मेरे तीन बेटे और दो बेटियाँ हैं। मैंने सबके विवाह कर दिए। तीनों बेटों को मकान बनवा दिए। उनको उनके हिस्से की खेती बाँट दी। जब तक मुझमें शक्ति रही, तब तक मैंने खूब श्रम किया। जितनी सम्पत्ति पिता छोड़ गए थे उसे घटाया नहीं, बढ़ाया। मैं अब नब्बे वर्ष का हो चला हूँ। मृत्यु को भली भाँति अनुमान रहा हूँ। दस वर्षों से तीनों बेटे मुझे उपेक्षित मान कर कभी उस घर कभी इस घर धकेलते रहे हैं। बचाखुचा खाना एक समय देते रहे हैं। अब तो वह भी नहीं दे रहे हैं। बहुओं को क्या दोष दूँ। बेटे खोटे हैं। मुझे आप चाहे तो मृत्युदान दें या अन्नदान। मुझे पराभव की उपेक्षा और अपमान के बजाए मृत्यु पसंद है।

राजा भोज ने उस वृद्ध को आश्वस्त किया। भोज ने कहा- हे वृद्ध! आप अनुभवी हैं। आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। आपकी और मेरी समस्या एक जैसी है। प्रश्न है-

'राजा भोज मरे तो कूंण हंडो करे?' वृद्ध ने कहा- महाराज क्षमा करें। आपका प्रश्न जिस घटना पर आधारित है। जब तक वह घटना प्रकट नहीं करेंगे। तब तक आपके प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। राजा भोज ने न चाहते हुए भी घटना बताना शुरू कर दी। भोज ने कहा- 'मैंने मृत्यु को निकट जानकर छोटी रानी से कहा- तुम मेरी सबसे प्रिय हो। मैंने तुम्हें सब रानियों से अधिक सुख-सुविधाएँ दी हैं। मेरे मोह की पात्र भी सदा तुम ही रही हो। मैं चाहता हूँ। मेरी मृत्यु होने पर तुम भी मेरे साथ चलो। उस रानी ने कहा- मेरा आपके साथ चलना तो असम्भव है ही। मैं तो आपके मरते ही दूसरे पुरुष का वरण कर लूँगी।' रानी से ऐसी बात सुनकर मैं दंग रह गया। मुझे संताप भी बहुत हुआ। वहाँ से मैं दूसरी रानी के पास गया। उससे भी मैंने यही बात कही। उसने कहा- मैं आपके साथ नहीं चल सकूँगी। बल्कि मैं तो आपके दाहसंस्कार के पश्चात् तुम से अपना नाता ही तोड़ लूँगी। श्मशान तक आपके साथ चलने का वचन मैं आपको दे सकती हूँ। दूसरी रानी का उत्तर सुनकर मैं तीसरी रानी के पास गया। तीसरी रानी से भी मैंने वही बात कही। उसने कहा- आपके साथ तो मैं नहीं चल सकूँगी। किन्तु तेरह दिन तक मैं आपका शोक पालूँगी। चौथी रानी से भी मैंने वही प्रश्न किया, उसका उत्तर कुछ सांत्वना भरा मिला। उसने कहा- 'महाराज कौन किसके साथ गया है? आप मोहमुक्त हो जाएँ। मैं आपके साथ तो नहीं चलूँगी, किन्तु जीवनपर्यन्त आपका यश बखानती रहूँगी। अन्ततः मैं पटरानी के पास गया। उससे भी मैंने यही प्रश्न किया। पटरानी ने अत्यन्त धैर्य के साथ मुझे आसन पर बैठाया। फिर संयत भाव से बोली- महाराज! आप मृत्यु की बात क्यों करते हैं? ईश्वर आपको चिरायु करे और आप हमारा पालन-पोषण करते रहें। आपकी छत्रछाया में मालवा का राज्य और हम सुरक्षित हैं। मैं जानती हूँ मृत्यु शाश्वत है। मैं आपको वचन देती हूँ कि, यदि आपकी मृत्यु पर्यन्त मैं जीवित बनी रही, तो मैं आपका संग नहीं छोड़ूँगी। पटरानी का उत्तर पाकर मैं आश्वस्त हुआ। वहाँ से सीधा दरबार में चला आया। अब तो आप मेरा प्रश्न समझ गए होंगे।

वृद्ध ने कहा- महाराज! आपका प्रश्न बहुत गूढ़ है। मैं इसका उत्तर देने का प्रयत्न कर रहा हूँ। 'आपकी पहली रानी का अर्थ है- आपका सिंहासन, आपकी सत्ता। आपकी मृत्यु के तत्काल बाद राजसत्ता दूसरे पुरुष का वरण कर लेगी। वह पुरुष आपका स्थान ग्रहण कर लेगा। दूसरी रानी आपका लोक व्यवहार है। मृत्यु के पश्चात् जो व्यवहारी जन होते हैं, वे श्मशाम तक साथ जाते हैं। दाह संस्कार के पश्चात् वे उस प्राणी से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखते। तीसरी रानी आपके ऐश्वर्य भोग का प्रतीक है। ऐश्वर्य भोग इसी लोक में समाप्त हो जाता है। उसका अस्तित्त्व भी अस्थाई होता है। तेरहवीं होने के पश्चात् वही ऐश्वर्य सुख जो आपको प्राप्त है, वह दूसरों को प्राप्त होने लगेगा। चौथी रानी आपके दान का प्रतीक है। आपने जो दान, पुण्य, लोक कल्याण हित किया है। वह चिरस्थायी रहेगा। वह नहीं मिटेगा। पाँचवीं रानी आपके धर्म का प्रतीक है। मनुष्य के मरने के पश्चात् केवल धर्म ही साथ जाता है।'

'भोज ने जब वृद्ध की व्याख्या सुनी, तब दरबारियों से कहा- आप इसे मेरा अंतिम संदेश मानें और इसको सदा ध्यान में रखें।'

राज भोज ने वृद्ध से कहा- हे अनुभव वृद्ध महानुभाव! आपके उत्तर से मैं आश्वस्त हो गया। वस्तुतः मेरी किसी रानी ने ऐसा कोई व्यवहार मेरे साथ नहीं किया था। मेरी तो केवल एक ही रानी है। मैं अपने दरबारियों को संदेश देना चाहता था। आप अनुभवी हैं मेरी एक और 'जिज्ञासा' है उसे भी आप शान्त करें।

(27) 'जिज्ञासा' - वृद्ध का उत्साह बढ़ गया था। उसने कहा- महाराज! आप जिज्ञासा प्रकट करें, मैं आपको अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार उत्तर देने का प्रयास करूँगा।

– 'सुख क्या है?'
– 'दुखियों की सेवा से प्राप्त संतुष्टि।'
– 'दुख क्या है?'
– 'परपीड़न से प्राप्त आत्म ग्लानि भाव।'
– 'निद्रा क्या है?'
– 'सार्थक श्रम का उपहार।'
– 'अनिद्रा क्या है?'
– 'वासनाओं की अतृप्ति।'
– 'स्थाई क्या है?'
– 'धर्म।'
– 'संचय किस का करें?'
– 'दान का।'
– 'त्याग किस का करें?'
– 'अहंकार का।'
– 'वह क्या है जो केवल यहाँ है वहाँ नहीं?'
– 'भोग।'
– 'वह क्या है जो यहाँ भी है वहाँ भी है?'
– 'धर्माचरण का फल।'
– 'वह क्या है जो यहाँ नहीं है, पर वहाँ है?'
– 'तपस्या का सुख।'
– 'वह क्या है जो यहाँ नहीं है वहाँ भी नहीं है?'
– 'परधन हरण से प्राप्त सुख। न इस लोक में है न उस लोक में। यह इस लोक में भय और नाश पैदा करता है। वहाँ नरक का दुख।'
– 'शाश्वत क्या है?'
– 'मृत्यु।'
– 'वह क्या है जो जा कर लौटता नहीं?'
– 'बचपन।'
– 'वह क्या है जो आकर जाता नहीं?'
– 'वृद्धावस्था।'

भोज ने कहा– हे महानुभाव! आप धन्य हैं। अपना परिचय दें। आप साधारण जन नहीं हैं। वृद्ध ने कहा– 'हे भोज! मैं ज्ञान हूँ। आपके राज्य में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की। अब उपेक्षित हो रहा हूँ। मेरा बल नष्ट हो गया है। मैं मृत्युगामी हो रहा हूँ। आपके अवसान के पश्चात् मेरा भी अवसान निश्चित है। मेरे पुत्र ही मेरी अवज्ञा और उपेक्षा करने लगे हैं। जिस प्रकार मैंने अपने पिता और पितामह के यश–सम्पत्ति में वृद्धि की, वैसा मेरी सन्तानें नहीं कर रहीं। ज्ञानी के लिए ज्ञानप्राप्ति हेतु सन्तोष उचित नहीं है। उसे सदा ज्ञान प्राप्ति हेतु जिज्ञासु बने रहना चाहिए। सन्तोष तो उन्हें फल प्राप्ति में चाहिए। वे अहंकारी होते जा रहे हैं। मेरा पराभव निश्चित है। पराभव, मृत्यु का ही पर्याय है।' ऐसा कहकर ज्ञान वृद्ध दरबार से बाहर जाने के लिए मुड़ गया। सारे विद्वान जड़वत् बैठे रह गए। राजा भोज संतुष्ट थे। समूचा दरबार अवाक था।

भोज और विक्रम का नाम पूरे देश में विख्यात हुआ है। भोज का नाम तो और भी अधिक हुआ। दक्षिण से लेकर पाकिस्तान के झंग–मंघयाना, मुलतान, लाहोर, मियांवाली इससे भी ऊपर के भाग में भोज का नाम ख्यात है। उस क्षेत्र में भोज, भोजा, भोजराज, भोजमल से ऐसे नाम बहुतायत से पाए जाते हैं। पश्चिमी पाकिस्तान के मुलतान क्षेत्र में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है।

(28) 'न अक्कल न ओज नाम रखैंदा भोज'– यहाँ ओज का अर्थ है पराक्रम। अर्थात् न तो वृद्धि (ज्ञान) है और न पराक्रम। नाम भोज रखवाना चाहता है। इस प्रकार भोज इस इलाके में ज्ञान और पराक्रम का प्रतीक माना जाता है। मुलतान में एक साहूकार ने अपना नाम भोज रखवाना चाहा। पहले उसका नाम थूमी था। थूम का अर्थ होता है लहसुन। उसकी पत्नी ने कहा– यह नाम तो अच्छा नहीं है। जैसे थूम (लहसुन) से बदबू आती है, वैसे आपके नाम से बदबू आती है। मुझे तो अब आपके वदन से भी थूम की बदबू आने लगी है। आप या तो अपना नाम बदल लो या मुझे मेरे पीहर भेज दो। बेचारा साहूकार परेशान। उसने एक बड़ा भोज किया और पूरे इलाके को बुलाया। सबको इकट्ठाकर के कहा– आज से मेरा नाम थूमीमल नहीं है। आज से मेरा नाम– 'भोज लाल होगा।' सबने कहा– ठीक है। सबने पेटभर कर खाना खाया और आपस में कहते रहे इस थूमीमल में न तो अक्कल है और न ओज है और नाम भोज रखवाता है। अरे! भोज तो दयालु और दानी था। यह तो जालिम है। ब्याज पर ब्याज जोड़ता है।

लेन-देन दोनों में ठगता है। दान के नाम पर तो इसका मुँह पीला पड़ जाता है। इसको भोज कैसे कहें? डरपोक इतना कि, जरा सी भपकी में पसीना छूट जाए। पिछले दिनों वजीरों का डाका पड़ा था, तब यह घर छोड़कर जंगल में भाग गया था। वैसे इसके पास बन्दूक भी है। गोली की धम्मक से नाड़ा ढीला पड़ जाता है। खाना खिलाया तो कौन सा अहसान कर दिया। पैसा तो हमारा ही लगा। बेचारा थूमीमल ही बना रहा। भोज नहीं बन सका।

सचमुच भोज बनने के लिए तो भोज बनना पड़ता है। जैसे एक किंवदन्ती के अनुसार सिंहासन बत्तीसी की बत्तीसवीं पुतली ने कहा था। सिंहासन पर बैठना है तो पहले विक्रमादित्य का विक्रम हासिल करो।

जिस प्रकार भोज बनने के लिए भोज बनना पड़ता है, उसी प्रकार विक्रम बनने के लिए भी विक्रम बनना पड़ता है। विक्रम जैसा पराक्रम, विक्रम जैसा प्रताप, विक्रम जैसी आभा यदि हो तो विक्रमादित्य कहला सकते हो। इसीलिए कहा है-

(29) 'विक्रम जेसो विक्रम साजो तो सिंघासन बिराजो' यह लोकोक्ति सुनी तो बहुत थी, किन्तु इसकी अन्तर्कथा सुनाई शालिगराम जी ने गाँव रीछालाल मुहाँ में। बात यों बनी कि उज्जैन के उत्तर-पश्चिम भाग में एक टीला था। टीले के नीचे एक गाँव। टीले पर एक देवस्थान था। प्रति रविवार वहाँ चौकी होती थी। देवता का भाव एक आठ वर्षीय कन्या को आता था। वही दुखियों का न्याय करती थी। दुख-सुख सुनती और सबके दोरम-सोरम मेटती-समेटती थी। अनेक झगड़ों का निपटारा वहीं होता था। दूध का दूध और पानी का पानी। यह बात राजा भोज के पास भी पहुँची। राजा भोज अपने मंत्रियों और पंडितों के साथ साधारण वेशभूषा में उस देवरे पर पहुँचा। कन्या ने भोज और उनके मंत्रियों-पंडितों के आने पर जोरदार ठहाका लगाया- 'अरे राजा भोज! तू कितना भी वेश बदल ले, हमसे नहीं छुप सकता। पूछ क्या पूछना चाहता है?' राजा भोज औचक हो गया। कुछ भी नहीं बोल पाया। तब कन्या बोली- 'तू क्या पूछेगा?' मैं बताती हूँ। यह विक्रमादित्य की गादी है। मैं उनकी कुलदेवी हूँ। तू सावधान हो जा। तेलंगाना की सेना तेरी राजधानी को घेरने के लिए आ चुकी है। जा और फौरन उसको रोक! वरना उज्जैन से भी हाथ धो बैठेगा और प्राणों से भी।'

भोज घबरा उठा। उसने फौरन सेना तैयार की और तेलंगाना की सेना के आक्रमण को रोकने के लिए कूच कर दिया। भोज की तत्परता और सेना की विशालता देखकर तेलंगाना की सेना वापिस पलट गई। इस सारी घटना ने भोज को विचलित कर दिया। उसने पंडितों, ज्योतिषियों से सलाह ली। सबने वर्जित किया, किन्तु भोज ने किसी की नहीं सुनी। टेकड़ी (टीले) की खुदाई शुरू कर दी गई। थोड़ी खुदाई के बाद एक विशाल और सुन्दर सिंहासन दिखने लगा। जल लाकर उस सिंहासन को खूब धोया गया। दही से मल-मलकर चमकाया गया। शिप्रा और नर्मदा के जल से अभिषेक किया गया। पंडितों ने मुहूर्त्त निकाला। राजा भोज माता कुलदेवी से आज्ञा लेने गया। माता ने पाती (स्वीकृति) नहीं दी। राजा भोज ने भैरव से आज्ञा माँगी। वहाँ से भी आज्ञा नहीं मिली। भगवान महाकाल ने भी आज्ञा नहीं दी। भोज ने हठ पकड़ ली सिंहासन पर बैठूँगा। मैं मालवा का राजा हूँ। इस सिंहासन पर मेरा अधिकार है।

पंडितों ने मंत्रोच्चार प्रारम्भ किया। शुभ मुहूर्त्त देख भोज सिंहासन के निकट गया और अपना पैर सिंहासन पर रखने को ही था कि एक पुतली बोली- 'भोज सावधान! सिंहासन पर मत चढ़ो, वरना अनिष्ट हो जाएगा।' भोज चौंककर पीछे हटा। दूसरी पुतली भी यही बोली। एक-एक करके इकत्तीस पुतलियों ने भोज को सिंहासन पर बैठने के लिए मना किया। भोज ने भी हठ नहीं छोड़ा। जब भोज बत्तीसवीं बार अपना पैर सिंहासन की ओर बढ़ाने लगा, तब बत्तीसवीं पुतली बोली- 'भोज! जहाँ खड़े हो वहीं रुक जाओ। बार-बार सावधान करने पर भी तुम अपनी हठ पर डटे हो। इस सिंहासन पर विक्रमादित्य के सिवा कोई भी नहीं बैठ सकता। वैसा पराक्रम, वैसी तपस्या, वैसा प्रताप अभी तुमने अर्जित नहीं किया है। 'विक्रम जेसो विक्रम साजो, तो सिंघासन बिराजो'। अब तुम इस सिंहासन पर कभी भी नहीं बैठ पाओगे।' ऐसा कहकर पुतलियाँ सिंहासन को लेकर आकाश में उड़ गयीं। थोड़ी देर में सिंहासन आँखों से ओझल हो गया। भोज अपने मंत्रियों और पंडितों सहित अवाक् होकर ठगा-सा खड़ा रह गया।

सिंहासन के चले जाने से प्रजा की आस्था और विश्वास का आधार वह देवस्थान भी प्रभावहीन हो गया। प्रजा में भीतर-भीतर भोज के प्रति आक्रोश बढ़ गया।

भोज ने पंडितों से पूछा कि, उस सिंहासन पर जब एक साधारण कन्या बैठ सकती है, तब मैं क्यों नहीं बैठ पाया?

वह कन्या निष्कपट व निस्वार्थी थी। उसके कथन के अनुसार वह विक्रमादित्य की कुलदेवी का अवतार भी थी। आप अपनी तुलना उस कन्या से नहीं करें। राजा भोज का अहंकार टूट गया। विवेक जागृत हो गया। अपनी हठ पर वह पछताने लगा।

राजा तो राजा विक्रमादित्य अथवा बलि राजा। यह मान्यता लोक में आज भी जीवित है। भोज को भी राजा भोज ही कहा जाता है, किन्तु कहते हैं- उज्जैन की उपेक्षा करने के कारण उनका महत्त्व घट गया। वे दानी भोज और ज्ञानी भोज बनकर रह गये। उन्हें धार देश का राजा कहा जाने लगा। लोक मालवा नहीं धार और उज्जैन समझता है।

एक उक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

(30) 'विक्रमादित्य राजा, भोज बजावे बाजा' यदि हम लोकाचार में जाएँ, तो दुल्हाराज घोड़े पर चलता है और सामने बाजे वाले चलते हैं। यह एक तुलना है। दोनों का स्तर बताना है। लोक बहुत वाचाल होता है। दोनों विभूतियाँ अपने-अपने स्थान पर महान हैं, किन्तु तुलना करने पर दोनों लोक की तराजू में तुल जाते हैं। लगभग यही आशय सिंहासन बत्तीसी की पुतलियों ने भी प्रकट किया था।

(31) राजा भोज ने जितना दान, उपहार ब्राह्मणों, कवियों और विद्वानों को दिया, उस तुलना में गरीबों और वंचितों को वे नहीं दे पाये। इसके बावजूद भी गुजरात से आने वाले पंडित जैसे लगने वाले ब्राह्मणों को तो खूब दान मिला। इससे साधारण नागरिक भीतर ही भीतर रुष्ट थे। प्रकट रूप से कोई भी अपना रोष व्यक्त नहीं कर पाता था।

राजा भोज यदाकदा वेश बदलकर रात्रि में नगर भ्रमण करने निकलते थे। एक बार वे स्वयं और उनके महामंत्री वत्सराज भी उनके साथ थे। उन्हें एक मकान से कुछ आवाजें सुनाई दीं। वे दोनों वहीं रुक गये। उन्हें लगा, मानो भीतर काव्य-गोष्ठी चल रही हो। फिर उन्होंने सुना कोई किसी को महाराज भोज सम्बोधित कर रहा है। उनकी जिज्ञासा बढ़ गई। वे काव्य-गोष्ठी सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। भीतर के सम्बोधन से ऐसा आभास हो रहा था, मानो 'राजा भोज का दरबार लगा हो और कविजन अपना काव्य प्रस्तुत कर रहे हों'। उस काव्य-गोष्ठी के कुछ पद इस प्रकार थे-

कांख में पोथी धरो, कर लो बामण वेस।
मूरखड़ो राजो वठे, चालो धारा देस॥

काव्य-पद सुनकर एक आवाज आई- वाह-वाह! मंत्री इस महाकवि को एक सहस्र मुद्रा भेंट में दे दो।

दूसरा पद पढ़ा गया-

बिसकरमो बेघर हुओ, बामण मारे मोज।
वाह रे धारा की पुरी, वाह रे राजा भोज!

वाह-वाह! और भेंट।

तीसरा पद-

धारा में दीवो बरे, बिना तेल बिन बाट।
बिसकरमो भूखां मरे, बामण के घर ठाठ॥

फिर वही 'वाह-वाह और भेंट'।

चौथा पद-

बामणा की जुड़े मेकलां, रुच-रुच छाणे भांग।
आधा जाणो भाटड़ा, आधा जाणो भांड॥

पाँचवाँ पद-

अन्न उगावे, भूखो सोवे, करे मसखरा भोज।
भाट, भांडड़ा सीरो खावे, वाह रे राजा भोज॥

छठा पद–

भोजाजी का राज में, धिक बामण की कोम।
आधा जाया भांड का, आधा जाणो डोम॥

सातवाँ पद–

परदेसाँ का बामणा, भोज न जाणे खोट।
गायाँ तो भूखी मरे, हाथी खावे रोट॥

आठवाँ पद–

धारा नगरी में बसे, कवि पंडित विद्वान।
शाणो राजो भोज हे, मूरखड़ो करसान॥

नौवाँ पद–

गुजर देस का भांडड़ा, हगरां के घट ज्ञान।
वाह रे राजा भोज जी, खूब करी पेहचान॥

दसवाँ पद–

गुजर देस ती बामण आवे, मोहरां ठग ले जाय।
चरकल्याँ चुग्गो नहीं, काग जलेबी खाय॥

ग्यारहवाँ पद–

गुजर देस ती आवे बामण, भेद भरम ले जाय।
भोजराज पे धावो बोलो, भीमा ने उगसाय॥

ऐसे और भी कई पद, प्रत्येक पद पर वाह–वाह और भेंट, उपहार देने की आज्ञा। निश्चित ही यह भोजराज के प्रति रोष प्रकट करने का माध्यम था।

भोजराज समझ गये कि प्रजा ब्राह्मणों के प्रति बहुत रुष्ट है। केवल रुष्ट ही नहीं, उन्हें भांड, भाट, डोम और कुम्हार आदि अपशब्दों से सम्बोधित कर उनका और मेरा उपहास भी उड़ा रही है। प्रजा इसे पक्षपात मान रही है। प्रजा यह भी जान रही है कि मेरे द्वारा पात्र–अपात्र जाने बिना दान दिया जा रहा है। प्रजा यह भी कहना चाहती है कि मेरे राज्य में किसान और विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पी उपेक्षित हैं। किसान अन्न पैदा करता है फिर भी भूखा और विपन्न है। अपात्र लोग मौज उड़ा रहे हैं। विशेष रूप से गुजरात से आने वाले ब्राह्मणों के प्रति प्रजा बहुत आक्रोशित है। प्रजा का यह भी मानना है कि वे ब्राह्मण भी हैं अथवा भांड–भाट। बगल में पोथी और ब्राह्मण का वेश! प्रजा तो उन्हें गुजरात के राजा भीमदेव का भेदिया मानती है। यहाँ तक कि प्रजा अपने राजा (मुझे) को मूर्ख तक मानने लगी है। यह सब जान–समझकर भोज सतर्क हो गया और प्रजा की भावना को समझकर आचरण करने लगा।

एक पारसी (पहेली) कई दिनों से समझ में नहीं आ रही थी–

(32) 'भोज ने छला क्यों, तांत्रिक गला क्यों?' इस पहेली को शिवजी आचार्य कंजार्ड़ा के सहज ही सुलझा देते हैं। नब्बे वर्ष की दीर्घ आयु में भी स्मृति एकदम चेतमान। मैंने जैसे ही उनसे इस पहेली के विषय में बात की, वे तत्काल बोल पड़े– 'अरे! यह तो बहुत सीधी–सी पारसी है।'

राजा भोज के उत्कर्ष को देखते हुए पड़ोसी राज्यों को उनसे बहुत ईर्ष्या हो रही थी। तेलंगाना के राजा तो राजा मुंज के समय से ही बार–बार पराजित और अपमानित होते आ रहे थे। उधर गुजरात का भीमदेव भी राजा भोज के बढ़ते प्रभाव से बहुत चिन्तित था। उसकी इच्छा थी मालवा को गुजरात में मिलाना। भोज के रहते यह सम्भव नहीं था। उसे तो उल्टा यह भय लगने लगा था कि कहीं भोज गुजरात की ओर नहीं बढ़ जाए। मेवाड़ भी चिन्तित था। तेलंगाना और गुजरात ने मिलकर भी मालवा पर आक्रमण कर देख लिया था। इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली।

इसी बीच बंगाल का एक तांत्रिक तेलंगाना जा पहुँचा। वह बहुत बड़ा तांत्रिक था। उसने तेलंगाना में कई आश्चर्यजनक प्रदर्शन किये। तेलंगाना के राजा को एक युक्ति सूझी। उसने उस तांत्रिक से कहा कि यदि तुम मालवा देश के राजा भोज को अपनी विद्या से मार सको, तो हम तुम्हें एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देंगे। अगर मार भी नहीं सको, तो पंगु या पागल बना दो। उस तांत्रिक ने हामी भर ली और वह धार आ पहुँचा। कुछ दिन वह धार के बाहर डेरा

डाले रहा। उसका खूब प्रचार हो गया। बात राजा भोज तक आन पहुँची। भोज का वास्ता पहले भी कई तांत्रिकों से पड़ चुका था। वह तो खुद भी तांत्रिक विद्या का जानकार था। भोज ने उसे अपने दरबार में बुलवा भेजा। तांत्रिक तो इसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। वह भोज के दरबार में जा पहुँचा और आज्ञा मिलने पर तांत्रिक विद्या के करतब दिखाने लगा। भोज ने कहा- 'तुम तांत्रिक हो या जादूगर?' 'तांत्रिक और जादूगर, दोनों।' अभी तो आपने मेरे जादू के करतब देखे हैं। मैं आपको ऐसा तांत्रिक करिश्मा दिखाना चाहता हूँ, जैसा आज तक किसी ने नहीं दिखाया होगा। इसके लिए मैं आप से एकान्त में बात करना चाहता हूँ।

एकान्त में मिलकर तांत्रिक ने भोज से कहा- मैंने लम्बे समय तक भगवान महाकाल और भैरव की तपस्या की है। माता हरसिद्धि को प्रसन्न किया है। मैं उज्जैन में भर्तृहरि गुफाओं में बारह वर्ष तक गुप्त रूप से रहा हूँ। वहीं रहकर मैंने एक अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त की है। उस सिद्धि के बल पर मैं किसी भी एक व्यक्ति को अमर बना सकता हूँ। तेलंगाना के सत्याश्रय और गुजरात के भीमदेव ने मुझे खूब प्रलोभन दिया। मैंने सारे प्रलोभन ठुकरा दिये। आप धर्मात्मा राजा हैं, प्रजापालक हैं। मैं आपको अमर बनाना चाहता हूँ। सत्याश्रय और भीमदेव का नाम सुनते ही राजा भोज सतर्क हो गया। भोज ने प्रकट में तांत्रिक से अमर होने की प्रक्रिया पूछी। उसने सभी बात भोज को समझा दी। भोज ने अपने मंत्रियों और ज्योतिषियों से राय ली। सबने मना किया- 'महाराज! आप स्वयं ज्ञानवान हैं। आज तक इस लोक में कोई अमर नहीं हुआ? यह तांत्रिक कैसे अमर कर सकेगा?'

भोज ने तांत्रिक से कहा- 'तुम अपना काम शुरू करो।' उसने एक बड़ा कड़ाह मँगवाया। बड़ी चूल खुदवाकर उस पर कड़ाह रखवा दिया। नीचे आग जलवाकर कड़ाह को घी से भरवा दिया। उसने मंत्र पढ़ना शुरू किया। मंत्रोच्चारण के साथ वह अपने झोले में से कुछ सामग्री उस घी में डालता जा रहा था। घी खौलने लगा। तब उसने राजा भोज से कहा- 'शुभ मुहूर्त्त आ गया है। आप इस कड़ाह में कूद जाओ। मैं मंत्रोच्चारण द्वारा आपको इस कड़ाह में से प्रकट करूँगा। आपका वह नया शरीर अमर हो जायेगा।' भोज को मृत्यु सामने दिखलाई दे रही थी। तांत्रिक ने कहा- 'भोजराज! विलम्ब मत करो। शुभ मुहूर्त्त टल जायेगा। आप नहीं चाह रहे हो, तो फिर मैं इसमें कूद रहा हूँ। इस पट्ट पर श्लोक लिखे हैं। आप इनका उच्चारण करते हुए इस प्याले में रखी सामग्री को कड़ाह में डालते जाना। मैं पुनः प्रकट हो जाऊँगा।' वह कड़ाह में कूदने को तत्पर हो उठा, मानो कूद ही पड़ेगा। भोज ने सोचा- 'जब यह स्वयं ही कूदना चाह रहा है, तब तो इसकी बात सत्य है'। एकबारगी उनका मन कड़ाह में कूद पड़ने के लिए तत्पर हो उठा। भोज कड़ाह में कूदना ही चाहता था कि सरस्वती सावधान हो उठी। माता ने तत्काल भोज का भ्रम मिटा दिया। उसका विवेक जाग्रत हो गया। तभी माता कालका ने अपना भैरव प्रकट किया। भैरव ने उस तांत्रिक को कड़ाह में धकेल दिया। भोज ने पट्ट पर लिखे श्लोक पढ़ने और प्याले की सामग्री कड़ाह में डालने का प्रयत्न शुरू करना चाहा, तभी उसके मन में विचार उठा कि, यदि वह तांत्रिक सचमुच अमर होकर कड़ाह में से प्रकट हो गया, तब तो वह मुझे ही मार डालेगा और मालवा पर अधिकार कर लेगा। मैं भस्मासुर क्यों पैदा करूँ? आज उसे अपने चाचा मुंज द्वारा उसका वध करवाने की आवश्यकता उचित लगने लगी थी। कौन राजा चाहेगा कि उससे बली और तेजस्वी व्यक्ति जीवित रहे। भोज ने वह श्लोक पट्टिका और प्याला धरती पर फेंक दिया। तांत्रिक खौलते घी में जलकर नष्ट हो गया। इसलिए कहा गया कि 'राजा भोज ने छला क्यों, तांत्रिक गला क्यों?' उत्तर होगा- 'स्वार्थ'।

राजा भोज में स्वार्थ का भाव पैदा हो गया। इस कारण उसने मंत्रोच्चार नहीं किया। यह बात अलग है कि तांत्रिक अपनी करनी का फल भोग गया। किन्तु प्रकट में तो राजा भोज ने उसके साथ छल ही किया। भोज में यदि स्वार्थ भाव नहीं प्रकट होता, तब वह मंत्रोच्चार अवश्य करता। यह बात अलग है कि तांत्रिक प्रकट होता अथवा न होता। कहते हैं कि राजा भोज ने उस तांत्रिक का 'रजत मुखौटा' बनवाकर धार किले के द्वार पर टँगवा दिया। लोग उसे भैरव मानकर पूजने लगे। वह रजत मुखड़ा भैरव बना या नहीं बना, किन्तु भोज के मन में बैठा भय समाप्त हो गया। वह पर्व-त्योहार पर उस भैरव की पूजा भी करता था। भोज जब भी उस मुखौटे को देखता। उसे वह घटना याद हो आती थी। कहावत बहुत पुरानी है कि 'जैसा राजा वैसी प्रजा' अर्थात् राजा सत्यनिष्ठ, सदाचारी और धर्मात्मा होगा तो प्रजा भी वैसी ही होगी और यदि राजा भ्रष्टाचारी, दुराचारी और अधर्मी होगा तो प्रजा भी वैसी ही हो जाएगी। ऐसी ही एक उक्ति सुनने को मिली है-

(33) 'राजा के मन पाप, धरती लागे ताप' एक बार राजा भोज रात्रि में नगर भ्रमण कर रहे थे। उनके साथ उनका महामंत्री वत्सराज भी था। घूमते-घूमते बहुत रात हो गई। भोज ने कहा- 'महामंत्री! बहुत जोर की प्यास लगी है।' वत्सराज ने कहा- 'महाराज! सामने दाँई तरफ एक गणिका का घर है और थोड़ी दूरी पर नगर सेठ का घर है। आपकी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चलें।' भोज ने कहा- 'नगरसेठ से तो हमारा बैर है। कल हम उसकी सारी सम्पत्ति जप्त करवाने वाले हैं। उसे धरती में दबा हुआ अपार धन प्राप्त हुआ है। वह सब राज की सम्पत्ति है। आप तो गणिका के घर चलो।'

वत्सराज ने गणिका का द्वार खटखटाया। चाकर ने द्वार खोला। महामंत्री ने कहा- तुम अपनी स्वामिनी को जगाओ। कहो, राजा भोज आए हैं। चाकर दौड़ा-दौड़ा गया और गणिका को जगा दिया। गणिका तत्काल तैयार होकर द्वार पर आई और राजा का स्वागत कर भीतर ले गई। आसन पर बैठाकर आज्ञा के लिए तत्पर खड़ी रही। वत्सराज ने कहा- महाराज को प्यास लगी है। पानी पिलाओ। गणिका भीतर गई और शिकंजी बनाकर लाई। राजा भोज ने शिकंजी का घूँट भरकर कहा- 'गणिका, निम्बू का स्वाद कम है। क्या और निम्बू नहीं हैं तुम्हारे पास?' 'महाराज! निम्बू तो हैं। एकदम ताजा हैं। मेरे स्वयं के बाग में लगे हैं। एकदम निरोगे हैं। इन्हीं निम्बुओं में कल तक खूब रस था। इनका रस अचानक सूख गया।' पहले एक निम्बू से दो गिलास शिकंजी बनती थी, आज दो निम्बुओं से एक गिलास शिकंजी भी नहीं बनी। कहते हैं- 'राजा के मन पाप, धरती लागे ताप', राजा के मन में पाप समा जाने पर धरती में ताप बढ़ जाता है, तब फलों व फसलों का रस सूख जाता है। जबकि धार में तो यह बात भी नहीं है। आप तो धर्मात्मा राजा हैं।' भोज मन ही मन मुँहफट गणिका का व्यंग्य समझ गया। शिकंजी पीकर भोज महलों में वापिस लौट गया। वह रात भर व्याकुल रहा। नींद कैसे आती। प्रातःकाल उसने नगरसेठ का धन जप्त करने का आदेश रद्द कर दिया।

दूसरे दिन वह फिर वत्सराज के साथ गणिका के घर पहुँचा। उसने कहा- बाग में से दो निम्बू मँगवाओ। गणिका ने चाकर को भेजकर दो निम्बू मँगवाये। भोज ने कहा- 'इनकी शिकंजी बनवाओ'। गणिका ने शिकंजी बनवाई। एक निम्बू में तीन गिलास शिकंजी बनी। उस रहस्य को राजा भोज और गणिका दोनों समझ गये थे। वत्सराज तो केवल शिकंजी पीने में सहभागी थे।

(34) एक बार राजा भोज की सवारी निकल रही थी। राजा भोज ने देखा एक व्यक्ति बिखरे हुए अनाज के दानों को बीन-बीनकर एक टोकरी में भर रहा था। इसमें उसकी पत्नी भी सहयोग कर रही थी। राजा भोज ने सवारी रुकवाई और उन दोनों पति-पत्नी को अपने पास बुलाया। राजा भोज ने उनसे पूछा- 'तुम ये दाने क्यों बीन रहे हो?' स्त्री ने उत्तर दिया- 'पेट भरने के लिए'। 'क्या तुम दिन भर में इतने दाने बीन पाओगे कि तुम्हारा पेट भर सके?' स्त्री बोली- 'मेरे तीन बच्चे भी हैं। तीनों लड़कियाँ हैं। तीनों जवान हो गई हैं। कोई भी उन्हें ब्याहने के लिए तैयार नहीं है। हमने तो उन्हें यहाँ तक छूट दे दी कि तुम किसी लड़के के साथ भाग जाओ, जिससे हमारा पिण्ड तो छूट जाए। कोई उन्हें भगाकर ले जाने के लिए भी तैयार नहीं है। फसल के दिनों में हम खेतों में बिखरी हुई बालियाँ चुनते हैं। उसके बाद मार्ग में बिखरे अनाज के कण और बरसात में हरे साक आदि से उदर-पोषण करते हैं।'

राजा भोज ने कहा- 'तुम इस प्रकार मार्गों से अथवा खेतों से अनाज बीनने के बजाये खेतों में अथवा अन्य शिल्पियों के यहाँ श्रम करके सम्मानजनक ढंग से धन कमाकर अपना और अपने परिवार का उदर-पोषण क्यों नहीं करते?' स्त्री ने एक व्यंग्यात्मक हँसी हँसकर कहा- 'महाराज! आप तो दिन-रात महलों में निवास करते हैं। कवियों, पंडितों के साथ ज्ञान-चर्चा और उन्हें दान-पुण्य देने के सिवा कुछ भान ही नहीं है। किसान अपने जोग अनाज भी नहीं पैदा कर पा रहा है। उनके पास की बहुत सारी जमीनें अपने ब्राह्मणों और कवि, पंडितों को दान में दिलवा दीं।

राजा का विरोध कौन करे? इतनी कम जमीनें किसानों के पास बची हैं कि उनका स्वयं का उदरपोषण ही नहीं हो पाता। जो जमीनें आपने दान में दिलवाई हैं, वे सब बिना बोए ही पड़ी रह जाती हैं। ब्राह्मण समाज न स्वयं खेती कर सकता है और न किसी को इस भय से खेती करने के लिए देता है कि कहीं इस पर खेती करने वाला किसान ही अधिकार न कर ले। इस प्रकार राज्य की अधिकतर खेती व्यर्थ पड़ी है। इसी प्रकार जब किसान के पास पेट भरने के लिए ही व्यवस्था नहीं है, तब यहाँ के सेठ साहूकार भी व्यवसाय कैसे करें? शिल्पियों को धन्धा कहाँ से मिले? सब धार नगर से पलायन कर गये हैं। अब आप ही बताइए, हम दाने नहीं बीनें तो क्या करें?'

स्त्री की बात सुनकर राजा भोज हतप्रभ हो गया। उसके पास कोई उत्तर नहीं था। राजा को हतप्रभ और अवाक् देखकर स्त्री ने बोलना शुरू किया- 'महाराज! मैं धारा नगरी हूँ। यह पुरुष मेरा स्वामी दरिद्र है। दरिद्र की पत्नी क्या करेगी? वह या तो भूखी मरेगी या परपुरुषगामी हो जायेगी। मेरी तीन बेटियाँ- बेगारी, बीमारी और बेकारी हैं। आप अब भी चेतिये और धार नगरी को ज्ञान का तीर्थ बनाने के साथ-साथ सम्पन्नता का नगर भी बनाइए। भूखे व्यक्ति को ज्ञान से क्या लेना-देना?

भोज व्याकुल हो उठा। उसने अपनी सवारी वहीं से वापिस लौटा ली। उस दिन से भोज ने धार नगर की आर्थिक उन्नति के उपाय प्रारम्भ कर दिये।

(35) 'देने वाला श्रीभगवान' एक बार एक ब्राह्मण विद्वान राजा भोज के दरबार से बहुत सी भेंट लेकर अपने नगर वापिस आया। उसने राजा भोज की खूब प्रशंसा की। उसके पितामह ने कहा- राजा भोज के देने से जीवन तो नहीं चलेगा। वह तो एक बार जितना दे सकता है, उतना ही दे सकता है। उसकी सीमा है। इस प्रकार आया धन व्यय भी जल्दी हो जाता है। यह माँगा हुआ धन होता है, कमाया हुआ नहीं। देने वाला भोज भला कौन होता है? देने वाला तो श्रीभगवान है। वही देता है। भोज तो केवल भण्डारी है। बाँटने का अधिकार उसे प्राप्त है। सुना है, वह बाँटने में भी कुछ विचार नहीं करता। प्रजा का धन विनोद में लुटाता है। उसके राज में प्रजा भूखी रहती है। उसके पास रोटी नहीं है। राजा का पहला कर्त्तव्य है कि पहले प्रजा की रोटी की व्यवस्था करे, फिर पर्व, उत्सव, ज्ञान की ओर ध्यान दे। तुम ऐसा काव्य लिखकर भोज के पास जाकर सुनाओ जिससे उसे प्रजा पालन की सुध आ जाए। तुम सब कवि पंडित राजा से पुरस्कार पाने के लिए उसकी प्रशंसा में काव्य रचते हो। यह उचित नहीं है। अरे! तुम इतना याद रख लो कि-

(36) 'भोज देवे एक रोज, गोपाल देवे रोज-रोज' गुणगान करना है तो उस दाता का करो, जो रोज देता है। गर्भ से बाहर आने से लेकर अन्तिम साँस रहने तक देता रहता है। चाटुकार मत बनो। कवि हो तो कविता लिखो। भणोती नहीं। ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहो, भांड मत बनो।

उस ब्राह्मण को चेत आ गया। अगली बार उसने वैसी ही कविता लिखी जैसी उसके पितामह चाहते थे। उसने राजा भोज को सुनाई। कविता सुनकर दरबारी तो कुपित हो गये, किन्तु राजा भोज हर्षित हुआ। भोज ने उस ब्राह्मण की खूब सराहना की और खूब पुरस्कार दिया।

(37) 'भाग बिना धन नी मले भोज देय कै देव' एक बार राजा भोज की सवारी निकल रही थी। भोज ने देखा एक सुन्दर युवक बाजार में एक साहूकार के घर के सामने लकड़ियाँ फाड़ रहा था। भोज ने देखकर महामंत्री से पूछा- हमारे राज्य में ऐसा सुदर्शन और युवा स्वस्थ और ऊर्जावान नागरिक लकड़ियाँ फाड़ रहा है। इस मजदूरी से तो इसका और इसके परिवार का भरण-पोषण भी नहीं हो पाता होगा। महामंत्री ने कहा- महाराज! जिसके भाग्य में जो लिखा, उसे वही मिलता है। लिखे भाग्य को तो देव भी नहीं बदलते। भाग्य से अधिक और समय से पहले किसी को कुछ भी नहीं मिल सकता।

भोज ने कहा- महामंत्री जी! अगर इसे हम बहुत सारा धन दे दें, तब तो इसका भाग्य अवश्य बदल जाएगा- नहीं महाराज! नहीं बदलेगा। आपका दिया धन या तो चोर चुरा लेंगे अथवा यह कुसंगत में पड़कर नष्ट कर लेगा अथवा इसे प्राप्त ही नहीं होगा। आपने एक कथा अवश्य सुनी होगी।

'एक बार एक लक्कड़हारा सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिए भरी दोपहर नंगे पैर पसीने से तरबतर चला जा रहा था। आकाश मार्ग से शिव-पार्वती की सवारी चली जा रही थी। नन्दी पर बैठी पार्वती ने उस युवक को देखा तो माता का हृदय पसीज गया। माता ने शिवजी से कहा- 'स्वामी! आपका यह कैसा न्याय? उधर देखो, कितनी दयनीय स्थिति है। उस युवक की दयनीय दशा मुझसे देखी नहीं जाती।' शिवजी बोले- 'पार्वती उसके भाग्य में विधाता ने यही लिखा है। उसे हम नहीं बदल सकते।' माता ने हठ ठान लिया। विवश होकर शिवजी ने स्वर्ण मुद्राओं से भरी एक थैली उसके मार्ग में टपका दी। निकट आने पर वह उठा लेगा। उधर उस लक्कड़हारे ने विचार किया- 'अंधे व्यक्ति मार्ग पर कैसे चलते होंगे?' ऐसा सोचकर वह भाग्यहीन युवक आँखें बन्द करके चलने लगा। वह थैली को उलाँघ कर आगे बढ़ गया। तब भगवान शिव ने पार्वती से कहा- 'देखा, आपने उसका भाग्य ही दुर्बल है। कोई क्या करे।' इसलिए महाराज 'भाग्य बिना धन नी मले, भोज देय कै दैव'। भोज ने महामंत्री की कथा सुनकर कहा- 'यदि भगवान शिव थैली उसके हाथ में थमा देते तब वैसा नहीं हुआ होता? हम इसे हाथ में धन दे देंगे। इस युवक को कल दरबार में आने को बोलो।' महामंत्री ने राजा भोज का आदेश उस युवक को सुना दिया।

अगले दिन वह युवक दरबार में पहुँचा। भोज ने उसे एक कद्दू देकर विदा कर दिया। भोज ने कद्दू में थोड़ा छेद करके उसमें हीरे भरवा दिये थे। छेद जैसा का तैसा बन्द करवा दिया गया। भोज ने सोचा- जैसे ही यह कद्दू काटेगा। हीरे इसे प्राप्त हो जाएँगे। वह युवक कद्दू लेकर दरबार से बाहर आया। वह मन ही मन खीज रहा था- 'महाराज ने मुझ गरीब को राजदरबार में बुलाकर अपमानित किया। यह छोटा-सा कद्दू देना था तो किसी चाकर से दिलवा देते।'

ऐसा सोचते वह एक सब्जी वाले की दुकान पर पहुँचा। वह कद्दू उसने एक टके में बेच दिया। शाम तक कद्दू बिका नहीं। सब्जी वाले को जीरा लेना था। उसने वह कद्दू मोदी को बेचकर उसके बदले में जीरा खरीद लिया। मोदी ने वह कद्दू अपने सेवक के हाथ घर भिजवा दिया। अगले दिन एकादशी व्रत था। मोदी की पत्नी ने वह कद्दू भगवान के मन्दिर में चढ़ा दिया। उसी दिन पुजारी रानी से मिलने व कथा करने महल में गया। कहते हैं- 'बड़े घर खाली हाथ नहीं जाना चाहिए'। इसलिए अपनी हैसियत के मान से वह कद्दू रानी जी को भेंट कर आया। रानी ने कद्दू रसोई में भेज दिया। रसोइए की पत्नी ने प्रदोष के व्रत का फलाहार बनाने के लिए कद्दू को काटा, तो सब हीरे निकल पड़े। रसोइया हीरे लेकर रानी के पास आया। रानी ने हीरे भोज को दिये। भोज ने सारी खोज करवाई।

कद्दू बिक्यो टका भाव में, कद्दू बण्यो जीरो।
हीरा तो भोजा ने मलया, कद्दू बण गयो सीरो॥

भोज ने मान लिया कि 'भाग्य बिना धन नहीं मिल सकता'।

(38) 'भोज की बांधे तांती, नी बुझ पावे बाती' - राजा भोज को नागराज का आशीर्वाद प्राप्त था। वे नियमित रूप से नागराज की पूजा करते थे। नागराज स्वयं भोज को देवनारायण के रूप में दर्शन देते थे। देवनारायण ने भोज को आशीर्वाद दिया था कि यदि किसी को नाग डस लेगा और वह आपके नाम की ताँत बाँध लेगा, तो जहर डंक से आगे नहीं बढ़ पायेगा, वहीं रुक जायेगा। डंक का विष हमारा कोई भी सेवक यदि चूसकर निकाल लेगा, तब उस विष का प्रभाव हमारे सेवक पर नहीं होगा।

यह बात सब जानते थे। मालवा में सर्वत्र यह बात विदित थी। यदि ऐसा कोई दुखिया भोज के सामने लाया जाता, तब वे सब काम छोड़कर नीम से झाड़कर अथवा जहर चूसकर दुखिया के डंक का विष समाप्त कर देते थे। इसीलिए यह बात प्रचलित हुई कि 'भोज की बांधे तांती, नी बुझ पावे बाती'।

एक बार ऐसा हुआ कि राजपरिवार के किसी कुँवर ने शिकार के दौरान भूल से नाग का वध कर दिया। नाग-नागिन का जोड़ा पाताल लोक से धरती पर विचरण करने आया था। दोनों एक फूलदार झाड़ी के पीछे बैठे प्रेमालाप कर रहे थे। कुँवर ने हिरन जानकर निशाना साधा। फलस्वरूप नाग की मृत्यु हो गई। अपने नाग के मरने पर नागिन कुपित हो गई और अपने नाग रूप को धारण कर कुँवर को डँस लिया। कुँवर के साथ उनका एक सेवक भी था। उसने अपने साफे में से लीरा फाड़कर भोजदेव का स्मरण कर कुँवर को पाँव में ताँती बाँध दी। नाग विष ने भोज की ताँती को नहीं माना। विष शरीर में फैलने लगा। सेवक कुँवर को घोड़े पर डालकर महलों में ले गया। कुँवर बेहोश था। उसकी ऐसी मरणासन्न दशा देखकर महलों में कोहराम मच गया। भोज तत्काल महलों में पहुँचे। कुँवर के पैर में ताँती देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि ताँती की मर्यादा कैसे भंग हुई? भोजराज ने तत्काल देवनारायण जी का आह्वान किया। देवनारायण भोज के शरीर में प्रकट हुए। उन्होंने कहा- 'भोज को पाताल भेजो। वहाँ से मणि लाये। नागिन का न्याय फिर करेंगे। उसने मेरी मर्यादा तोड़ी है।' देवनारायण ऐसा कह भोज के शरीर से विदा हो गये। भोज ने पाताल जाकर नागराज से विनय की और मणि लाकर कुँवर का विष समाप्त कर दिया। कुँवर ठीक हो गया।

भोज ने देवनारायण का आह्वान किया। देवनारायण प्रकट हुए। उन्होंने तत्काल नागिन को महल में बुलवाकर कहा- 'अरी नागिन! तूने मेरी ताँती की मर्यादा तोड़कर मेरा अपमान किया है।' नागिन ने कहा- 'देव! मैं कुपित थी। दुखातुर भी थी। इस कारण मुझसे यह अवज्ञा हुई। कुँवर ने मेरे नागस्वामी का वध कर मुझे शोकातुर कर दिया था।

देवनारायण ने कहा- 'नागिन! मर्यादा तूने धरती पर आकर भी तोड़ी। कुँवर ने भूल-भ्रमवश तुम्हारे पति का वध किया। तुमने भूलवश नहीं जानते हुए उसे डँसा। हम उसे तेरी शोक स्थिति में किया गया अपराध मानकर क्षमा करते हैं। भविष्य में मेरी ताँती की मर्यादा नहीं टूटने पाये। जाओ वन में, जहाँ तुम्हारे पति को बाण लगा था। वहाँ तुम्हारा पति तुम्हारी प्रतिक्षा में व्याकुल हो रहा है।'

नागिन को उसका नाग मिल गया, कुँवर को उसके प्राण तथा रानी को उसका पुत्र एवं सुहागिन को उसका सुहाग। भोजदेव की जय-जयकार होने लगी।

(39) 'भक्ति बिना ज्ञान अधूरा'- भक्ति की धारा नगरी से पलायन की बात जानकर राजा भोज का मन व्याकुल हो गया। अगले दिन उन्होंने दरबार में अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए प्रश्न किया- 'ज्ञान श्रेष्ठ है अथवा भक्ति? दरबार में तो सब ज्ञानी ही थे। सबने एकमत से कहा- 'ज्ञान श्रेष्ठ है।' राजा भोज फिर असमंजस में पड़ गये। तब वत्सराज खड़े हुए, उन्होंने कहा- 'महाराज! ज्ञान की महत्ता को कौन अस्वीकार कर सकता है? किन्तु भक्ति के महत्त्व को भी नकारा नहीं जा सकता। दोनों के संयोग से जीवन धन्य हो जाता है। यदि ज्ञान तपता हुआ सूर्य है तो भक्ति शीतल छायादार वृक्ष। ज्ञान से अहंकार का जन्म होता है। अहंकार को यदि चुनौती मिल जाए, तो तनाव- क्रोध और ईर्ष्या का भाव प्रकट होकर तन-मन को व्याकुल कर सकता है। तब भक्ति की सात्विक निर्दम्भता ही तन और मन को शान्ति प्रदान कर सकती है। इसलिए भक्ति का महत्त्व ज्ञान से कम नहीं है।

क्या ज्ञान के बिना भक्ति का प्रादुर्भाव सम्भव है? भोज ने प्रतिप्रश्न किया। वत्सराज ने विनम्रता से कहा- 'महाराज! जब भक्त अपने इष्ट में तल्लीन होकर समर्पित हो जाता है, तब ज्ञान अवाक् खड़ा रह जाता है। भक्ति तो आस्था और विश्वास पर आधारित रहती है। श्रद्धा और प्रेम के कारण भक्त सर्वभाव से अपने इष्ट के प्रति समर्पित हो जाता है। तर्क तो भक्ति के आगे टिकता ही नहीं।'

वत्सराज अनुभव वृद्ध थे। दरबार के ज्ञानियों ने उनकी बात की पुष्टि नहीं की। वत्सराज क्या कहते?

एक बार भोज और वत्सराज शिकार पर गए। शिकार तो मिला नहीं। पानी भी नहीं मिला। पानी ढूँढते-ढूँढते अँधेरा घिर आया। मार्ग भटक गये। जैसे-तैसे एक गाँव में पहुँच गये। वत्सराज ने गाँव के मुखिया को बुलवाया। परिचय दिया और समुचित

व्यवस्था करवा दी। रात गुजार कर जब प्रात:काल गाँव से प्रस्थान करने लगे, तब मुखिया ने निवेदन किया- 'महाराज! आज हमारे गाँव में गोठपूजा है। आप उसमें शामिल होंगे तो हमारा धन्य भाग होगा।'

भोज ने हाँ कर दी। पूरे धूमधाम से तैयारियाँ शुरू हुईं। सब लोग एक बाड़े में एकत्र हुए। महाराज और वत्सराज के लिए बैठने की व्यवस्था की गई।

बाड़े में एक 'खूंटा' था। उसकी पूजा ही गोठ पूजा थी। सब लोग श्रद्धा भाव से उस खूँटे को धोक लगा रहे थे। भोज के पूछने पर मुखिया ने बताया कि उसके पूर्वज इस जगह एक गाय के साथ आए थे। तब यहाँ गाँव नहीं था। उन्होंने यहीं खूँटा ठोककर अपनी गाय बाँधी थी। इसी भूमि पर झोपड़ी बनाकर उन्होंने अपना परिवार बसाया था। परिवार बढ़ता रहा। एक से अनेक गायें हो गईं। आज हजारों गायें हैं। इस खूँटे की बरकत है। हम इस खूँटे को भगवान की तरह पूजते हैं। इसमें हमारी आस्था और विश्वास जुड़ा है। गाँव में कोई नई गाय आती है या ब्याती है तो उसे पहले इस खूँटे पर बाँधा जाता है। नई बहू पहले इसी खूँटे को पूजती है। फिर गृह प्रवेश करती है। गाँव में यदि बालक जन्म लेता है, तो जच्चा-बच्चा यहाँ धोक लगाते हैं।

'आस्था और विश्वास तो हमारी भावना से जुड़ा होता है। भगवान न पत्थर का होता है, न मिट्टी का न लकड़ी का। वह तो श्रद्धा, आस्था और विश्वास का होता है। इसमें कोई तर्क काम नहीं करता। महाराज! आप तो ज्ञानी हैं। हम आपको क्या समझाएँ। हम तो भोले-भाले गोपालक हैं।'

वत्सराज ने कहा- 'महाराज! क्षमा करें! भक्ति और ज्ञान का यही अन्तर है। श्रेष्ठ तो दोनों हैं, किन्तु भक्ति माँ की ममता है। ज्ञान पिता का अनुशासन। बालक का सही पोषण दोनों से ही होता है। एक की भी कमी हो जाए तो बालक कुपोषित हो जाता है।

भोज ने भक्ति-भाव का महत्त्व जान लिया। वह स्वयं भी भक्त था। उसने मन ही मन कहा- 'महाराज विक्रम से मैं इसी प्रसंग में पीछे हूँ। वैसा श्रेष्ठ भक्त कोई दूसरा नहीं हुआ। सिंहासन बत्तीसी की बत्तीसवीं पुतली ने ठीक कहा था- 'विक्रम जैसे साजो तो सिंहासन बिराजो।'

(40) 'भोज और भक्ति'- एक बार राजा भोज भोजशाला से बाहर आ रहे थे। मार्ग में मन्दिर की सीढ़ियों पर एक अति कृषकाय, विपन्न स्थिति वाली एक स्त्री दिखी। उस वृद्धा के मुख पर निराशा और उदासी स्पष्ट देखी जा सकती थी।

भोज ने पूछा- 'हे माता! आपको क्या कष्ट है और आप यह पोटली लिये यहाँ क्यों बैठी हैं? आप अपनी व्यथा मुझसे कहिये।' वृद्धा ने कहा- 'यदि तुम भोज हो, तो बैठ जाओ और मेरी व्यथा सुनो और यदि ज्ञानी भोज हो, तो जाओ। दरबार की ज्ञानसभा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी।'

भोज ने अत्यन्त शालीनता और विनम्रता से कहा- 'माता! मैं भोज ही हूँ।' ऐसा कहकर भोज वृद्धा के निकट सीढ़ी पर बैठ गया।

वृद्धा ने कहा- 'भोज! मैं भक्ति हूँ। तुम्हारे राज्य में मेरी उपेक्षा हो रही है। यहाँ गली-गली में कुतर्की विद्वानों का वास और वर्चस्व बढ़ रहा है। ज्ञान के दम्भ में वे मेरा उपहास और उपेक्षा करने लगे हैं।

भक्ति तो श्रद्धा, आस्था और विश्वास का सात्विक सुफल है। ज्ञान के कुतर्कों से भक्ति पर प्रहार करना उचित नहीं है। भक्ति तो श्रद्धा, प्रेम और समर्पण का भाव है। ज्ञान के तर्क पर उसे नहीं परखा जा सकता। तुम्हारा राज्य ज्ञानियों और अतिज्ञानियों के कुतर्कों का अखाड़ा बनता जा रहा है। मुझे मन्दिर से बाहर कर दिया गया है। इसलिए सीढ़ियों पर बैठी हूँ। यह पोटली लेकर और धार नगरी त्याग कर मैं अन्यत्र जाने का विचार कर रही हूँ। तुम्हारे साथ उज्जैन से धार आने की भूल करके मैं आज पछता रही हूँ। उसी का प्रायश्चित्त करने के लिए मैं यहाँ से पलायन करना चाहती हूँ। मुझे यह निर्णय करना है कि मैं वापिस उज्जैन लौट जाऊँ अथवा कहीं अन्यत्र नदी तट पर!'

भक्ति की व्यथा वेदना सुनकर भोज व्याकुल हो उठा। उसने भक्ति के चरणों में धोक लगाई और कहा- 'माँ! आप यहीं

बिराजे। भक्ति के बिना ज्ञान और ज्ञान के बिना भक्ति का भाव अपूर्ण होता है। मैं वचन देता हूँ। आज से आपकी धार में कोई उपेक्षा नहीं करेगा। मैं पुनः आपकी महत्ता यहाँ स्थापित करूँगा।'

(41) 'राजा भोज मिष्ठान त्याग'- एक बार एक पागल औरत भोज के दरबार में प्रवेश कर गई। दरबान प्रयत्न करके भी उसे रोक नहीं पाए। पूरा दरबार उस विक्षिप्त महिला को दरबार में आई देखकर परेशान हो उठा। भोज ने अत्यन्त संयत भाव से उस महिला को समझाने का प्रयत्न करते हुए पूछा- 'हे माता! तुम्हें क्या कष्ट है? तुम्हें किस चीज की आवश्यकता है?'

विक्षिप्त महिला ने अपने हाथ का कटोरा आगे बढ़ाकर कहा- 'मुझे गुड़ चाहिए?' कोई मुझे गुड़ नहीं देता। मेरा बेटा गुड़ के लिए हठ कर रहा है। उसे गुड़ चाहिए। वह बहुत भूखा है। उसे रोटी के साथ गुड़ चाहिए। आप मुझे गुड़ दे दो। सब कहते हैं आपके पास बहुत गुड़ है। मुझे बहुत मत दो। एक डला गुड़ दे दो।'विक्षिप्त महिला की बात सुनकर राजा भोज व्याकुल हो उठा। उसने मंत्री से पूछा- 'क्या नगर में कोई भी ऐसा नहीं है, जो इसे गुड़ दे सके?' वह मंत्री कुछ बोलता, तब तक दूसरे मंत्री ने कहा- 'महाराज! अभद्रता क्षमा करें। राज में गुड़ नहीं है। गुड़ बहुत महँगा है। केवल सम्पन्न लोग ही गुड़ या उससे बने पदार्थ खा पाते हैं।'इस विक्षिप्त महिला का बेटा प्रतिदिन गायें चराने जाया करता था। दूसरे चरवाहे भी जाते थे। उसकी माँ प्रतिदिन दो रोटियाँ और प्याज-नमक साथ रख देती थी। कभी खाली प्याज तो कभी खाली नमक भी। एक दिन उसके मित्र की पोटली में गुड़ का डला निकला। उसने गुड़ का आधा डला इसके बेटे को दे दिया। इसने तब तक न तो गुड़ देखा था और न चखा था। पहली बार उसने गुड़-रोटी खाई। गुड़ की मिठास और उसके स्वाद ने उसका मन मोह लिया। शाम को वह वापिस लौटा। जिसके पशु वह चराता था, उसके पशु ठाण में बाँध दिये और घर आ गया। रात को उसकी माँ ने उसकी थाली में रोटी और प्याज रख दिया। आज तो नमक भी नहीं था। लड़के ने कहा- 'माँ! मुझे गुड़ दो'। गुड़ का नाम सुनते ही माँ का कलेजा काँप उठा। उसने सोचा, इसे गुड़ का नाम और स्वाद कैसे पता चला? इसने तो गुड़ देखा तक नहीं।

लड़का बार-बार 'गुड़ दो' की रट लगाने लगा। यह महिला (उसकी माँ) परेशान हो उठी- गुड़ कहाँ से लाए? गुड़ तो राजा-महाराजा और सेठ-साहूकारों के पास मिल सकता है। हम गरीबों के नसीब में कहाँ? बेटे ने रोटी नहीं खाई। वह भूखा ही सो गया। सबेरे जब वह अपने बेटे को उठाने और मनाने गई, तब इसने देखा वह लड़का (इसका इकलौता बेटा) फाँसी लगा चुका था। तभी से यह विक्षिप्त है। यह दिन भर गुड़ माँगती है। इसे गुड़ कौन दे? यह शाम को श्मशान जाती है। जहाँ इसके बेटे को जलाया था। वहाँ जाकर कहती है- बेटा! जिद मत कर, आज तो कांदा-रोटी खा ले। कल मैं तेरे लिए गुड़ ले आऊँगी। पिछले दो सालों से यह महिला इसी प्रकार भटक रही है। दिन भर गुड़ के लिए यह दर-दर जाती है। आज यह आपके दरबार में आ गई। सम्भव है कि इसे कहा हो गुड़ राजा भोज के पास है।' मंत्री तो चुप हो गया, किन्तु राजा भोज के भीतर एक प्रचण्ड व्याकुलता बोलने लगी। 'ज्ञान-चर्चा और काव्य-चर्चा में व्यस्त भोज! तेरे राज्य में दरिद्रता बढ़ रही है।' भोज ने प्रतिज्ञा की कि 'जब तक मेरे राज्य में गरीबी समाप्त नहीं हो जाती, सम्पन्नता फिर से कायम नहीं हो जाती, तब मैं मिष्ठान्न नहीं खाऊँगा। राज रसोई में भी मिष्ठान्न नहीं पकेगा।'

सहयोग-सौजन्य :

(1) श्री दीपेन्द्र कुमार शर्मा, भोज शोधशाला-धार (2) स्व. श्री ठाकुर दलेल सिंह यादव-संधारा (3) डॉ. प्रद्युम्न भट्ट-भानपुरा (4) डॉ. विनय श्रीवास्तव-नीमच (5) डॉ. सुरेन्द्र सिंह शक्तावत-पीपल्या राव जी, सम्प्रति-नीमच (6) श्री प्यारेलाल रांगोठा-ओसरना, भानपुरा (7) श्रीमती शिवू बाई रांगोठा-ओसरना, भानपुरा (8) श्री देवसिंह जी परमार 'देव'-भानपुरा (9) श्री शालिगराम जी पाटीदार-रीछालाल मुहाँ (10) श्री शिवजी आचार्य-कंजार्ड़ा (11) श्री नारायणजी सेन-मनासा, सम्प्रति-जावद (12) श्रीमती सन्तोष हाड़ा-हाड़ोती (13) श्री आशाराम भुवाई-रीछालाल मुहाँ, मन्दसौर (14) श्री बाला बा-अठाना, जावद (15) श्री संत जेठानन्दजी मियांवाली (पश्चिम पाकिस्तान), सम्प्रति-मनासा (16) श्री मदनलाल राठौड़-खेड़ली,कंजार्ड़ा (17) श्री झलक निगम- उज्जैन (18) डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित-उज्जैन (19) डॉ. शिव चौरसिया-उज्जैन (20) श्री बालकवि बैरागी-मनासा (21) डॉ. श्यामसुन्दर निगम-उज्जैन (22) श्री दिनेश सहगल-मनासा (23) श्रीमती कृष्णा सहगल-मनासा (24) डॉ. कृष्णा पेंसिया-मनासा (25) श्री बी.एल. बसेर-मनासा

रू-ब-रू

रेवतीरमण शर्मा

(लोककलाकार एवं लोककलाविद् डॉ. जीवन सिंह से रेवती रमण शर्मा की बातचीत- सम्पादक)

डॉ. जीवन सिंह सृजनशील हैं। वे केवल आलोचना के लिये आलोचक नहीं हैं अपितु आलोच्य कृति की पुनर्सर्जना भी करते हैं। उनके द्वारा नई कविता के अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों की कृतियों का पुनर्मूल्यांकन किया गया है। जिन पर हिन्दी क्षेत्र के विद्वान सृजनकर्मियों और प्रख्यात समालोचकों का ध्यान केन्द्रित हुआ है। वे एक सजग आलोचक एवं कवि होने के साथ ही साथ अच्छे लोक कलाकार व कला मर्मज्ञ भी हैं। डॉ. जीवन सिंह के गाँव जुरहरा में हिन्दू और मेव-मुसलमान लगभग सम-संख्यक हैं। उनके गाँव में रामलीला विगत 150 वर्षों से निरंतर खेली जा रही है। उस क्षेत्र की प्रख्यात रामलीला के आधार स्तंभ महानायक रावण महाराज की भूमिका वे विगत 25-30 वर्षों से निभा रहे हैं। अपितु कहें जितनी देर रामायण में रावण का रोल रहता है, जीवन सिंह उसे जीवन्त रूप प्रदान करते हैं। गाँव की इस रामलीला को वहाँ के हिन्दू मुसलमान समादर रूप से देखते हैं। और यहीं से जीवन सिंह लोक कलाकार और लोक कलाविज्ञ बन जाते हैं। लोक कला क्षेत्र के इसी विशिष्ट ज्ञान पर मेरे द्वारा उनके निवास स्थान पर बिना यह बताये कि उनका लोक-कलाओं पर कोई इन्टरव्यू जैसा लिया जा रहा है, उनसे सहज रूप में विस्तार से बातचीत हुई, उस बातचीत के कुछ चयनित अंश यहाँ दिये जा रहे हैं-

रेवतीरमण शर्मा - लोक कलाओं के बारे में आपकी क्या धारणा है?

जीवन सिंह - लोक रंजन और सामाजिक संदेश के लिए लोक कलाओं की रचना होती रही है। इन्हें दो तरह से रचा गया है-

व्यक्ति के स्तर पर और सामूहिक स्तर पर। लोक कलाओं में व्यक्ति भी जब लोक की भूमिका में आ जाता है, तभी उसे लोक की स्वीकृति मिलती है।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाओं के प्रति आप कैसे प्रवृत हुए? आपके इस रूझान या झुकाव के कारण भी रहे होंगे।

जीवन सिंह – लोक कला के प्रति मेरा लगाव उस समाजवादी विचारधारा में निहित है, जिसमें व्यक्ति के स्थान पर लोक और समाज को प्रमुख स्थान दिया जाता है। मैं व्यक्ति की महत्ता को भी महत्त्वपूर्ण मानता हूँ, पर लोक और समाज से ऊपर नहीं।

रेवतीरमण शर्मा – लोक और समाज में क्या अंतर मानते हैं?

जीवन सिंह – लोक और समाज में परिवर्तन तब आया, जब वर्ग विभाजन हुआ। शहरों में रहने वालों को सामान्यत: 'समाज' कहा जाने लगा और गाँवों में रहने वालों को 'लोक' कहा गया। लोक से तात्पर्य उस किसान मजदूर समुदाय से है, जो समाज के लिये सारे काम करते हुए भी हमेशा से उपेक्षित रहा है।

रेवतीरमण शर्मा –लोक कला और शास्त्रीय कलाओं में आप क्या भेद करते हैं?

जीवन सिंह– जो लोक और शास्त्र में भेद है, वही लोक कलाओं और शास्त्रीय कलाओं में है। लोक कलाएँ किसी शास्त्रीय अनुशासन से बंधी हुई नहीं होती, जबकि शास्त्रीय कलाओं का अपना एक शास्त्र होता है और उनकी प्रकृति अभिजात-धर्मी अधिक होती है।

रेवतीरमण शर्मा – तुलसीकृत मानस और वाल्मीकि की रामायण में लोक कलाओं के स्तर पर बड़ा भेद है, आप क्या सोचते हैं?

जीवन सिंह – इन दोनों में सबसे बड़ा भेद तो भाषा का ही है। तुलसीकृत मानस लोक भाषा में हैं, जो आज भी अवध अंचल में बोली जाती है, जबकि वाल्मीकि रामायण संस्कृत में है, जो हमारी विरासत है। उससे संस्कृत पढ़े-लिखे लोग प्रेरणा लेते हैं। भाषा के बंधन के कारण वह जन से दूर रहती है।

रेवतीरमण शर्मा – तुलसीकृत मानस में कला के ऐसे कौन से महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिस कारण से मानस घर-घर में मिलती है और एक जन-ग्रंथ की संज्ञा में आती है?

जीवन सिंह – सबसे पहले तो लोक-भावना है। लोक भावनाओं और लोक हृदय की जैसी पहचान तुलसी ने की, वैसी कदाचित और दूसरा कवि नहीं कर पाया है। दूसरे लोक जीवन की जो व्यापकता, मार्मिकता और सहजता का अनूठापन तुलसी में है, वह उनकी कला को एक ऊँचे दर्जे की लोक कला पर प्रतिष्ठित कर देता है। उनकी कला में लोक और शास्त्र का अद्‌भुत संगम मिलता है।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाएँ परम्परा को तो सामने लाती हैं, परन्तु समकालीनता से उसे नहीं जोड़ा जा सकता। सच तो यह है कि समकालीन प्रश्नों से वह विमुख-सी रहती है। इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

जीवन सिंह – लोक कला में एक तरह की पिछड़ी चेतना का अहसास हमें होता है, लेकिन हृदय एवं भाव के स्तर पर यदि देखा जाय तो वह समकालीनता से बहुत आगे दिखाई देती है। यह हृदय, भाव और अनुभूति तत्त्व ही हैं, जो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को जोड़कर एक बड़ी दुनिया बनाता है। विचारधाराएँ बड़ी हो सकती हैं, पर हृदय के योग के बिना उनका व्यापक फैलाव नहीं होता। मनुष्य की स्वार्थ भावना को बुद्धि ने और अधिक संकुचित बनाया है। यह हम आज के विश्व को देखकर कह सकते हैं। शोषण करने वाला व्यक्ति बुद्धि से तो बहुत काम लेता है, हृदय से नहीं। लोक कलाएँ अपनी पिछड़ी चेतना के बावजूद हृदय से एक दूसरे को ज्यादा नजदीक लाती हैं और हमारी स्वार्थ भावना को भी कम करती हैं।

रेवतीरमण शर्मा – शताब्दियों पुरानी लोक कलाओं और पिछले दिनों के समान्तर सिनेमा में आप क्या साम्य और अंतर पाते हैं?

जीवन सिंह – सिनेमा आज का महत्त्वपूर्ण कलारूप है, जो तकनीकी पर ज्यादा निर्भर करता है। आधुनिक विज्ञान और नई तकनीकों ने सिनेमा जैसे कला रूप को जन्म दिया है। वह अपनी परम्परा से भी बहुत कुछ ग्रहण करता है। हमारे पारम्परिक

लोक जीवन की ऐसी अनेक बातें हैं, जिनको लेकर सिनेमा ने अपनी कला में ढाला है। सिनेमा के जिन कलाकारों का लोक जीवन से जुड़ाव रहा है, वे लोक कलाओं का विशिष्ट उपयोग सिनेमा में भी किया करते हैं। सिनेमा से पहले लोक कलाएँ प्रचलित रही हैं। पारसी थियेटर के माध्यम से कहीं न कहीं लोक कलाओं ने सिनेमा को प्रभावित किया है। समान्तर सिनेमा ने भी लोक जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया है और इस रूप में हम कह सकते हैं कि लोक जीवन का समान्तर सिनेमा से गहरा रिश्ता रहा है। समान्तर सिनेमा की ज्यादातर अन्तर्वस्तु लोक जीवन से ही आती है।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाओं में न तो किसी लेखक का नाम होता है न इन कलाओं का कोई विशिष्ट निर्माता होता है जबकि शास्त्रीय संगीत के घराने तथा चित्रकला की स्कूलें होती थीं।

जीवन सिंह – लोक कलाओं की प्रकृति सामूहिक होती है, सामान्यत: उनका कोई विशिष्ट लेखक या निर्माता नहीं होता। लेकिन लोक कलाओं का एक रूप वह भी होता है, जहाँ उसके विशिष्ट लेखक और शैलीकार होते हैं। उनकी रचनाओं की प्रकृति सामूहिकता की होती है, इसलिये उनको लोक कला में लोक-कला जैसी मान्यता मिल जाती है। मैं अपने अनुभव से यह बात कह सकता हूँ कि लोक में संगीत के चाहे घराने न रहे हों, लेकिन उनके अखाड़े हुआ करते थे। हाथरस की नौकंटी का अखाड़ा उस्ताद इन्दरमन का अखाड़ा कहलाता है। इसी तरह मेरे गाँव में संगीत और लोक कला का एक अखाड़ा पंडित शोभाराम का रहा है, तो दूसरा पंडित रामकुमार का। आज तक भी इनकी शिष्य परम्परा चल रही है। हमारे यहाँ रासलीला जैसे कला रूप में इन अखाड़ों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। ये एक तरह के लोक-कला स्कूल ही हैं। इसी तरह दूसरा उदाहरण अलवर का है। अलीबख्शी ख्याल की यहाँ एक विशिष्ट शैली रही है। कला स्कूलों का जो विभाजन किया जाता है, वह अंग्रेजी शासन की देन है। यही चित्रकला में शैली के स्थान पर स्कूल कहलाते हैं।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाओं का जीवन में व्यापक स्तर पर विस्तार होता है। आज के बदले परिदृश्य में इसे जीवित रखना एक बड़ी चुनौती है। लोक कलाओं और लोक भाषाओं का क्षरण आज प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है। इस संबंध में आपके विचार क्या हैं?

जीवन सिंह – लोक कलाओं के कई रूप समय के दबाव में खत्म हुए हैं या उन्होंने अपना रूप बदला है। जैसे अभी कहा कि समान्तर सिनेमा के भीतर लोक जीवन का यथार्थ मौजूद है। इसी लोक जीवन के यथार्थ के संग कहीं न कहीं लोक कलाएँ भी आती हैं। हबीब तनवीर ने अपने आधुनिक नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक कला रूपों का उपयोग किया है। इससे कहा जा सकता है कि लोक कलाएँ कभी मरती नहीं, वे अपना रूप परिवर्तन अवश्य कर लेती हैं। एक जमाना था जब पारसी थियेटर हिन्दुस्तान में आया, तो उसे भी यहाँ के लोक कला रूपों को अंगीकार करना पड़ा है। जब हिन्दी सिनेमा की शुरूआत हुई तो उसमें पारसी थियेटर के बहुत से तत्त्व मौजूद थे।

आज भी यदि समाज, लोक, सत्ता और व्यक्ति यह ठान ले कि हमें लोक कला रूपों का संरक्षण एवं संवर्धन करना है, तो यह काम आसानी से किया जा सकता है। पहले की तुलना में आज हमारे पास अनेक साधन व तकनीकें हैं और पूँजी की भी कोई कमी नहीं है, केवल इच्छा शक्ति और जानकारी की कमी है, जिससे लोक कलाओं की उपेक्षा हो रही है। हमारे देश का उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और खासतौर से सत्ताधारी वर्ग अपने लोक जीवन से पूरी तरह कट चुका है। आज इनके जीवन में पश्चिमी कलाओं के लिये तो स्थान है, पर अपनी लोक कलाओं के लिये नहीं, अन्यथा जिला स्तर पर लोक कला अकादमियों का गठन कर इन कलाओं को न केवल संरक्षण दिया जा सकता है, बल्कि इनको आधुनिक परिप्रेक्ष्य भी दिया जा सकता है। लोक कलाविदों को जिला स्तर पर सूचीबद्ध कर मासिक आजीविका वृत्ति देकर इन लोक कलाओं को मरने से बचाया जा सकता है और आज सबसे आसान काम है बशर्ते कि आज के व्यक्ति का लोकीकरण हो जाए।

रेवतीरमण शर्मा – कलाकारों, लोक कलाविदों के सूचीकरण का कार्य तो जयपुर के जवाहरकला केन्द्र के द्वारा भी किया गया है, पर उन्होंने लोक कलाकारों को कोई वृत्ति या सहायता नहीं दी और न ही लोक कलाओं को आगे बढ़ाने के लिये कोई तकनीकी सहायता दी।

जीवन सिंह – जवाहर कला केन्द्र एक राज्य स्तरीय कला केन्द्र है। वह आज तक नौकरशाहों के हाथों में रहा है। यद्यपि नौकरशाहों में विजय वर्मा जैसे लोक कलाविद भी रहे हैं, लेकिन ऐसे लोग भी इन कला केन्द्रों के संचालक नहीं बन पाते । अन्ततः उनका संचालन नौकरशाहों के हाथों में ही रहता है जो प्रशासन का संचालन तो कर सकते हैं, लेकिन लोक-कलाओं का नहीं। दूसरे, हमारी लोक लोक कलाएँ राज्य में भी जनपदीय स्तर की लोक कलाएँ हैं, जैसे – मेवाती, मारवाड़ी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती, शेखावटी आदि। अतः इसके लिये एक बड़े राज्य के भीतर जनपदीय स्तर पर अकादमियाँ होनी चाहिये। जिला स्तर पर हों तो और भी अच्छा है। लोक-कला-विदों को मासिक आजीविका वृत्ति का प्रावधान होना चाहिये, ताकि वे अपना सारा समय लोक कलाओं को दे सकें और इस विरासत का विकास भी कर सकें। प्रत्येक जनपद से लोकगीत, लोक नृत्य, कथाएं, काव्य संग्रहित हों। जनपदीय भाषाविद् उनका सम्पादन करें और उनके प्रदर्शन एवं मुद्रण की व्यवस्था भी नियमित रूप से की जा सके।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाओं को शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना आवश्यक है, ताकि शिक्षा में आई एकरूपता और एकरसता को कम किया जा सके और छात्र अपनी संस्कृति और लोक कलाओं को पहचान सकें।

जीवन सिंह – इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में लोक कलाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण को स्थान मिलना, चाहिए उससे हमारे देश का युवा वर्ग अपनी जमीन की प्रकृति को पहचान सकेगा और उसकी संस्कृति की जड़ों से भी परिचित हो सकेगा। मेरी राय में हमारी अभिजात वर्गीय एवं शास्त्रीय संस्कृति से लोक संस्कृति का स्थान इसीलिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि उसका रिश्ता पूरी आबोहवा से होता है और वहाँ हृदय के कृत्रिम आवेगों के स्थान पर लोकमन के सहज और सच्चे आवेग होंगे। वहाँ किसी तरह का बनावटीपन नहीं होता। इसी का परिणाम है कि वे हमारे जीवन की एकरूपता एवं एकरसता को दूर करने का दूसरा माध्यम है।

रेवतीरमण शर्मा – लोक कलाओं से क्या लोक को दीक्षित और रूपान्तरित किया जा सकता है?

जीवन सिंह – जैसा कि पहले कहा कि लोक कलाएँ लोक हृदय के स्तर पर काम करती हैं जो मस्तिष्क की सहायता से सभी तरह के परिवर्तन करता है। मस्तिष्क से संरचनात्मक परिवर्तन तो संभव है, बुनियादी परिवर्तन नहीं। बुनियादी परिर्तन तभी होते हैं, जब मस्तिष्क का योग हृदय के साथ होता है और हृदय का मस्तिष्क के साथ। लोक-कलाओं द्वारा यह काम आसानी से संभव है।

रेवतीरमण शर्मा – अलीबख्शी ख्याल अलवर एवं हरियाणा की लोक-सांस्कृतिक चेतना तथा साम्प्रदायिक सद्भाव के वाहक रहे हैं। इससे पहले आपने उनके एक ख्याल कृष्ण लीला पर शोध पत्र लिखा था। इसके बाद कुछ ख्यालों को मैं खोज और शोध के माध्यम से सामने लाया। क्या शेष ख्यालों को खोजने के लिए शासन को सहायता करनी चाहिये। प्रदेश में ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण लोक कलाएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। इनके संरक्षण और विकास के लिए क्या संभव प्रयास किये जाने चाहिए।

जीवन सिंह – मैंने अपना एम.ए. का लघुशोध प्रबंध, यद्यपि सम्पूर्ण अलीबख्शी ख्यालों पर लिखा था, लेकिन कृष्ण लीला की प्रसिद्धि के कारण उस ख्याल के कलात्मक पक्ष को उद्घाटित करने के लिये विशेष बल दिया। आपने ख्यालों को प्रकाशित कराकर बहुत बड़ा उपकार किया है। कभी जब समय आयेगा तो ये लोगों के काम आयेगा। एक जमाने में अलीबख्शी ख्यालों की सद्भाव फैलाने के स्तर पर बहुत बड़ी भूमिका रही है। इनके विकास और प्रसार के लिए जन और सत्ता दोनों के प्रयास जरूरी हैं।

लोककलाओं के प्रति शासन को अपना एक दृष्टिकोण निर्मित करने की जरूरत है। हमारे देश में हजारों सालों से लोककलाओं की अनेक परम्पराएँ चली आ रही हैं, लेकिन शासन में संलग्न लोगों के लिए लोककलाएँ किसी काम की नहीं लगतीं। हमारा दृष्टिकोण इतना संकुचित हो गया है कि जीवन में सिवाय अर्थार्जन करने के काम के हम उसे व्यापक सांस्कृतिक

समृद्धि प्रदान नहीं करना चाहते। आज जहाँ व्यावसायिकता है, वहीं कलाओं को प्रचार मिल रहा है। पिछले दिनों ऐसे कई लोकला रूप हैं, जो स्तर पर सम्मलित हुए हैं। छत्तीसगढ़ की पण्डवानी और जैसलमेर के लंगा लोकगायकों की कला का दूर-दूर तक स्वागत हुआ है। जिन कलारूपों को व्यावसायिक स्तर पर उठा दिया गया, वे उठ गए हैं। जिनको कोई केंद्रीय संचालक नहीं मिला, वे आज भी उपेक्षित पड़े हैं। हमारे जीवन में वैसे भी एकरूपता और एकरसता घर करती जा रही है। इस वजह से भी लोककला रूपों की उपेक्षा हुई है। मध्य और उच्चवर्ग का लोकजीवन से अलग होते चला जाना भी इसकी एक बड़ी वजह रही है। इस वर्ग में कलाओं का उपभोग करने की प्रवृत्ति बढ़ी है और कला-सृजन की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ है। इन वर्गों की दृष्टि में परिवर्तन होगा तो लोककलाओं को एक नया आश्रय एवं रूप हासिल हो सकेगा। कलाओं के विकसित होने के लिए आज का समय बहुत अनुकूल है। लोगों के पास समय और सम्पदा भी है, बशर्ते कि वे लोककलाओं की प्रकृति को जानें और उनके मूल्य को पहचानें। व्यक्ति अपने अहंकार को त्यागकर ही इन कलाओं के आँगन में विचरण कर सकता है।

धरती बहुत कष्ट में है

अश्विनी कुमार आलोक

(जनकवि रामजियावन दास 'बावला' से अश्विनी कुमार आलोक की बातचीत-सम्पा.)

अपने देश के अतिरिक्त कई अन्य भारत हितैषी देशों में जनकवि रामजियावन दास 'बावला' का नाम है। अवधी के एक लोकगीत में रामकथा के वनगमन का प्रसंग इतनी मुखरता और मौलिक सजीवता के साथ इनके कंठ से फूटा कि रामकथा की अंतर राष्ट्रीय ख्याति में एक अध्याय और आ जुड़ा। बावला जी हिन्दी नहीं बोल पाते, चौथी कक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बाद पढ़ाई भी नहीं की। कुछ वर्षों तक जातीय पेशा लुहारी से जीविका चलायी, फिर घर से 20-25 किमी. दूर राजदरी के जंगलों में भैंस चरायी। जंगल में कुटिया बनाकर रहते इन्हें उन कष्टों का भी अनुभव हुआ, जो अवधेश पुत्र राम ने भोगा होगा। 'बावला' जी ने लगभग पूरी रामकथा पारंपरिक छंदों में रची और अत्यंत वय-वार्द्धक्य के बावजूद वे छंद उन्हें आज भी याद हैं। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर-चंदौली में चकिया के पास भीषमपुर गाँव है, वहीं 1 जून 1922 को इनका जन्म हुआ। माँ का नाम सुदेश्वरी देवी और पिता का नाम रामदेव विश्वकर्मा था। मिर्जापुर के एक साहित्यिक कार्यक्रम की अध्यक्षता करने आये रामजियावन दास 'बावला' से 23 नवम्बर 2009 को यह साक्षात्कार लिया गया। हिन्दी में पूछे प्रश्नों के उत्तर उन्होंने अवधी में दिये।

आलोक - रामजियावन दास 'बावला' जी! वे कौन सी पंक्तियाँ थीं, जो आपके कंठ से पहले-पहल फूटी?

बावला - कहमा से अइलऽ तू कवन ठा जइबऽ

बबुआ बोला ना

किये बाटे बाबू माय क नाँव

और,

टेरत नाव बढ़े रघुनंदन लागल केवट के टकराई,
रूप के सागर में भरमाएल चूमि लेहीं पग गांध उठाई,
नाँव से गाँव से कूदि पड़ि मुनि गौतम के तिय की परिछाईं,
घाट से नाँव हटाइ कहै रउवाँ जाये के होखे त गोड़ धोवाईं।

मेरे माता-पिता का देहांत मेरे बचपन में ही हो गया। चाचा रामस्वरूप विश्वकर्मा रामायण के ख्याति प्राप्त गवैया थे। उन्हीं के सान्निध्य में मैं बड़ा हुआ। पढ़ाई-लिखाई में मेरा मन नहीं लगता था। चौथे दर्जे में अनुत्तीर्ण हो गया, तो विद्यालय जाना भी छूट गया। बचपन ही से गाने बजाने और रामायण सुनने तथा पाठ करने में आनंद आता था। विद्यालय से नाता टूटा, तो दस बरस तक लोहारगिरी भी की। फिर अपने घर से बीस-पचीस किमी. दूर राजदरी के जंगल में कुटिया बनायी और भैंस चराने लगा। बहुत समय बीता, तब एक दिन अनायास कुछ पंक्तियाँ फूट पड़ी। इसके पूर्व कई दिनों से रामवनवास का प्रसंग आँखों में तैरता रहता था। रामायण को पढ़ते-गाते छंद भी मन-प्राण में आ बैठे थे, तब से लिखना-गाना आरंभ कर दिया ।

आलोक - चौथी कक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बाद क्या आप की शब्द पहचान बनी रही। मेरा मतलब है, बचपन में वाक्य और लिखावट के प्रति आपने सामंजस्य बैठाना सीखा भी नहीं होगा और आपका संसर्ग पढ़ाई से छूट गया होगा। तब, कैसे लिखा होगा?

बावला - रामचरित मानस पढ़ते-सुनते मेरे अंदर के शब्दब्रह्म में जागृति आ गयी थी। मैं लिख भी लेता था, पढ़ भी लेता था। बहुत दिनों तक स्वयं लिखा। बाद में भैंस का खूंटा ठोंकते हुए दायें हाथ के अंगूठे में चोट आने से बाँयें हाथ से लिखने लगा। अब तो बांया हाथ भी काँपता है। अब मैं बोलता हूँ और मेरे परिवार एवं गाँव के पोते-पोतियाँ लिखते जाते हैं।

आलोक - माता-पिता ने रामजियावन नाम रखा, आप 'बावला' कैसे बन गये?

बावला - जब कुछ छंद फूटे और जंगलों से होते हुए मेरे गीत गाँव-देहात में लोकप्रिय होने लगे, तो मैंने इन्हें छपवाने की बात सोची। कम गीतों का एक दुबला-पतला संग्रह तैयार किया। सभी गीतों की अंतिम पंक्ति में रामजियावन आता था। मेरी इच्छा थी कि लोग मुझे मेरे गीतों से जानें। मैं बनारस के एक प्रकाशक के यहाँ गया। प्रकाशक ने गीत देखा, तो कहा कि गीत तो अच्छे हैं, पर अंतिम पंक्तियों में रामजियावन आने से लय कट रही है। उसी ने सुझाया कि मैं कोई अन्य नाम अपने नाम के साथ जोड़ लूँ। रात में वहाँ से नहीं लौटा। पूरी रात मन में उत्पात मचा हुआ था। पर नाम न मिला। सुबह बनारस में स्नान किया और सीढ़ियों पर कपड़े बदलने के बाद अपना सामान ठीक कर रहा था। तभी एक आदमी आया और उसने मुझसे कुछ पूछा। मैं उसकी बात समझ न सका। शायद वह दूसरे देश का था। उसने मुझे कुछ अजीब से शब्द से संबोधित किया। उसकी झल्लाहट से एक शब्द निकला- 'बावला'। मैंने प्रकाशक को 'बावला' उपनाम सुझाया, तो वह खुश हो गया और मेरी पहली पुस्तक छपी, जो उन दिनों आने-दो आने में बिककर मशहूर हुई। मेरे गाये गीत राजदरी से लेकर मॉरीशस तक गाये गये। बिना लय-ताल के ज्ञान के मुझसे रेडियो स्टेशनों में भी गवाया गया।

आलोक - आप कवि सम्मेलनों में भी जाते रहे हैं। कहाँ-कहाँ गये? मेरा मतलब है, उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त कहाँ तक जाकर आपने काव्यपाठ किया?

बावला - अब, मुझे यह तो नहीं पता कि उत्तर प्रदेश कितनी दूर तक फैला है। पर मैं लखनऊ, दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, छपरा, गोपालगंज, सीवान, महाराजगंज, मॉरीशस आदि के कवि सम्मेलनों में गया।

आलोक - आप हिन्दी नहीं जानते। पूरी रचनाधार्मिता आपकी अवधी में रची-बसी रही। इतनी दूर तक जा जाकर अपनी बात कहने में कोई असुविधा नहीं हुई?

बावला - गोस्वामी तुलसीदास को रामचरित मानस की छटा सर्वत्र बिखेरने में क्या कोई असुविधा हुई थी? नहीं न। फिर रामकथा ऐसा विषय है, जो भाषा से परे है। मैं तो अपने परिचय में

भी यही कहता हूँ।

गँवई क निवासी, बनवासी उदासी हम
घासी में पाती में जिनिगी बिताइला
बाहुबल बूता अछूता अस जंगल में
मंगल के कामना से मंगल मनाइला
सेवा में फूल-फल जल में पहारी के
पाहुन केहू आवे त प्रान अस जोगाइला
धूरी में, माटी में अपने परिपाटी में
विंध्याचल घाटी में बावला कहाइला

आलोक – पहली बार कविगोष्ठी में कहाँ गये?

बावला – रेडियो स्टेशन के हरि भैया अर्थात् हरेराम दुबे के साथ मिर्जापुर के शेरवागाँव में कृषिनिष्ठा के कार्यक्रम में पहली बार सम्मिलित हुआ। वर्ष 1983 में। वहीं मुझे सम्मानित भी किया गया ।

आलोक – रामकथा के अतिरिक्त आपने अन्य किन विषयों पर लिखा?

बावला – दस दिनों पूर्व 'संकीर्तन बत्तीसा' छपकर आया है। कीर्तन मैंने लिखे। रामकथा के अतिरिक्त अन्य धार्मिक कथाएँ भी उनमें आयीं। मैंने विनय के पद कई लिखे, जैसे –

दा दुख दीनदयाल हमे पर एक ठे आवे त एक टरै दा
ढेर न दा धन-धाम हमे परिवार क पेट मजै में भरै दा
कोप करा त करा एतने जेतना में पेड़ के पात झरै दा
काल के हाथ मरीं त मरीं न अकाल के हाथ से नाथ मरै दा

मैंने अपनी रचनाओं में प्रकृति वर्णन भी किये –

राजत बा ऋतुराज सुहावन पावन-पावन के बलिहारी
बीन बजावत बा भँवरा मन भावत कोकिल कै किलकारी
लागति बा धरती पियरी अरू गंध लुटावति आम क बारी
दूध में चांद नहान करे सनमान करे सगरी फुलवारी

एक विरह का चित्र है –

भार उरोजनि कै रस मातलि आपन बाय देखात न कोई
फागुन में जनु पोथी जरी एतना कहि के मन ही मन रोई
पावस के बजना सुनि के गुनि के गोरिया नहिं रात में सोई
बून परै तरवारि लगै सवना रे बता गवना कब होई

अभावग्रस्त गाँव के बारे में मैंने लिखा है–

हीरवा क मोतिया क जोड़िया दुअरवा
पर परल दलनवाँ पुअरवा क पलना
जड़वा के दिनवाँ में सब समुवाय जाला
एक ही रजाई बाँटै केंची केंचा ललना
आवा-गावा हित-नाता घटले के बढ़ते
के पास के पड़ोसिया से मँगनी क चलना
जिनिगी जुगाड़ क पिछाड़ गिरहतिया में
रतिया बखतिया पड़त बाटे कल ना

गाँव के जीवन में दु:ख में सुख खोजने की प्रवृत्ति रही है। मेरी कविता में इसका भी सहज चित्रण हुआ है–

गुड़गुड़ हुकिया दलान में रमायन की
फूँकि जाला दुअरे दुअरवा क कूड़ा,
सँझवा-विहनवाँ पलगिया पोसाय जहाँ
मटिया के बलबूता उचकल मूड़ा।
उतरि फसलिया सरग सुख देइ
जाले कचरी निमोनिया सरस मुँह बूड़ा
उंखिया के रस कोल्हुवाड़ के सोनहटा की
तपनी घुसुकिया सुरूकवा क चूड़ा।

देश की सामाजिक –राजनीतिक स्थिति भी मेरी कविताओं का विषय बनी–

केकर-केकर लेहीं नाँव कमरी ओढ़ले
सगरो गाँव का बताईं मितवा
दुख देले परछाईं, का बताईं मितवा
उलटि के छूरा भाई अपने भाई क गर काटे
रामराज के सपना में अपना केहूँ नहीं बाँटै
लागे चारों ओर चाईं, का बताईं मितवा
अनहोनी क लगल बा नम्बर आये दिन दुर्घटना
नट विदवा के खेल होत बा बइठ के दिल्ली पटना
कहि के दोष ठहराईं, का बताईं मितवा
एक ओर खाईं धँसल जात बा चोटी जात अकासे

समाजवादी नारा देलैं कथा गइल कैलासे
कइसे दोविधा हम मेटाईं का बताईं मितवा
मंत्र न लागे मंत्रिन के षडयंत्री भइले आगे
बड़ी समस्या विकट बावला सुलझे अपने भागे
केकरे मुँह में जिभिया नाईं, का बताईं मितवा।

मेरी कविता मानती है कि यह सब राजनेताओं के चरित्र स्खलन और लोभ पाप का ही अत्याचार है–

आसपास खाली राजधानी के धूमाल कर
गँवई के गाँव जरैला जरै दा।
गोटिया बिकान के दुकान में लगल रह
लूटपाट चोरी डाका खुल के करै दा।
ठेलि-ठेलि गाड़ी के अगाड़ी धसकाय चल।
लड़िके मरत लोग लड़िके मरै दा।
नेता जी नमस्कार कुर्सी बनल रहै
तेल छिछिकारि आग फूँकि दा बरै दा।

आज की विषम परिस्थिति में दहेज की बलि चढ़ती भारतीय कन्याओं का चित्र मैंने 'वर-कन्या' समझौता शीर्षक से लिखा है–

कन्या–

पानी क राशि हो तीरथ यज्ञ हो पर्व रहै या विदेश में जइहा।
धीर धरा दु:ख में सुख में गिरहस्त क जीवन जानि बितइहा।
जाव बोलव बिना परिवार या मंगल कार्य हो न रिसियइहा।
हाथी व घोड़ा व बैल बेसाहत पूछि लिहा मत मोहिं भुलइहा।
सोने के चानी क दे गहना पहना के उतारे बदे मत अइहा।
हाथ पर मोरे कमाई धरा चाहे मासिक हो चाहे रोज कमइहा।
दान करीं व्रत नेम करीं टोकिहा न कबौ एतनी गठियइहा।
सात समेटि ला शर्त हमार विचार भी आपन बोलि बतइहा।

वर–

जौं ले रहीं घर में तबले तोहूँ गूँथ के चोटी सिंगार सजाया
पूजन उत्सव दर्शन हो घर चाहे पराये मजाक उड़ाया
भाई बिरादर अग्नि ब्राह्मण विष्णु गवाह न तू झुठलाया
देखत बा ध्रुवतारा तोहैं परदेश रही घर बैठि बिताया
मोरे मत घर में हमरी हम जवन कहीं कुल मानि के रहिहा
आदर भाव सदा रखिहा पति धर्म के पालन में दुख सहिहा
जात बिरादर औ परिवार के बात कठोर कबो मत कहिहा
दा विसवास गृहस्त के जीवन में मोहि छोड़ि न दूसर चहिहा।

दाम्पत्य–

दम्पत्ति सूत्र के बंधन में बंधि जालि बेचारी व बोलि न पावै
सुक्ख मिलैं मन मोद भरैं दुख पावैं त दाँते प दाँत दबावै
जइसे बचे पगड़ी पितु के अरू भाई क मोछ गिरे न बचावै
धन्य धिया एहि भारत के पति के परमेश्वर मानि बितावै

शादी–

माथ पे मउर बा हाथ में कंगन अंगन-अंगन में सुधराई
सोहत बा पियरी धोतिया सगरो अंगना छितराई
सासु हिये हुलसै विलसै अरू मोद मनावत लोग लुगाई
मंगल गीत सोहावन लागत बाजत बा दुअरे शहनाई।
पावन पुण्य मुहुरत में गठबंधन आजु बजी शहनाई
रीति पिराति निवाह करै दुहूँ ओर से लोग बरात सोहाई
स्नेह समान बढ़ बरसै सरसै जुग जोड़ी मनोहरताई
है विधना शुभ हो शुभ हो वर हाथ से कन्या के माथे ललाई।

विदाई–

माई क बेटी धरोहर बा अरू बाप क बाटै योगावल थाती
भाई के आँखी क बा पुतरी भउजी क बदे घर के संझबाती
दादा क दादी क बा दुलरी मुनवाँ के बदे बा सनेह संघाती
आजु विदाई जुदाई क सूचक फाटति बा परिवार क छाती।

लड़की सोच में–

बाबू के आँखि से ओलत होइब कइसे रही देखले बिना माई
भउजी के आंगन सून लगी मोर नाँव पुकारि के भाई लजाई
के मुनवा क जोहार करी अरू दादा के दादी के हो जोगाई
पापी परान न छूटत बा विधना के बुझात बड़ा अनियाई।
जाई कहाँ बुधनि गइया जब घास खँचौली क ना मिल पाई
हाँफत जाई कहाँ कुकुरा पिठिया पर हाथे से के सुहराई।
जाई रूढ़ाय कतौं कदुवा पर के हड़होर के खोजि बताई
मे मे करी बड़की बकरी फफकार के माई पुकार के रोई।

मतारी क सिखवन ससुराल बदे–

सासु के माई कहिया बिटिया हमरे कोखिहा क हँसी न करइहा
भाई कहै मोछिया न गिरै भउजी कहली ननदी के जोगइहा
बाबू कहैं पगड़ी रखिहा ससुर पग धोइ के माथे चढ़इहा
दादा औ दादी कहै पति के संग मांगै समय त सती बन जइहा।
जेठ क बाजै खड़ाँऊँ जबै चट से जेवनार परोसि बढ़इहा
स्नेह से मोल खरीद लिहा न जेठानी क बात कबो दोहरइहा।
आवै जबै देवरा दुलरायल तो मिसिरी अस बोलि खियइहा
काँट गड़ै अंगुरी तबौ बिटिया चट से लिखि पाती पठइहा।

सहेली सिखावन–

रीत इहै दुनिया क सखी सखिया कहलीं सब लोग पराया
आपन एक पति परमेश्वर दूसरि बा देखले भरमाया
लीक सम्हारि चलै के पड़ी पग दाहिन बाँव न होय बचाया
सासुर साँच बा नारि बदे हम भूलब ना तोहऊँ न भुलाया।

लकड़े ने बूढ़े बाबा के पाँव छुए, तो रोकर बाबा बोले–

लाज रहै पगड़ी क लला हमरी तुम्हरी दुहुँ ओर बचदुहा
देश में चाहे विदेश रहा पर ठेस लगै न सम्हार के जइहा
भावुकतावश भूलि पड़ै तोहरै असरा न कबौं ठुकरइहा
आँखि क बा पुतरी बिटिया बेटवा तू दुलार क देख जोगइहा।

लड़की ससुराल में प्रताड़ित होकर पत्र लिखती है–

बाबू दहेज कमी रहले मोहि मारत बा गरियावै जेठानी
जेठ न खात बा मोर बनावल सासू कटाँस न जात बखानी
बापू समान सगा ससुरू उनहूँ न पियैं मोरे हाथ क पानी
आउर त सब आउर बा मुँह से नाहिं बोलत मोर परानी।
बोलत बा ननदी विरही केतनी दिन माहुर खाये के होई
पाती के छाती लगाई लिहा कहि देइहा कि माई हमार न रोई
जोग जथा मैके लिखिली घरहीं में मसान बनाई के सोई

लड़की जलकर मर जाती है–

बाढ़ दहेज के आइल बा पर लोभिन लाज न आवत बाटै
आग में कूदि जरै बिटिया केहु न केहु के समझावत बाटै
बेटि के बाप दबाइल बा बेहया मुँह अउर फुलावत बाटै
टीवी घड़ी बिना हुण्डा लिये खिचड़ी न दमाद के भावत बाटै।

छंद कवित्त–

मिलतै विधाता फटकार कहि देइत कि
बहुवंश देदा लेकिन बिटिया बस एक दा
बिटिया अनेक दा त संपदा कुबेर क दा
देवे के दहेज दा त टेकिन के टेक दा
सुंदर समाज दे दा लाज लोक रीतन के
उपजै कुरीत जहाँ सृष्टि में छेंक दा एतना
करा न जउ त सृष्टि से मुँह मोड़ ला तू
पोथी पुरान कुल पानी में फेंक दा

आलोक – इन छंदों को सुनने के बाद बावला जी ! मन में एक भावना उठती है कि इससे बड़ी कविता क्या होगी! यह श्रेष्ठ सृजन है। वाह ! आपको छंद का वैयाकरणिक ज्ञान कहाँ मिला?

बावला – कविता छंद लेकर फूटी। छंदों का वैयाकरणिक स्वरूप मुझे मालूम नहीं।

आलोक – स्वतंत्रतापूर्व और आज के भारत में क्या अंतर दिखता है?

बावला – मैंने स्वतंत्रता आन्दोलन के जुलूस में भाग लिया था। हमारे पूर्वज कहते थे कि बेटी–रोटी और दूध एवं पूत बिकने की चीज नहीं। मथुरा– वृंदावन में दूध की नदियाँ बहती थीं। दूध के मक्खन– दही बिकते थे, पर दूध कभी न बिका। आज सब कुछ बिक रहा है। पैसे की दुनिया है। हमारी धरती माँ बहुत कष्ट में है भाई! कुछ आगे न पूछिए।

लोकरंग
अंतर्लय की तलाश का उत्सव

विनय उपाध्याय

माघ का महीना। शिशिर की नर्मोनाजुक संध्याएँ। वसंत कहीं बीच राह में है। बयार का कोई झोंका पेड़ की शाखों पर लहराता है और चुपचाप दे जाता है संदेश-'वसंत आ रहा है'। इससे पहले कि धरती के आँगन में ऋतु अपना वासंती रंग बिखेरे, भोपाल की वादियों में उत्सव का अहसास अंगड़ाई लेने लगता है। आपाधापी की महानगरीय जिंदगी में उलझे हजारों कदम रवीन्द्र भवन की ओर मुड़ने लगते हैं। आँख और मन अटक जाते हैं- संस्कृति के सतरंगी विन्यास को सामने पाकर। जिंदगी की भूली-बिसरी छवियाँ नए-नए रूप धरकर सामने आती हैं। जीवन का संगीत भीतर तक बज उठता है और पाँव में उठी थिरकन उल्लास जगाने लगती है।

किसी छायावादी कविता की तरह लगने वाला यह पाठ उस जलसे का रेखांकन है जो 'लोकरंग' की शक्ल में अब हर साल शैल-शिखरों की नगरी भोपाल के फलक पर उभरता है। गणतंत्र दिवस को लोक संस्कृति की भावात्मक अंतरंगता के बीच मनाने का यह उपक्रम संस्कृति विभाग की आदिवासी लोक कला अकादेमी की उस प्रतीज्ञा और पुरुषार्थ का प्रतीक है जिसमें भारतीय लोकतंत्र के सूत्र-सामूहिकता, सहकार और शांति जीवंत हो उठते हैं। यही वजह है कि 'लोकरंग' सिर्फ सात दिनों का रस्मी आयोजन भर नहीं है, वह संस्कृति का एक महानअनुष्ठान बन चुका है। पच्चीस साल पहले एक छोटी-सी पगडंडी पर मध्यप्रदेश के जनजातीय और लोक कलाकारों तथा शिल्पकारों ने अपनी आमद दर्ज करते हुए इस उत्सव का पहला सोपान तय किया था और आज अपने छब्बीसवें पायदान पर आकर यह उत्सव परिकल्पना, विस्तार और संयोजन का आदर्श और मानक मंच बन गया है। सिर्फ मध्यप्रदेश ही नहीं, सुदूर

राज्यों और पड़ौसी देशों के लोकरंग भी एक साथ, एक ही समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सनातन इबारत को पुनः पढ़ने की रौशनी देते हैं।

26 वें लोकरंग का अनूठापन इस अर्थ रहा कि यह इस सदी के नए दशक का एक विराट उत्सव बन सका, जहाँ लोक संस्कृति और परंपराओं में रची बसी भारतीयता पड़ौसी मुल्कों अमेरिका, इंडोनेशिया, जार्जिया, मेक्सिको, स्लोवेनिया और पार्शियन देशों के साथ कलात्मक हमजोली करती प्रकट हुई। छप्पन एकड़ क्षेत्रफल में फैला रवीन्द्र भवन परिसर अपने दामन में इस दफा धरोहर, द्वीपान्तर, प्रतिरूप, लोकवार्ता, उल्लास जैसे उन परकोटों से सुसज्जित रहा जहां पारंपरिक साज-बाज से सना देशी संगीत और लचकती-बलखाती नृत्य मुद्राओं का मोहक नजारा था। रेशम के धागों और सिल्क की कढ़ाई, रंगाई, छपाई और कसीदाकारी से निखरते नायाब शिल्प नमुदार हुए। लोकरंग के इसी आंगन में हिन्दुस्तान की लोक और जनजातीय जिंदगी के भूले-बिसरे पन्नों को बाचने की गरज पूरी करने इस दफा नेशनल बुक टस्ट्र नई दिल्ली ने हाथ आगे बढ़ाया है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला-केन्द्र और संगीत नाटक अकादमी तथा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय ने अपने खजाने से सैकड़ों मुखौटों की सौगात दी, जो नुमाइश की शक्ल में आगंतुकों को लुभाते रहे। हमेशा की तरह शिल्प का बाजार बेशकीमती साजों-सामान से सजा था और खरीद-फरोख्त के सिलसिले के बीच देशी-विदेशी स्वाद को पूरा करने अनेक तरह के पकवान परोसे गए।

लोक साहित्य का लोकार्पण

जैसी कि 'लोकरंग' की रवायत रही है, मध्यप्रदेश के राज्यपाल रामेश्वर ठाकुर इस सांस्कृतिक बहुरंग का आगाज करने 26 जनवरी की शाम उत्सव परिसर में पधारे। इस जलसे के मेजवान संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने महामहिम के साथ मिलकर बैंकॉक के प्राचीन गोल्डन पैलेस की भव्य सुंदरता समेटे मंच पर कलाकारों की हौसला आफजाई की। समारोह की आयोजक संस्था आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी द्वारा संपादित-प्रकाशित 'म.प्र. की जनपदीय कहावतें' और 'म.प्र. के जनपदीय खेल गीत' पुस्तकों के साथ ही स्वराज संस्थान द्वारा संग्रहित 250 देश भक्ति गीतों के संगीतबद्ध सीडी अलबम 'जनगरजै' का लोकार्पण किया। राज्यपाल ने मुखौटों पर केन्द्रित प्रदर्शनी-प्रतिरूप' का अवलोकन भी किया।

'प्रतिरूप' का सम्मोहन

पहली शाम लोकरंग के मुख्य सांस्कृतिक मंच पर प्रदर्शित लोक नृत्यों की समवेत प्रस्तुति को देखना दिव्य अनुभव था। लोक कलाओं की आंतरिक ऊर्जा और उनकी परस्परता को पहचानकर हमारे समय की प्रतिभाशील नृत्यांगना सुश्री मैत्रेयी पहाड़ी ने अपनी परिकल्पना और संज्ञान से 'लोकरंग' में नृत्य दलों

को संयोजित कर एक विशेष रूपक तैयार किया। यह रचना परंपरा के चटख रंगों को एक भाव सूत्र में पिरोने की कलात्मक आकांक्षा थी। उस अंतर्लय की तलाश जो जीवन और संस्कृति के साथ एक सनातन रिश्ता बनाती है। परिधान, गहने, साज-बाज और लय-ताल पर थिरकने के जुदा अंदाज होने पर भी भाव की भूमि पर संस्कृति के ये जागरूक पहरेदार साथ-साथ सिमट आए। इस संरचना में हमारी संस्कृति के उस मुखौटे को उभारने की मंशा रही, जिसमें हम अपने आप को तलाश सकते हैं, क्योंकि मुखौटा भी तो अंततः एक चेहरा ही है। मैत्रेयी ने सामुदायिकता का अनोखा संसार रचते हुए मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमालच प्रदेश, अरुणाचल, झारखंड, पश्चिम बंगाल, गुजरात, उड़ीसा, तमिलनाडु, केरल और जम्मू कश्मीर के साथ ही अमेरिका, इंडोनेशिया के अतिथि दलों को साधा।

लय-ताल और थिरकन के अल्हदा रंग

हमेशा की तरह इस सांस्कृतिक समागम में लोक नृत्यों का मोहक सा जाल अलग-अलग राज्यों और पड़ौसी मुल्कों की बेशकीमती विरासत के पहलुओं के साथ प्रकट हुआ। उड़ीसा के डमकच, बजनिया, जम्मू-कश्मीर के बचनगमा, झुमरो, धमाली, महाराष्ट्र के लिंगो, सौंगीमुखौटे, तमिलनाडु के मयूर और डमी हॉर्स, झारखंड के झूमरा और सरईकेला छाऊ, पंजाब के जिंदुआ, भागड़ा, राजस्थान के सपेरा, घूमर, भवाई, गुजरात के गरबा, टीपणी, गोफ रास, उत्तरांचल के हिलजात्रा, कर्नाटक के गारूड़ी गुम्बे, सिक्किम के सिंघी छम, हिमाचल के मुखौटा, पश्चिम बंगाल के

पुरलिया छाऊ, छत्तीसगढ़ के करमा, सेला और मध्यप्रदेश के मटकी, बधाई के साथ कोरकू, गोंड जनजातीय नृत्य थापटी, गादली, गुदुमबाजा ने मिलकर लोकरंग की शामों को दिलकश नजारे में बदल दिया। हजारों की तादाद में उमड़े दर्शकों के लिए हैरत और खुशी इस बात की रही कि कला के किसी भी गुरूकुल में जाए बगैर परंपरा के ये प्रहरी अपने नृत्य रूपों में कितने अनुशासित और अपने सौंदर्यबोध के प्रति जागरूक दिखाई देते हैं। इनके पास चमत्कारिक सामुदायिकता और गहरी मानवीय आस्था का सुंदर मेल है, जो अंततः अमन, एकता और आपसदारी की मिसाले बन जाता है। इन नृत्यों के साथ चली आती है कुछ स्मृतियाँ, विश्वास और परंपराएँ जो हमारे जनपदीय जीवन के प्रवाह के साथ ही हमारे आदिम सत्य को भी उद्घाटित करते है।

सरहद पार से आया पैगाम

पिछले कुछ बरसों में लोकरंग के आँगन में 'द्वीपांतर' के अंतर्गत सरहद पार के देशों की आमद ने कौतूहल का नया संसार रचा है। इस बार अमेरिका, इंडोनेशिया, जॉर्जिया, मैक्सिको, स्लोवेनिया और ईरान से आए कलाकारों ने नृत्य संगीत की झलकियों में परंपरा और आधुनिकता का प्रयोगधर्मी मिजाज प्रकट किया। काबिले गौर यह कि हर प्रस्तुति अपने स्वरूप में भारतीयता से भिन्न होकर भी भाव के धरातल पर मनुष्यता को पुकारती रही। यह इंसानी संवेदना ही लोकरंग जैसी गतिविधि का अभीष्ट भी है। अमेरिका से आई लीय रचेल और उनकी साथिनों ने आधुनिक नृत्य रूपक तैयार किया था। 'मेमॉयर स्पेस और सरकॉयज' यानि

मन में बनी बिगड़ती स्मृतियों और जीवन चक्र के बिम्ब इनमें शामिल हुए। दूसरे दिन की विशेष नृत्य प्रस्तुति में इंडोनेशिया की खेतिहर संस्कृति को दर्शाता नृत्य पेश हुआ। भावी फसल की समृद्ध का यह नृत्य पारंपरिक वाद्यों की धीमी-धीमी थिरकन पर बेहद मनोरम जान पड़ता है। स्लोवेनिया के फायर डांस ने जादुई अंदाज में आग और हवा की ऊर्जा को थामकर जंगली जीवन की हकीकतें नुमाया की। उधर ईरान का दल सूफी परंपरा का संगीत लेकर रसिकों को अपने मोहपाश में बांधे रखा। मैक्सिको के दल ने वहाँ के स्थानीय निवासियों द्वारा किये जाने वाले पारंपरिक आनुष्ठानिक नृत्य किया। सिर पर मोरपंखों का अनूठा मुकुट लगाये और सफेद वस्त्र धारण किए नृत्यांगनाओं ने अनोखी छटा बिखेरी। खास बात ये है कि मैक्सिकन नृत्य करने वाली ये सभी बालाएँ दिल्ली में रहकर भारतीय नृत्यों की शिक्षा ले रही हैं। एक

नृत्यांगना मैक्सिको की मूल निवासी है तो एक बेलारूस की। नृत्य को देखकर भाव तो समझ में आ जाते हैं, मगर दल का नेतृत्व कर रही कैरोलीना ने नेपथ्य में हुई एक विशेष बातचीत में जरा बेहतर ढंग से इसका मर्म समझाया। उन्होंने बताया कि हमारे भीतर की अच्छाई और बुराई के मध्य होने वाले द्वन्द्व को प्रदर्शित करता है उनका यह नृत्य। अंतस की बुराईयों को पराजित करने के लिए व्यक्ति प्रकृति का आह्वान कर शक्ति प्राप्त करता है। यह नृत्य एक प्रकार से आध्यात्मिक तैयारी है।

इंडोनेशियन पवेलियन

इंडोनेशिया का समूह रवीन्द्र भवन परिसर में ऐसे रच-बस

गया जैसे सदा से यहीं का हो। मुक्ताकाश मंच के पीछे रवीन्द्र भवन के अप्सरा रेस्त्रां वाले क्षेत्र में 'इंडोनेशियन पवेलियन' गुलजार हुआ। इनमें वहाँ के मुखौटे, पोशाकें, किताबें और ढेरों रूचिकर सामग्री से शहरवासी रूबरू हुए। साथ ही यहाँ संगीत का भी एक कोना बना, जहाँ रोजाना पारपरिक वाद्यों के साथ दोस्ताना माहौल में संगीत की बरसात हुई। 'रिनडिक' नामक पारंपरिक और प्राचीन वाद्य की प्रस्तुतियाँ खास रहीं। बाँस के बने इस वाद्य से आनुष्ठानिक संगीत की मद्धम और मनोरम धुनें निकलती हैं और यह दो कलाकारों द्वारा एक साथ बजाया जाता है।

खास बात यह है कि इंडोनेशियाई नृत्यों की प्रस्तुति में भी इस वाद्य का उपयोग कर एक नया प्रयोग किया गया था। लगभग दो दर्जन इंडोनेशियाई कलाकारों के इस समूह के संयोजक थे असरी त्रेसिनादी। 25 साल के इस युवक ने भारत को अपना दूसरा घर बना लिया है। संपूर्ण भारत में यात्रा करने वाला यह उत्साही युवक फिलहाल ढाई सालों से गुजरात के बड़ौदा में 'ऐथिनिक म्यूजिकोलॉजी' की पढ़ाई करते हुए भारत और इंडोनेशिया के सांस्कृतिक आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। असरी कहते हैं कि मैं चाहता हूँ संवाद हो। हम अपने-अपने देश की सीमाओं में बंधकर रह जाएँ यह सार्वभौमिक सद्भावना के लिए ठीक नहीं है। वाकपटु और मिलनसार असरी ने भारत भवन, रवीन्द्र भवन समेत यहाँ के लगभग सभी कला केन्द्रों में दोस्त बना लिए हैं। उसे सितार, तबला समेत ढेरों भारतीय वाद्य बजाना आते हैं। वह यहाँ के संगीत और संस्कृति को दोनों हाथों से समेट रहा है। साथ ही अपना ज्ञान, अपनी संस्कृति भी ।

लोम्बोक द्वीप से आया संगीतकार

इंडोनेशिया में बाली द्वीप से थोड़ी दूर स्थित है 'लोम्बोक' नामक एक द्वीप जहाँ लोग सुकून और प्राकृतिक संगीत के लिए जाते हैं। इस द्वीप पर कई संगीतकार, गीतकार अपनी साधना करते हैं। वहीं के एक गीतकार अरी जुलियंट बताते हैं कि उनके यहाँ भी एक नर्मदा है। यह एक मनोरम स्थल है, जहाँ जल और प्राकृतिक सौंदर्य बरसता है। कुछ लोग उसे नर्मदा पार्क भी कहते हैं। अरी ने रवीन्द्र भवन के इंडोनेशियाई स्टॉल पर बने छोटे से म्यूजिक प्लेटफार्म पर छोटी-छोटी सभाओं में संगीत रसिकों से दोस्ती गांठी। जब यहाँ आकर उन्हें पता चला कि मध्यप्रदेश की

नर्मदा बेहद पूजनीय नदी है तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। अरी ने एक गीत भी सुनाया जिसके बोल थे 'चिंतामु, चिंताकु'...। जब उनसे पूछा गया कि इसका अर्थ क्या होता है उन्होंने बताया कि यह एक प्रेम गीत है जिसका मतलब है कि 'योर लव, माई लव' यानि' तुम्हारा प्यार, मेरा प्यार और इस प्यार के सहारे हम अनंत आकाश में उड़ते जाएंगे। अरी ना सिर्फ गाते हैं, बल्कि हाथ से गिटारनुमा और मुख से माउथ आर्गन जैसा मगर उससे भिन्न एक वाद्य बजाते हैं।

बापू को स्वरांजलि

'लोकरंग' की पांचवीं शाम शहीद दिवस (30 जनवरी) के निमित्त स्वाधीनता के शिल्पी महात्मा गांधी को स्वरभीनी

श्रद्धांजलि दी गई। बापू की भजनप्रियता का सुरीला रेखांकन करने मुंबई की सुपरिचित पार्श्व गायिका सुश्री कविता सेठ भोपालवासियों के रू-ब-रू थी। स्वराज संस्थान संचालानालय द्वारा आयोजित भक्ति संगीत की इस सभा में कविता ने गांधी जी के प्रिय भजन भक्त नरसिंहदास महंत की बहुश्रुत रचना 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे' के साथ ही हजरत अमीर खुसरो, बाबा बुल्लेशाह तथा रोमी जैसे सूफी संतों के कलाम गाते हुए माहौल को आध्यात्मिक चेतना प्रदान की। संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा और स्वराज संस्थान के संचालक श्रीराम तिवारी ने सुश्री कविता का शाल, श्रीफल भेंट कर अभिनंदन किया।

रेशम की कहानी

वस्त्र परंपरा पर केन्द्रित लोकरंग का सालाना वर्कशॉप इस बार रेशम पर केन्द्रित रहा। 'रेशम' कथा नाम से आयोजित इस कार्यशाला में धागा बनाने से लेकर वस्त्रों की बुनाई, रंगाई, छपाई और कसीदाकारी तक हर प्रक्रिया देखने, सीखने स समझने को मिली। वर्षों से वस्त्र परंपरा के विभिन्न आयामों से जुड़े चिन्मय मिश्र जो रेशम-कथा के संयोजक भी थे, बताते है कि पिछले बारह सालों से लोकरंग में थीम आधारित काम कर रहे थे, जिसमें बुनाई, छपाई, रंगाई आदि शामिल हैं। पहली बार हमने धागे को लेकर काम किया है। ऐतिहासिक-सांस्कृतिक व पौराणिक महत्व के रेशम की समग्र कथा को कहने का प्रयास किया है। वर्कशॉप में सिल्क के सभी प्रकार मूंगा, कोसा, इरी और मलबरी के धागे से लेकर वस्त्रों की बुनाई और उस पर होने वाली कसीदाकारी की विधि दर्शायी गई। कपड़ों की रंगाई लोकरंग के वर्कशॉप में पहले

भी दिखाई जा चुकी है, मगर धागे की रंगाई पहली बार दिखाई गई। केमिकल और वेजीटेबल, दोनों प्रकार के रंगों से रंगना सिखाया गया। रेशम कथा के संयोजन में सहयोगी मुमताज कहते हैं कि इस कार्यशाला का उद्देश्य है रेशम से बहुसंख्य लोगों को परिचित कराना। अगर लोग रेशम को अपनाएंगे तो बनुकरों के एक बड़े हिस्से को रोजगार देंगे। रेशम बनाने की विधि देखकर वे इसकी महत्ता समझ सकेंगे और इसके कारीगरों के प्रति सम्मान भी बढ़ेगा।

शिल्प बाजार में उमड़ी रौनक

परंपरा की नई आहटों के साथ अपने सुंदर शिल्पों को लिए छब्बीसवें 'लोकरंग' में शरीक हुए विभिन्न राज्यों से आए कलाकारों के हुनर पर भोपालवासी फिदा थे। किसी को उज्जैन की शारदा बाई का 'खजूर' शिल्प लुभा रहा था, तो किसी की नजर उदयपुर

के टेराकोटा शिल्पी प्रकाश कुमार के 'जादू के चिराग' पर आकर अटक गई। वहीं जोधपुरी बँधेज साड़ियाँ और झारखंड के अनूठे शिल्प ने बच्चों, युवाओं से लेकर उम्रदराज वाशिंदों तक अपना आकर्षण कायम रखा।

पिछले पांच वर्षों से लोकरंग में नियमित आमद दर्ज करा रहे दाहोद (गुजरात) की 'सहज' संस्था के दीपक भाई हीरा भाई अहीर लोकरंग में अपनी उपस्थिति को गौरव मानते हैं। हस्तनिर्मित ज्वेलरी, टी कोस्ट, राइटिंग पेड, लेडिज पर्स आदि की बिक्री से खुश हीराभाई कहते हैं- ऐसे आयोजन हमारी लोककलाओं का मोर, झुमर, टेबल मेट आदि की बिक्री ने मालवा की इस लोक शिल्पकार के चेहरे पर रौनक ला दी। उदयपुर जिले से आए प्रकाश कुमार की टेराकोटा निर्मित जादू के चिराग तथा दीगर उपयोगी सामान अपनी बनक के कारण आकर्षण का केन्द्र बने।

खजूर और जूट के मिश्रण से तैयार खूबसूरत पर्स और बास्केट्स का जखीरा लेकर पहली बार लोकरंग में आए पलवल हरियाणा के प्रदीप बांगा फरमाते हैं - उन्हें उम्मीद से ज्यादा रिस्पांस मिला। वहीं खुर्जा (उ.प्र.) से खूबसूरत क्रॉकरिज लेकर आए बत्रा हैंडीक्राट्स के अमित चौधरी भी काफी संतुष्ट थे। उन्होंने बताया

विस्तार करते हैं, तो टायल्स से निर्मित खूबसूरत द्वार-लड़ियां, ड्राइंग रूम की शोभा बढ़ाने वाली दीगर सामग्री और आकर्षक दराजों की रोज-बरोज बढ़ती बिक्री को लेकर गटियारी गांव (जयपुर) के रामदेव भी संतुष्ट हैं। लोकरंग के जरिए उनकी चीजों को अच्छा प्रतिसाद मिला।

छत्तीसगढ़ के रायगढ़ से पधारे दयालाल झारा के पूर्वज इस उत्सव की पहली पायदान से ही जुड़े है और यह सिलसिला छब्बीसवी सीढ़ी तक आते-आते बरकरार रहा है। बिना किसी अतिरिक्त आवरण के खालिस पीतल से निर्मित गणेश व मंडिया देव की प्रतिमाएँ, बैलगाड़ी, हाथी, हिरण लिए झारा का यह पारंपरिक शिल्पकार अपनी ओर सबका ध्यान खींचता रहा है। उज्जैन की शारदा बाई- समुंदर सिंह झाडूवाले का खजूर शिल्प तो सिर चढ़कर बोला। कलात्मक झाडुओं के विभिन्न प्रकारों के अलावा गुड़िया, कि नए दौर में लोगों की बदलती च्वाइस के मद्देनजर तैयार उनके क्रॉकरिज आयटम्स को काफी तादाद में लोग खरीद रहे हैं।

जोधपुर से जोधपुरी बँधेज साड़ियां (टाई एण्ड डाई) लेकर शिरकत करने वाली जैनब बी कहती हैं - बढ़ती महंगाई और हाट-बाजार तथा मेलों की बढ़ती संख्या के बाद भी उन्हें यहाँ काफी तवज्जो मिली। अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए जैनब ने कहा कि - इसकी एक वजह फिल्मों तथा टीवी धारावाहिकों में जोधपुरी बँधेज काफी उपयोग में लाई जाती है। लिहाजा फैशन के तौर पर इनका इस्तेमाल खूब बढ़ा है।

दुनिया भर के चेहरे

'लोकरंग' में शामिल हुए देश और दुनिया के मुखौटे। मुखौटे जो कि आदिम लोक में संस्कार, जादू-टोने, अनुष्ठानों का

अभिन्न अंग है। साथ ही विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं में सम्प्रेषण का जरिया भी है। अभिव्यक्ति के केन्द्र चेहरे की प्रतिकृति के तमाम प्रकार इस विहंगम लोक मेले में शहरवासियों से संवाद करते रहे। यहाँ देश-देशान्तर के लगभग 500 मुखौटे शामिल हुए। यही नहीं प्रदर्शनी स्थल पर मुखौटों की एक कार्यशाला भी हुई, जिसमें खासकर बच्चों और युवाओं ने मुखौटे बनाने की विधि देखी और मौजूद शिल्पकारों के साथ खुद भी मिट्टी और लकड़ी में चेहरों को ढालने का तर्जुबा लिया। मुख को सजाने का उद्देश्य पात्र को मौलिकता के सर्वाधिक निकट रूप में अभिव्यक्त करने का जरिया है। मुखौटा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अभिव्यक्ति

व सम्प्रेषण के इस अखिल वैश्विक कला रूप की प्रदर्शनी में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय के मुखौटों के विशाल भंडार से भी कुछ चुनिंदा मुखौटे शामिल हुए। प्रदर्शनी में प्रमुख रूप से दो आयाम रहे। एक जिसमें पारम्परिक संस्कारों और अनुष्ठानों में इस्तेमाल होने वाले मुखौटे और दूसरा कला व मनोरंजन के लिए उपयोग में आने वाले मुखौटों की श्रृंखला थी। संग्रहालय के लगभग 40 मुखौटे इसमें शामिल थे। इसमें कर्नाटक के उडूपी के देवताओं की मुखाकृति वाले मुखौटे, बिहार, झारखण्ड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल आदि कई राज्यों समेत इंडोनेशिया जैसे देशों के मुखौटे भी शामिल थे।

मुखौटों का पौराणिक पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए विशेष रूप से इस्तेमाल होता है। जैसे रामायण, कालियामर्दन आदि प्रसंगों की जब नाट्य प्रस्तुतियाँ होती हैं। इनमें फेशियल मेकअप यानि मुख सज्जा के बजाय पूरा का पूरा चेहरा ही पहन लिया जाता है। चेहरे बदलने से पूरा चरित्र ही बदल जाता है। भारतीय कलाओं में कई ऐसी नृत्य व नाट्य शैलियाँ हैं, जो मुखौटा आधारित हैं। उड़ीसा का 'छाऊ' नृत्य, दक्षिण के कुटियाअट्टम, केरल का यक्षगान आदि तमाम लोक व शास्त्रीय नाट्य शैलियों में मुखौटों की परंपरा है। इसके पीछे विचार यही है कि दूसरे का चेहरा लगाकर कलाकार परकाया प्रवेश करता है। व्यक्ति अपने चिर-परिचत मुख मुद्राओं वाले पर किसी और का चेहरा पहनकर कुछ और ही हो जाता है।

गौरतलब है कि 'प्रतिरूप' श्रृंखला के तहत पिछले वर्ष

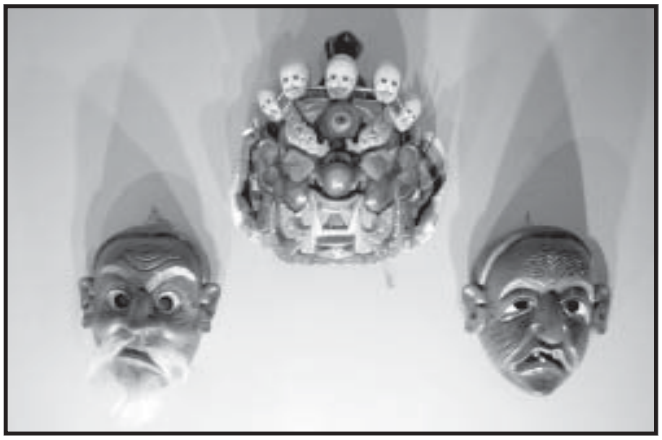

देश-विदेश की पुतलियाँ शामिल हुई थी। उससे पहले तुरंगम' नाम से भारतीय परम्परा में शामिल अश्व की विभिन्न छवियों से दर्शक रूबरू हुए थे। यहाँ दीपक, मंजूषा और हाथ से झलने वाले पंखों की भी रूपाकर प्रदर्शनियाँ लगाई जा चुकी हैं।

सांस्कृतिक उपलब्धि है यह उत्सव

लोकरंग का होना मध्यप्रदेश में एक बड़ी सांस्कृतिक इच्छाशक्ति का पूरा होना है और बिना शक इसका श्रेय संस्कृति अमले से जुड़े उन तमाम शिल्पियों को जाता है। जिन्होंने नौकरी की औपचारिक जिम्मेदारियों से हटकर इस जलसे के लिए निजी जीवट, आपसी सौहार्द्र और सृजनात्मक संपर्कों का बड़ा फलक तैयार किया है। लोकरंग के बनते संवरते जाने की कहानी में नए मोड़ में आते अगर आदिमजाति कल्याण विभाग की स्थाई सदाशयता शुमार न होती और बदलती सत्ताए तमाम रागद्वेषों से ऊपर उठकर

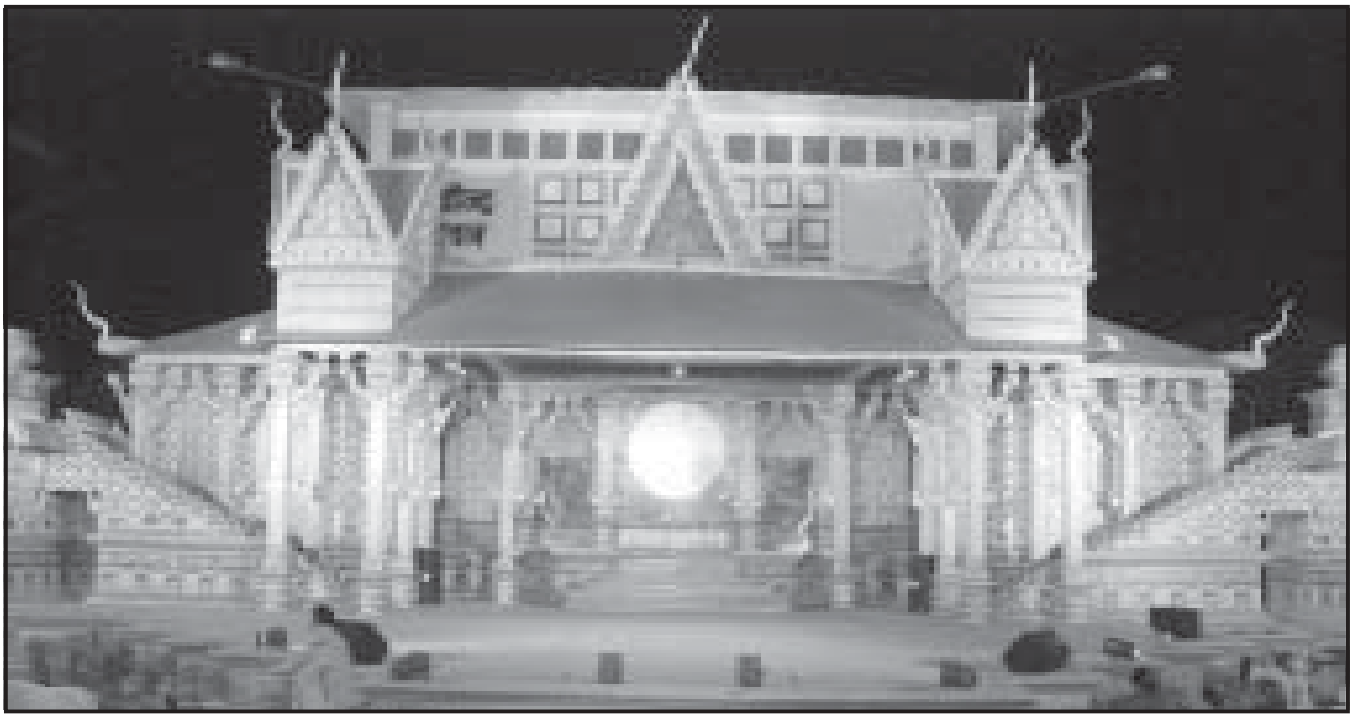

इसे सच्ची लोकतांत्रिक शक्ति प्रदान न करती। लोकरंग के चढ़ते पायदानों के साक्षी, इसके विस्तार के स्वप्नद्रष्टा तथा आदिवासी लोककला अकादमी के निदेशक कपिल तिवारी इसे जीवन की व्यापक गतिविधि के बीच बहुत धीरज से गढ़े एक ऐसे लोक पर्व की संज्ञा देते है, जहाँ उद्देश्यपूर्ण मनोरंजन और रसास्वादन को परंपरा के प्रकाश में देखा-महसूसा जा सकता है। बकौल तिवारी, लोकरंग मेरे सांस्कृतिक जीवन की एक बड़ी उपलब्धि रही है। प्रसिद्ध शिल्पकार देवीलाल पाटीदार के अनुसार लोकरंग समय की अनंत स्मृतियों का अनूठा उत्सव है। कवि-कथाकार ध्रुव शुक्ल कहते है लोकरंग ऐसा मेला है जिसने कठिन बाजारवादी समय में लोक आस्था और पारंपरिक कला शैलियों को बचाया है। कई बरसों से इस उत्सव के मुख्य मंच का आकल्पन करने वाले चित्रकार-शिल्पी हरचंदन सिंह भट्टी के लिए इस जश्न में शामिल होना हमेशा ही एक आदिम यात्रा रहा है।

निमाड़ और निमाड़ उत्सव

वसन्त निरगुणे

आस्था के पुण्य स्थल महेश्वर में आयोजित 'निमाड़ उत्सव' निमाड़ के लिये आज एक गौरब का सबब बन गया है। आज से सोलह साल पहले सन् 1994 में निमाड़ उत्सव की शुरुआत हुई। इन सोलह वर्षों में न केवल निमाड़ अंचल में बल्कि देश के सांस्कृतिक परिदृश्य में इस उत्सव ने अपनी अमिट छाप जोड़ी है। इसके पीछे आयोजकों की गहरी सांस्कृतिक समझ और दृष्टि रही है। 'निमाड़ उत्सव' स्थानीय नागरिकों की महत्त्वाकांक्षा का एक अंग था, एक सपना था, पुण्य सलिला नर्मदा के तट पर प्रातः स्मरणीय देवी अहिल्याबाई द्वारा बनवाये गये सुरम्य घाटों पर एक ऐसा जगमग लोक उत्सव जिसमें न केवल निमाड़ बल्कि प्रदेश और देश की कलाओं के विविध रंग एक जगह एक ही मंच पर देखने को मिले।

किसी नदी के किनारे आयोजित होने वाला देश का संभवतया यह इकलौता लोकोत्सव है, जिसकी निरन्तरता अखण्डित सोलह सालों से चली आ रही है। इलाहाबाद गंगा किनारे 'गंगा उत्सव' शुरू हुआ जरूर था। अब कभी-कभी यह उत्सव किया जाता है, निरन्तरता इसमें भी नहीं रही। इस अर्थ में निमाड़ उत्सव देश में पहला नदी तट का उत्सव बन गया है, जिसमें जल क्रीड़ाएँ भी शामिल हैं। नौका सजावट, नौका दौड़, तैराकी आदि यहाँ प्रतिवर्ष आयोजित होते हैं, जिसमें स्थानीय और आसपास के केवट तथा अन्य युवा लोग अत्यन्त उत्साह से हिस्सा लेते हैं, जिसे- प्रदेश का पर्यटन विभाग बड़ी संजीदगी से आयोजित करता है।

महेश्वर जहाँ यह उत्सव आयोजित होता है। यह निमाड़ की सांस्कृतिक राजधानी बन गया है। अतीत में कभी पौराणिक काल में भी महेश्वर को अनूप जनपद की राजधानी होने का गौरव प्राप्त रहा है। महेश्वर प्राचीन 'माहिष्मती' था। संस्कृति के केन्द्र में ओंकार-मांधाता और माहिष्मती ही रही है। कालिदास ने नर्मदा तट और माहिष्मती का सुन्दर वर्णन किया है। पुराणकथा के अनुसार

मांधाता को मुचकुन्द ने माहिष्मती के राजधानी बनाने के सौ वर्ष पूर्व बसाया था। मुचकुन्द को ही माहिष्मती को सजाने संवारने का श्रेय है। पुरातत्व वेत्ता डॉ. सांकलिया ने एक स्थान पर लिखा है- महेश्वर नर्मदा किनारे इन्दौर से 60 मील दक्षिण में और जो कि पुराणों में उल्लिखित 'माहिष्मति' का तत्सम है, प्रमुख तीर्थ स्थान के रूप में जाना जाता था। हरिवंश पुराण में राजा महिष्मान को माहिष्मती का संस्थापक माना गया है।

एक प्राचीन पौराणिक कथा के अनुसार रूद्र ने त्रिपुर की तीनों पुरियों को नष्ट करने के बाद उसका वध महेश्वर में किया

था। जिस स्थान पर त्रिपुर राक्षस का रूद्र ने वध किया था, उस स्थान पर आज का मालेश्वर मंदिर स्थित है। महाभारत के द्रोणपर्व में त्रिपुर के वध के पश्चात् रूद्र का तेज इसी स्थान पर प्रकाशित होकर समा गया था। महाभारत में यह वर्णन आता है कि माहिष्मती की अग्निदेव स्वयं चारों ओर से अग्नि परिखा बनाकर दिन-रात रक्षा करते हैं। शिवपुत्री शांकरी यानी नर्मदा के आग्रह पर शिव स्वयं जन कल्याणार्थ महेश्वर में ही सदैव निवास करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि महेश्वर के जितने कंकर उतने शंकर। शिव का एक नाम महेश्वर भी है। इतना सब महेश्वर के बारे में लिखने का मतलब निमाड़ उत्सव के केन्द्र में भी महेश्वर ही है।

अत: स्मरणीया माता अहिल्याबाई के समय में महेश्वर को पुन: होल्करों यानी निमाड़ और मालवा दोनों की राजधानी होने का सुअवसर मिला। अहिल्याबाई ने पूरे देश में दान-पुण्य और पवित्र नदियों के तट पर सुन्दर घाट-मंदिर बनवाने का सिलसिला चलाया। उन्होंने महेश्वर में देशभर से बुनकरों को बुलाकर 'महेश्वर साड़ी' बनवाने की नींव डाली। इससे अहिल्याबाई और महेश्वर की कीर्ति पौराणिक काल के समान पूरे देश में फैल गई।

एक बार फिर निमाड़ उत्सव के कारण महेश्वर निमाड़ की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में पूरे देश में प्रतिष्ठित हो गया । इसका कारण यह कि सोलह सालों में देश की कोई ऐसी लोक और आदिवासी पारम्परिक प्रदर्शनकारी विधा शेष नहीं है, जो महेश्वर के सुरम्य अहिल्याबाई घाट के मनोहारी मंच पर प्रदर्शित न हुई हो। शास्त्रीय विधाओं कथक , भरतनाट्यम, कथकली, यक्षगान, मणिपुरी रास आदि के कलाकार और कलादल महेश्वर प्रतिवर्ष आते हैं। समय-समय पर विदेशी कला परम्परा का भी दर्शन निमाड़ के महेश्वर मंच पर होता रहा है। एक दिन लोक बोलियों के गीत, कविताएँ 'कविता में सुबह' में प्रदेश की सभी प्रमुख पाँच बोलियों निमाड़ी, मालवी, बुन्देली, बघेली और छत्तीसगढ़ी के रचनाकार सुनाते मिल जाते है। वहीं कवि सम्मेलन देश के प्रतिष्ठित मंचीय कवियों की कविताएँ उपस्थित दर्शक श्रोताओं को हर वर्ष गुदगुदाने का कार्य करती है। कविता में सुबह और कवि सम्मेलन साहित्य अकादमी, भोपाल के सौजन्य से निमाड़ उत्सव के प्रारंभ से ही संचालित होते आये हैं। ये दोनों आयोजन भी अपनी निरंतरता में देश में एकलौते ही कहे जा सकते हैं। ये निमाड़ उत्सव के साथ निरंतर चलते रहेंगे।

निमाड़ उत्सव का शुभारंभ शरदकाल में सन् 1994 में प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री शफी मोहम्मद कुरेशी ने अहिल्या घाट पर निर्मित सुन्दरतम और भव्य मंच पर संस्कृति मंत्री डॉ. विजयलक्ष्मी साधौ के सान्निध्य में दीप प्रज्ज्वलित कर किया था। तब समूचे निमाड़ और महेश्वर-मंडलेश्वर की जनभागीदारी देखते ही बनती थी। महेश्वर का तो झोली का बच्चा-बच्चा लोकरंगी निमाड़ उत्सव में शामिल हो गया था। संभवतया इतना बड़ा रंगारंग आयोजन महेश्वर में इसके पहले कभी नहीं हुआ था। जिसमें निमाड़ सहित प्रदेश और देश के लगभग तीन सौ से अधिक विभिन्न विधाओं के कलाकर शामिल हुए थे। और जब

विजय स्तंभ से अहिल्या घाट तक सजे-धजे इतने कलाकर एक साथ नाचते गाते सड़क से निकले तो महेश्वर के लोगों ने उनका हार-फूलों से दिल खोलकर स्वागत ही नहीं किया, बल्कि निमाड़ी अतिथि परम्परा के मुताबिक उन्हें शरबत और ठण्डा पानी भी पिलाया। कुछ लोगों ने तो फल आदि भी खिलाये। महेश्वर में ऐसा आत्मिक स्वागत देखकर पहली बार आने वाले कलाकर दुगुने जोश से भरकर रैली में नाचते रहे। इस रैली ने जैसे महेश्वर के लोगों में निमाड़ उत्सव में शामिल होने का न्यौता ही दे दिया था। लोगों के मन में एक तरह का ऐसा उत्साह और आनंद भर दिया था कि लोग नर्मदा के घाटों की ओर निमाड़ उत्सव का शुभारंभ देखने भागे जा रहे थे। ऐसा लग रहा था, किसी के पैर रूक ही नहीं रहे थे। सबके सब अहिल्या घाट पर जाना चाहते थे, जिसमें आसपास के गाँव के लोग भी थे। आबाल-वृद्ध और हर उम्र की स्त्रियाँ भी थी। पढ़े-लिखे और अनपढ़ लोग भी थी। कहने का मतलब निमाड़ उत्सव में सब तरह के लोगों की भागीदारी थी।

निमाड़ उत्सव से ऐसा लगा कि जैसे लोगों के मन की मुराद पूरी हो रही है। पूरे देश की संस्कृति और लोक कलाएँ जैसे लोगों के अंतर मन में उतर रही हैं। ऐसा अवसर बहुत कम लोगों को मिलता है, जब पूरे देश की लोककलाएँ एक ही मंच पर एक ही जगह देखने को मिलें। चाक्षुष सौन्दर्य आँखों में भरने का ऐसा मुहूर्त सबको नसीब नहीं होता। निमाड़ और महेश्वर का जनमानस निरन्तर सोलह वर्षों से निमाड़ उत्सव के माध्यम से प्रतिकृत और

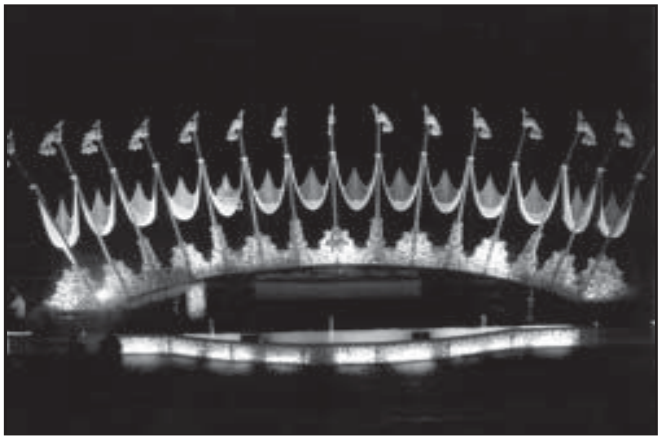

प्रतिश्रुत हो रहा है। बिना प्रयास के देश की इतनी विधाओं की जानकारी जिन बच्चों-बूढ़ों और जवानों को प्रत्यक्ष रूप से मिल रही है, शायद ही वे जीवन भर में इन्हें पा सकते थे। सोलह वर्ष पूर्व बच्चों ने जिन लोकविधाओं की छवि अपने कोमल मस्तिष्क में उतारी थी। अब वे युवा हो गये हैं। लोकविधाओं को समझने और उनकी व्याख्या करने की क्षमता उनमें विकसित हो गई है। वे लोकनृत्यों की बारीकियों को पहचानने लगे हैं। यह अतिरिक्त सांस्कृतिक लाभ निमाड़ और महेश्वर के लोगों को अनायास मिल रहा है। दूसरे शब्दों में यह कहना अधिक उपयुक्त लगता है कि एक तरह से नृत्य, गीत, संगीत, संस्कृति आदि से युवा वर्ग संस्कारित हो रहे हैं। अब वे जहाँ भी जीवन में इन विधाओं को कहीं देखेंगे, उनकी स्मृति में निमाड़ उत्सव की वे छवियाँ अवश्य उभर जायेंगी, जो उन्होंने इन सोलह वर्षों में युवा होते हुए देखा था। एक कला समारोह अपनी निरन्तरता में बहुत गहरी रचना का काम भी करता है, जब वह मनुष्य के मन के अवचेतन तक को

प्रभावित करता है। एक समारोह लोगों को कितनी तरह से 'एजूकेटेड' करता है, इसका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता है। साधारणजन अपनी लोकबुद्धि और सुशिक्षित ज्ञान के कारण अलग-अलग स्तर पर कलाओं के विभिन्न रूपों को ग्रहण करता है। लोक बुद्धि परम्परा को देखती है और धन्य होती है। पढ़ा - लिखा तबका कला के सौन्दर्य का भी आस्वाद लेता है। निमाड़ उत्सव दोनों के लिये एक सामुदायिक समन्वयकारी मंच बन गया है।

एक नदी किनारे, वह भी एक पौराणिक नदी नर्मदा के

किनारे एक लोक उत्सव कैसा होना चाहिए, इसका उदाहरण बनकर 'निमाड़ उत्सव' हमारे समक्ष खड़ा हो गया। निमाड़ उत्सव के मध्य में 'कला' शब्द नहीं है, पर एक भरेपूरे सांस्कृतिक अंचल के साथ जब 'उत्सव' शब्द जुड़ जाता है, तो उसमें न केवल निमाड़ की बल्कि समूचे देश की संस्कृति, कला और साहित्य समा जाता है। स्थापन और आयोजन कर्त्ताओं की मूल अवधारणा ही रही थी कि 'निमाड़ उत्सव' में न केवल निमाड़ की पारंपरिक कलाओं की भागीदारी हो, बल्कि समूचे देश की पारम्परिक और गैर पारम्परिक, समसामयिक कलाओं की भी शिरकत हो। इस रूप में तीन दिवसीय 'निमाड़ उत्सव' में तीनों तरह के आदिवासी, लोक और शास्त्रीय रंग इन्द्रधनुष की तरह बिखरते आ रहे है।

लोकप्रिय कवि सम्मेलन में देशभर के अनेक कविगण जुटते हैं और लोग उनकी मंचीय कविताएँ सुनकर लोटपोट होते हैं। हास्य और व्यंग्य की छटा में देर रात तक दर्शक-श्रोता सराबोर हर वर्ष होते नजर आते हैं। 'जनपदीय कविता में सुबह' की गोष्ठी में निमाड़ी बोली के साथ मालवी, बघेली और बुन्देली के कवि गीतकार अपनी-अपनी बोली की सुमधुर रचनाओं का पाठ करते हैं। इस आयोजन के पीछे जहाँ लोकप्रिय कविता को स्तरीय मंच प्रदान करना है, वहीं लोगों के मनोरंजन की जगह को कायम रखना हैं। वहीं जनपदीय कविता के मंच पर बोलियों की शक्ति और सामर्थ्य को तोलना है। बोलियों में पारम्परिक साहित्य की अपनी जगह और अवसर होता है, उसकी सर्वश्रेष्ठता भी स्वयंसिद्ध है। लेकिन बोलियों के रचित साहित्य की शक्ति और सामर्थ्य निश्चित रूप से समसामयिक होती है, उसमें बोलियों की पारम्परिक संस्कृति के बहुत से तत्त्व और अभिप्राय अपनी जगह तलाशते हैं और उनमें अपने समय की चमक को उसमें भरते हैं। इस दृष्टि से जनपदीय कविता की इस अनूठी गोष्ठी में गीत-कविता के नये-नये रंग हर वर्ष घुलते हैं। इस कविता गोष्ठी में बोलियों में समसामयिक क्या लिखा जा रहा है? इसकी पड़ताल भी दर्शक-श्रोताओं के बीच हर वर्ष हो जाती है। जो नये और पुराने रचनाकारों के लिये प्रेरणा का विषय हो जाता है। सोलह वर्षों में इस मंच पर अनेक वरिष्ठ लोक कवियों के साथ नये से नये रचनाकारों को अपनी रचनाएँ पढ़ने-सुनाने का अवसर मिला है। इस आयोजन के पीछे लोक साहित्यविद पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय की प्रेरणा रही है। जिसमें उनका विचार था कि देश में लोक बोलियों की सृजनात्मकता का कोई मंच नहीं है, इसलिए 'निमाड़ उत्सव' में हम प्रदेश की बोलियों के ऐसे जनपदीय मंच की स्थापना और शुरुआत करें। उन्होंने पहले जनपदीय

कविता में सुबह गोष्ठी की अध्यक्षता भी की, बल्कि सन् 2000 तक जब तक वे जीवित रहे, 'निमाड़ उत्सव' से गहरे से जुड़े रहे। वे 'निमाड़ उत्सव' के शुभारंभ मंच पर भी उपस्थित रहे। दरअसल 'निमाड़ उत्सव' पं. रामनारायण उपाध्याय की खुली आँखों का सपना था।

'निमाड़ उत्सव' कुछ ही समय में जन-जन का उत्सव बन गया, पता ही नहीं चला। निमाड़ की कला प्रेमी और संस्कारित जनता ने अपनी सक्रिय और आत्मीय भागीदारी से यह तो बता ही दिया कि निमाड़ की भोली जनता कलाओं और कला आयोजन

का बहुत दिल से सम्मान करना जानती है। आयोजकों ने जनता के मन की बात समझकर निमाड़ उत्सव में 'लोकप्रिय कल्चर' का एक दिन ऐसा ही 'इवेन्ट' जोड़ा, जो लाखों लोगों को निमाड़ उत्सव की ओर खींच सके। उन्होंने पहले ही वर्ष सुप्रसिद्ध गायिका अनुराधा पोड़वाल का नर्मदा तट पर भजन गायन रखा। इनके साथ गुलशन कुमार भी थे। दूसरे वर्ष महेश्वर के शासकीय बालक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विशाल प्रांगण में श्रीमती हेमामालिनी द्वारा निर्देशित नृत्य विहार कला केन्द्र, मुंबई के कलाकारों ने नृत्य-नाटिका दुर्गा की भव्य प्रस्तुति दी। इसी स्थान पर पंडवानी की सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर श्रीमती तीजनबाई का पंडवानी गायन हुआ था। तीजनबाई की पंडवानी और हेमामालिनी की दुर्गा नृत्य नाटिका को देखने के लिये उस समय जैसे पूरा का पूरा निमाड़ महेश्वर के उस स्कूल के प्रांगण में उलट गया था। अनुमानत: डेढ़ से दो लाख लोगों की आवाजाही महेश्वर जैसी छोटी जगह में हो गई थी। पता नहीं लोग हेमामालिनी को देखने आये थे या उनकी नृत्यनाटिका को? पर इतना जरूर है कि हेमामालिनी देश की महत्त्वपूर्ण नृत्यांगनाओं में से है और उनका आकर्षण आज भी वैसा ही है। हेमामालिनी का कार्यक्रम अत्यन्त सफल रहा था और वे महेश्वर आकर बेहद खुश थी। वे महेश्वर और देवी अहिल्या के बारे में जनती थी। वे महेश्वर के अहिल्या घाट और नर्मदा के विशाल पाट की सुन्दरता को देखकर दंग रह गई थी और कह उठी थी कि मेरा कार्यक्रम घाट के इस सुन्दर मंच पर क्यों नहीं किया? उन्होंने भगवान राजराजेश्वर के दर्शन किये और अपनी पसंद की महेश्वरी साड़ियाँ भी खरीदी थी। इसके साथ ही उन्होंने महेश्वर दुबारा आने का वादा भी किया था, पर संयोग नहीं बना।

निमाड़ उत्सव की साज-सज्जा और मंच का निर्माण प्रारंभ से ही कल्पनाशील रहा है। इस पक्ष पर भी थोड़ी बातचीत होना जरूरी है, क्योंकि यह वह पक्ष है जिसे बच्चे से लगाकर बूढ़े तक देखते हैं और अपनी पसंद के अनुसार अच्छे या बुरे मूल्यांकन करते हैं। साज-सज्जा थिमेटिक कलात्मक मंच निर्मिति के योजनाकार भारत भवन के वरिष्ठ चित्रकार श्री हरचंदन सिंह भट्टी रहे हैं, जिनकी थीम हरवर्ष नये रूप में मंच पर प्रकट होती है, और उसे अद्वितीय बनाती है। जो सबको भाती है। आँखों के रास्ते सीधे दिल में उतर जाती है। सोलह वर्षों में मंच सज्जा में कभी कोई डिजाइन रिपीट नहीं हुई है, यह श्री भट्टी की कल्पनाशीलता का ही कमाल है। महेश्वर के लोग मंच के डेकोरेशन और थीम की इस साल पिछले साल से ज्यादा बेहतर

है, कहकर भट्टी की कला की भूरी-भूरी प्रशंसा ही करते हैं।

दूसरी सज्जा अहिल्या घाट के गुम्मदों, गोखड़ों, छज्जों और गैलरियों की होती है। जो रंग-बिरंगे बिजली प्रकाश से की जाती है। पूरा घाट इन्द्रधनुषी प्रकाश के पुंजों से भर जाता है और जो दूर से देखने पर अत्यन्त सुंदर छवि का निर्माण करती है। कई-कई दिनों तक उस रंगीन प्रकाश की अनुगूँजे लोगों के मन में रह जाती हैं, जो अगले निमाड़ उत्सव में फिर दोहराई जाती हैं और फिर से

'निमाड़ उत्सव' को एक अलग अलौकिक उत्सव की गरिमा प्रदान करती है, क्योंकि नर्मदा का सान्निध्य, देवी अहिल्या के द्वारा बनाये गये सुन्दरतम घाट और फिर निमाड़ उत्सव का कार्तिक पूर्णिमा की स्वच्छ चाँदनी में आयोजन ये तीनों व्यक्ति को आनंद, उत्साह और उमंग से भर देती हैं, फिर तो कोई भी पल अपने आप 'उत्सव' बन जाता है। 'निमाड़ उत्सव' की प्रत्येक चीज ने महेश्वर के दर्शक-श्रोताओं के मन में यह बात पैदा कर दी है। इससे बढ़कर किसी आयोजन की उपलब्धि और

लोग नये रंग के नये प्रकाश में नहाने लगते हैं। जब समस्त लाईटिंग का अक्श नर्मदा के शांत जल में पड़ता है, तो ऐसा लगता है, कोई रंग महल पानी के भीतर बन गया है। लोग सिर्फ इसी नजारे को देखने के लिये घाट पर कई -कई बार फेरे लगाते दिखाई देते हैं, फिर भी महेश्वर के अहिल्याघाट की ऐसी रंगीनियाँ देखकर उनका मन कभी भरता ही नहीं। ऐसी अद्‌भुत घटा

क्या हो सकती है? यदि किसी उत्सव के साथ ऐसा घटित हो जाता है तो समझ लीजिये समारोह का सम्पूर्ण उद्देश्य ही फलीभूत हो जाता है। जहाँ हरवर्ग का दर्शक श्रोता मुक्त मन से जुड़ जाता है। इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। जब से 'निमाड़ उत्सव' प्रारंभ हुआ है, तब से महेश्वर के प्रत्येक घर में मेहमान नवाजी बढ़ गई है। या तो लोग एक दो दिन के लिये 'निमाड़ उत्सव' को देखने स्वयं आ जाते हैं और अपने रिश्तेदार

या मित्र के यहाँ ठहर जाते हैं अथवा घर वाले स्वयं अपनी बहन -बेटी रिश्तेदारों को 'निमाड़ उत्सव' देखने के लिये आमंत्रित कर लेते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सब ग्रामीण लोग बिना आमंत्रण के स्वयमेव निमाड़ उत्सव के लोक-आकर्षण में खिंचे चले आते हैं, क्योंकि उनमें एक लोक मेले सी पारम्परिक ऊर्जा का संचार होने लगता है और वे उत्सव को अपना ही उत्सव समझने लगते हैं। यह बात उन ग्रामीणों की आँखों की खुशियाँ देखकर पढ़ी जा सकती हैं। दरअसल असली दर्शक-श्रोता तो लोकजन ही हैं, जो एक उत्सव को 'लोक उत्सव' बनाते हैं। वर्ना पढ़े-लिखे अधिकारी आमंत्रण का रोना रोते रहते हैं और 'निमाड़ उत्सव' के उस आनंद से वंचित हो जाते हैं, जो उन्हें कभी नसीब नहीं होता। ऐसे लोग अखबार पढ़कर उस आनंद का अन्दाज लगाकर खुश हो लेते हैं। मूल बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति उत्सव की ओर घर से निकल पड़े, यही परम लक्ष्य किसी लोक उत्सव का होना चाहिए। 'निमाड़ उत्सव' ने यह कर दिखाया है।

एक और बात पर गौर करना चाहिए कि निमाड़ उत्सव को कार्तिक पूर्णिमा से जोड़ दिया गया है। एक दिन पूर्व निमाड़ उत्सव का शुभारंभ होता है और उसी दिन से तीन दिन के लिये नर्मदा के बहते जल पर परम्परा के अनुसार 'दीपदान' किया जाता है। महेश्वर के प्रत्येक घर की सजी-धजी महिला पाँच या ग्यारह कागज दोने आदि के जलते दीपक पानी में छोड़कर माँ नर्मदा को दीपदान का अर्घ्य संध्या समय चढ़ाने आती हैं। तब सैकड़ों दिये नर्मदा के जल पर जगमगाने लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे आसमान के सारे टिम-टिमाते तारे नर्मदा के जल में उतर आये हैं। कार्तिक पूर्णिमा के दिन दियों की संख्या और अधिक बढ़ जाती है। इस दिन 'निमाड़ उत्सव' की ओर से एक हजार जलते दीपक छोड़ने की परम्परा ही बन गई है, इससे नर्मदा का आकर्षण ही नहीं, बल्कि उसके प्रति श्रद्धा अधिक बढ़ जाती है। कहते हैं गंगा में स्नान करने से पुण्य मिलता है, लेकिन नर्मदा के दर्शन मात्र से पुण्य मिल जाता है। गंगा स्वयं वर्ष में एक बार काली गाय के रूप में नर्मदा में स्नान के लिये आती हैं, और सारे पाप छुड़ाकर उजली होकर फिर से लोगों के पाप धोने में लग जाती हैं। सोचिए हजारों जलते दीपों की रोशनी में नर्मदा के दर्शन कितनी कोटि का पुण्य लाभ देता होगा। इसी अवसर पर घाटों के तट पर खड़ी दुल्हन सी सजी-धजी नावें नर्मदा की सुन्दरता को द्विगुणित कर देती हैं। इन सजी नावों को हर वर्ष पुरस्कृत किया जाता है। महेश्वर और उसके आसपास के केवटों में अपनी-

अपनी नावें सजाने की जैसे होड़ सी लग गई है। अब महेश्वर की नावें कश्मीर की डलझील में चलने वाले शिकारों की तरह सुन्दर और आरामदेह बनने लगी हैं। इससे केवटों में गजब की चेतना का संचार हुआ है। उनका सौन्दर्य बोध बढ़ा है।

निमाड़ उत्सव में निमाड़ का क्या है? ऐसे प्रश्न तथाकथित बुद्धिजीवियों की बुद्धि में उठते रहे हैं और अपनी पीड़ा समय-समय पर अखबारों में व्यक्त करते रहे हैं। मुख्य बात यह है कि आयोजकों के मन में पहले ही स्पष्ट था कि निमाड़ की पारम्परिक कलाओं का एक स्तरीय मंच निमाड़ में स्थापित हो, जहाँ निमाड़ के कलाकार अपनी विधाओं का नियमित-प्रदर्शन, परिष्कार और प्रस्तुतिकरण कर सकें। उसके साथ देश की अन्य पारम्परिक कलाओं के साथ प्रतिष्ठा और समन्वय कर सकें। निमाड़ उत्सव के आरंभ से ही निमाड़ की समस्त पारम्परिक विधाओं को स्थान दिया गया, जिसमें प्रमुख रूप से लोक-नृत्यों में गणगौर, काठी, डंडा (अन्ट्या) नाच, लोकनाट्य में गम्मत, लोकगायन में संत सिंग्गाजी के भजन, कलगी-तुर्रा महिलाओं का निमाड़ी लोकगीत गायन शामिल थे। प्रतिवर्ष इन विधाओं के कलाकार 'निमाड़ उत्सव' में अपनी सबसे अधिक भागीदारी निभाते हैं। आज भी निमाड़ की नयी से नयी कला मंडलियों को मंच दिया जा रहा है। निमाड़ के लोकचित्रों पर केन्द्रित हर वर्ष तीन दिवसीय चित्र शिविर आयोजित किया जाता है, जिसमें स्थानीय लड़कियाँ, महिलाएँ बड़े उत्साह से हिस्सा लेती हैं और निमाड़ की परम्परा के चित्र कागज-केनवास पर बनाकर निमाड़ी भूमि की परम्परा को आगे बढ़ाकर अक्षुण्य रखने की कोशिश की जाती रही है। इसमें भोपाल की निमाड़ी चित्रकार श्रीमती पूर्णिमा चतुर्वेदी और खंडवा की श्रीमती साधना उपाध्याय का महत्त्वपूर्ण और अपूर्व योगदान है। शिविर में बनाई गई चित्र कृतियों की आम दर्शकों के लिये प्रदर्शनी भी आयोजित की जाती रही है। यह क्रम अभी निरन्तर जारी है। जनपदीय कवितापाठ में सबसे अधिक निमाड़ के कवि-गीतकारों की भागीदारी होती है। दर्शक-श्रोता भी सबसे अधिक निमाड़ीजन ही होते हैं। अब इसमें निमाड़ का क्या है, प्रश्न करने वालों से उलट पूछा जाना चाहिए कि इसमें यानी निमाड़ उत्सव में निमाड़ का क्या नहीं है? जबकि निमाड़ उत्सव की ख्याति अब मात्र निमाड़-मालवा तक ही नहीं, उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा पूरे देश में राष्ट्रीय स्तर की स्थापित हो गई, क्योंकि पूरे देश से उसमें कला विधाओं की शिरकत होती है।

कविता से लेकर कव्वाली, नृत्य से लेकर नाट्य, बैले और शास्त्रीय नृत्य, लोक और आदिवासी नृत्य, लोकनाट्य, लोकगायन, सुप्रसिद्ध गायक, नृत्यांगनाएँ आदि कई-कई बार निमाड़ उत्सव में आ चुके हैं। इसी मंच पर प्रसिद्ध कव्वाल हुसैन बदायूँनी, पद्मश्री विन्ध्यकोकिल विन्ध्यवासिनी देवी, पद्मश्री पंडवानी गायिका श्रीमती तीजनबाई, अनुराधा पोड़वाल, सुचित्रा हरमलकर, हेमामालिनी, वैजयन्तीमाला, अर्चना जोगलेकर, नीरज, सोम ठाकुर, राहत इंदौरी, माधव शुक्ल मनोज, बटुक चतुर्वेदी, श्रीमती संतोष झांझी, प्रभाकर दुबे, बाबूलाल सेन, रामनारायण उपाध्याय, डॉ. श्रीराम परिहार, भावसार बा, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', ध्रुव शुक्ल, राधेश्याम शांडिल्य, सुल्तान मामा, मोहन सोनी, कुंवर उदयसिंह अनुज, डॉ. निकुंज, गोमती प्रसाद विकल, डॉ. प्रेमलता श्रीवास्तव आदि अपनी प्रतिभा और कला का प्रदर्शन कर चुके हैं।

मध्यप्रदेश की लोक विधाएँ मटकी, राई, काठी, गणगौर, पंथी, करमा, बधाई, कानड़ा, ढिमरियाई, माच, गम्मत, अहिराई, बरेदी, नौरता, सैरा, डंडा, पंडवानी, आदिवासी नृत्यों में झाबुआ का भगौरिया, मंडला का गोण्ड-करमा, सैला, बैगाओं का परधौनी, फाग, सहरियाओं का लहंगी, भारियाओं का भड़म, कोरकुओं का थापटी आदि नृत्य कई-कई बार आ चुके हैं।

प्रदेश के पड़ौसी राज्यों में से गुजरात से गरबा, गोफ रास, टिपणी, राजस्थान से चकरी, सपेरा, तेराताली, घूमर, चरी, असम से बिहू, पुंगचोलम्, मणिपुर से रास, महारास, पंजाब से गिद्धा, भांगड़ा, उड़िसा से गोटिपुआ, कर्नाटक का ग्यारूड़ी गोम्बे, उत्तरप्रदेश का चरखुला, मयूर और होली, महाराष्ट्र से कोली, तमाशा, गोंधल, लावणी, कर्नाटक से ढोलू कुनिता, यक्षगान आदि विधाएँ किसी न किसी वर्ष निमाड़ उत्सव में आमंत्रित रही हैं। जितना उपकार देश के कलाकारों का निमाड़ उत्सव पर है, उतना किसी और समारोह पर नहीं हो सकता है। क्योंकि देवी अहिल्याबाई की पुण्य और पवित्र नगरी महेश्वर में आकर माँ नर्मदा के दर्शन कर निमाड़ उत्सव के 'मनोहारी मंच' पर अपनी कला का प्रदर्शन कर सभी कलाकार, कविगण धन्य हो जाते हैं और एक तीर्थ और अहिल्या घाट की सुंदर और मधुर छवियां अपने साथ ले जाते हैं। यह अतिरिक्त लाभ कलाकारों को और जगह बहुत कम ही मिलता है।

'निमाड़ उत्सव' की निरन्तर सफलता में स्थानीय लोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस तरह स्थानीय प्रशासन पुलिस

और पत्रकारों का सक्रिय सहयोग न मिला होता, तो निमाड़ उत्सव संभव न हो सकता था। तभी तो हम सोलहवें वर्ष में निमाड़ के उदीयमान पार्श्व गायक आभास जोशी और उनकी साथी सुमेधा करमाहे के लोकप्रिय गायन की संध्या तक किस तरह पहुँच सकते थे।

निमाड़ उत्सव के कारण महेश्वर और समूचे निमाड़ का माहौल सांस्कृतिक मय हो गया है। लोग अब देश और प्रदेश की विभिन्न विधाओं को देखकर आपस में चर्चा ही नहीं करते, बल्कि उन विधाओं की आलोचना भी करते दिखते हैं, जिनका संगीत, नृत्य, अभिनय, अदायगी अच्छी नहीं होती है। इन विधाओं को बार-बार देखने से ही यह बात आम दर्शकों के मन मस्तिष्क में पैदा हुई है। लोगों का यह कहना कि निमाड़ उत्सव में विधाओं का रिपिटेशन हो रहा है। यह उनका सोचना ठीक है। जब सोलह सालों में देश भर की पारम्परिक विधाओं को आमंत्रित किया जा चुका हो, तब पुनरावृत्ति की संभावना निश्चित बनती है। लेकिन पुनरावृत्ति या पुनरूक्ति दोष नहीं माना जाता है। बार-बार दोहराने से कोई चीज स्मृति का अमिट हिस्सा बन जाती है। यही कारण है कि हमारी लोककलाओं में बार-बार दोहराव-तिहराव और सर्जन और विसर्जन की परम्परा रही है। निमाड़ उत्सव में विभिन्न विधाओं का रिपिटेशन आपकी स्मृति में अमिट छाप छोड़ने के लिये की जाती है। जरा ध्यान से देखें पूर्व में देखी हुई किसी विधा को आप पुनः देखेंगे तो हमेशा एक नयापन, नई ऊर्जा को देखेंगे। इसलिए हमारी परम्परा में नृत्य-गीत-संगीत सब कुछ बार-बार दोहराया जाता है। असली नयापन तो हमारे भीतर होता है, जो लोककलाएँ उसे बार-बार जगाती हैं। निमाड़ उत्सव के बहाने सबसे अलग आत्मीय रपट।